
G. L. SAH

इस संघर्ष कालीन युग में मानव को अनेक आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं ने जकड़ रखा है। जिन में से निकलना चाहता हुआ भी मानव, निकलने में असमर्थ है क्योंकि वह समस्याओं के चौराहे पर खड़ा होकर सोच रहा है कि उसके पग किस ओर पड़ें ? इन्हीं विचारों का विनिमय करने के लिये तथा अनेक राष्ट्र एवं विश्व के महान् राष्ट्रों की समस्याओं से परिचित होने वाले हिन्दी प्रेमियों के लिये प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन अर्थ, श्रम व राजनीति के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा किया गया है।

बी० ए०, एम० ए०, तथा प्रभाकर के लिये यह विशेषकर लाभदायक है।

......प्रकाशक

विचार और समस्यायें

सम्पादक

श्री शरण

नया साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली-१.

नव साहित्य प्रकाशन
६२७६ मुलतानी ढांडा
नई दिल्ली-१

द्वितीयावृत्ति
मूल्य छः रुपये

मुद्रक
इण्डियन यूनियन प्रैस
दरिया गंज दिल्ली

कुछ आप से....

मानव स्वभावतः ही समाज प्रिय है इसी हेतु से वह सर्वदा मानव ही के प्रति विचारलीन रहता है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है जिसके द्वारा वह मानव समाज के बाह्य रूप के साथ-साथ उसके हृदयस्थ भावों तथा विचारों से भी परिचित हो जाता है और उसके अंगों के द्वारा मानन्द की प्राप्ति करता है। निबन्ध भी इसके प्रमुख अंगों में से एक है। परन्तु इसमें विषय की रागात्मक अवतरणा न होकर गम्भीर विवेचन होता है जिसके कारण प्राचीन जाति इसकी ओर विशेष रुचि से न देख सका। आधुनिक जाति ने इसकी महत्वता को समझा और इस साहित्यिक युग के स्रष्टाओं ने साहित्यिक निबन्धों के संग्रहों की बाढ़ लगा दी। इतना होने पर भी परीक्षार्थी सामयिक व राजनैतिक तथा आर्थिक निबन्धों से वंचित हो रहे। कुछ लेखकों ने उपरोक्त विषय को लेकर कलम चलाई भी परन्तु वे सफल न हो सके। मैंने भी आज से कुछ वर्ष पूर्व अभिन्न मित्रों के प्रोत्साहन देने पर इन विषयों के ऊपर निबन्धों का संकलन 'विचार और समस्यायें' के रूप में आपके सम्मुख प्रस्तुत किया था।

आपके पूर्ण सहयोग से इस पुस्तक की सभी प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं और इसकी बढ़ती हुई माँग ने द्वितीय संस्करण निकालने के लिए विवश कर दिया। अब यह नये और सुसज्जित रूप में आपके हाथों में है। आशा है कि इस संस्करण को भी सफल बनाने में आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

—सम्पादक

विषय-तालिका

किस ओर . . . . . ?

पूंजीवाद — साम्यवाद — समाजवाद
अधिनायकवाद — गांधीवाद ।

मानव संस्कृति एक और अविभाज्य है । भिन्न २ साम्प्रदायिक आधारों पर उसमें नानात्व एवं भेद-भावना का आरोप कर लिया गया है । प्रत्येक उद्बुद्ध जाति एवं समाज अपनी संस्कृति को सर्वोच्च एवं सार्वभौम मानता है । न्याय और सत्य उसके सामूहिक आचरण एवं अनेकत्व के आधार हैं । प्रकृति ने मनुष्य-मात्र को एक सी ही भोग-सामग्री प्रदान की है । उसका न्यायसंगत और सत्यरूप में उपयोग करना मनुष्य का सांस्कृतिक धर्म है । मनुष्य तब तक सुख और शान्ति का लाभ नहीं कर सकता जब तक कोई भी व्यक्ति अपने देश के बाहर अजनबी समझा जायेगा, जब तक प्रकृतिदत्त जीवन साधनों पर केवल बलवानों का ही अधिकार रहेगा, जब तक एक राष्ट्र अथवा समुदाय अनुचित रीति से दूसरों का शोषण करता रहेगा ।

आज के मनुष्य ने सभ्यता के नाम पर जितनी बाहरी टीम-टाम, रोब-दोब और आडम्बर का सृजन किया है उतना ही वह उसमें अधिक उलझता गया है, वह ज्यों ज्यों जीवन की गुत्थियों से सुलझना चाहता है वे त्यों त्यों उलझती ही जाती हैं । सुख शान्ति की जिन २ व्यवस्थाओं और साधनों का उसने निर्माण किया वे उतने ही उसे जकड़ते जा रहे हैं । आज के मशीन युग में मनुष्य स्वयं ही खासी मशीन बन गया है । आखिर, इन जीवन की उलझनों का सुलझाव क्या है ? भटकते मानव को जीवन की राजनैतिक, समाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक पगडंडियों में से किस पगडंडी को अपनाना है, जिससे

कि अपने गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँच सके, यह प्रश्न पहिले की अपेक्षा आज के युग में विशेष महत्व पूर्ण हो गया है ? इसका समाधान किये बिना आज का मानव नहीं जा सकता। प्रत्येक राष्ट्र अपनी इन उलझनों का समाधान अपने अपने तरीकों पर करता है। हमें यहाँ भारत की गन्तव्य पद्धति पर विचार करना है। हमें सोचना है कि स्वतंत्र भारत किस ओर जाये ? उसे समाजवाद को अपनाना है या पूंजीवाद को ? साम्यवाद का पथ उसके लिये हितकर होगा अथवा अधिनायक-वाद का ? वह गांधी के चरण-चिन्हों पर चलकर अपनी नव प्राप्त स्वतंत्रता को सुरक्षित रख सकेगा अथवा अन्य किसी नूतन सरणि का अनुसरण करके ? यह प्रश्न आज भारत के सामने बड़े विषम रूप में उपस्थित है। हम तर्कना और बुद्धिसंगत युक्तियों की कसौटी पर कसकर अपना पथ निर्धारित करेंगे।

पूंजीवाद

विश्व की सम्पूर्ण अशान्ति एवं संघर्षों का मूल कारण आज का दोष-पूर्ण आर्थिक ढाँचा है। समस्त जन वर्ग दो भागों में विभक्त हो गया है। पूंजीपति और श्रमजीवी। जिन्हें क्रमशः शोषक और शोषित नाम से पुकारा जाता है। समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके पास उनके पूर्वजों की पैतृक अथवा स्वतः उपार्जित इतनी सम्पत्ति होती है कि उन्हें अपने निर्वाह की चिन्ता ही नहीं होती। वे अपना सम्पूर्ण समय भोग-विलास तथा फिजूल खर्ची में व्यय करते हैं। किन्तु अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जिन्हें न तो भर पेट उचित खाना ही मिलता है, न पहिनने के लिये पर्याप्त वस्त्र और न रहने के लिये छोटा मोटा सा मकान। जब खाना, पीना, पहिनना और रहना प्रत्येक व्यक्ति का समान रूप से सामाजिक अधिकार है तब फिर क्या कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएं समान रूप से पूरी नहीं होतीं ? आय की इसी विषमता के कारण ही समस्त संसार दुःख-दैन्य की रंगस्थली बना हुआ है।

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था बड़ी ही अनर्थकारी और दोषपूर्ण है

इसे कोई भी समझदार व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। असमान आय के दुष्परिणामों से मनुष्य-जाति जो जो कष्ट उठा रही है उससे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। इस असमान आय के दुष्परिणाम स्वरूप ही अधिकांश व्यक्तियों के वस्त्र, भोजन, मकान आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं हो पाती। असमान आय के कारण ही निष्पक्ष न्याय भी सुलभ नहीं है। एक पूंजीपति बहुत सारा रुपया खर्च करके अपने पक्ष-समर्थन के लिये बड़े से बड़े वकील, बैरिस्टर नियुक्त कर सकता है, गवाहों को डरा धमकाकर, प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर सकता है। इसके विपरीत बेचारे निर्धन श्रमजीवी के पास वकीलों को देने के लिये बड़ी २ रकमें नहीं होतीं। वह ऐसे वकीलों को नियुक्त नहीं कर पाता जिनमें वाकचातुर्य हो। अतः पूंजीपति के अन्याय के सामने बेचारे मजदूर का न्याय दम तोड़ देता है। वे कानून भी जिनके द्वारा न्याय की आशा की जाती है, धनिकों के द्वारा ही बनाये हुए होते हैं। इन कानूनों को जनता के चुने हुए प्रतिनिधि बनाते हैं। चुनाव लड़ने के लिये बड़ी भारी रकम की आवश्यकता होती है। उम्मीदवार को एक निश्चित रकम जमा करनी पड़ती है और उसके बाद चुनाव लड़ने के लिये बहुतसा रुपया चाहिये। एक श्रमजीवी इतना रुपया खर्च नहीं कर सकता। अतः धनिक लोग या उनके प्रतिनिधि ही पार्लियामेंट अथवा असेम्बली के सदस्य बनते हैं और पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को पुष्ट करने वाले ही कानून बनाते हैं। अतः अन्याय और पक्षपात का दौर-दौरा रहता है।

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में सब व्यक्तियों को समान रूप से उन्नति करने का अवसर नहीं प्राप्त होता। एक पूंजीपति अपनी संतान को ऊंची से ऊंची शिक्षा दिला सकता है। I. A. S., P. C. S., इन्जीनियरिंग आदि उच्च विभागीय परीक्षायें दिला सकता है। फिर ये ही उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवक पार्लियामेंट, राजनैतिक विभाग, सेना अदालतों और स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओं में काम करते हैं। ऊंचे से ऊंचा पद और साधन उन्हें प्राप्त होता है। और बेचारा शोषित श्रमकार अर्थाभाव के कारण इन सब सुविधाओं से वंचित रहता है और कुत्तों की मौत मर जाता है।

आलसी एवं अकर्मण्य जन वर्ग को जन्म देने का दुःश्रेय भी इसी पूंजीवाद को है। पूंजीपतियों के बच्चों को आलस्य और अकर्मण्यता पैतृक सम्पत्ति के साथ साथ विरासत में मिलती है। वे अपने बाप-दादाओं को जिस प्रकार निरर्थक भटकते, सिगरेट फूंकते, मादक द्रव्यों का सेवन करते, गन्दे गन्दे उपन्यास पढ़ते, अभिनेत्रियों के चित्रों से मनोरंजन करते तथा ताश-चौपड़ आदि से मन बहलाते हुए देखते हैं, उसी प्रकार स्वयं भी उनके पद-चिन्हों पर चलने लगते हैं। उन्हें पड़े २ खाने और भोग विलास में लिप्त रहने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं रहता। काम करने के लिये बड़े २ मुनीम और कारिन्दे रहते हैं। परिणाम स्वरूप उनकी तोंद बढ़ जाती है और वे अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। उन अभागों को न तो शारीरिक व्यायामों की ही शिक्षा मिलती है और न ही चारित्रिक विकास का संयोग। आज भारत वर्ष में ऐसे रईसों के लड़कों की कमी नहीं है जो कुत्ते लड़ाने फिरते हैं। ताश, शतरंज आदि में ही अपना समय बिताते हैं, बुरी आदतों में पड़कर अपना अमूल्य जीवन नष्ट करते हैं।

समाचार पत्रों, धार्मिक संस्थाओं तथा शिक्षण-संस्थाओं पर भी इस अनर्थकारी पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था ने अपना एक छत्र प्रभुत्व जमा लिया है। समाचार पत्रों की स्वेच्छा चारिता एवं स्वतन्त्र मौलिक प्रकृति का इस अर्थ व्यवस्था ने गलाघोट दिया है। अधिकांश समाचार पत्र पूंजीपतियों के अधिकार में होते हैं। उनकी पूंजी तथा विज्ञापन पर ही समाचार पत्र का जीवन निर्भिर होता है। अतः वे अपने पूंजीवादी चश्में से ही प्रत्येक समाचार को देखते हैं और उसकी सत्यता का गलाघोटने में तनिक भी नहीं हिचकते।

जितने भी मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारा आदि धार्मिक स्थान हैं, उन सब पर पूंजीपतियों का अधिकार है। वे ही भगवान को भोजन देते हैं, उनकी इच्छा के विरुद्ध भगवान भी कान नहीं हिला सकता। पंडित, मौलवी, पादरी आदि पूंजीपतियों के एजेन्ट हैं, जो केवल धनी के प्रति श्रद्धा भक्ति रखना ही सिखाते हैं और

उस श्रद्धाभक्ति को ही धर्म बताते हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्व-विद्यालयों तक में दी जाने वाली ऊँची से ऊँची शिक्षा तक को भी इस पूंजीवादी अर्थव्यवस्था ने अपनी भ्रष्टता से मुक्त नहीं किया है। बड़े बड़े पूंजीपतियों का ही गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं पर अधिकार होता है। अपने ही सगे सम्बन्धियों को इनमें स्थान दिया जाता है। पाठ्यक्रम में जो पुस्तकें निर्धारित होती हैं वे अधिकांश ऐसे ही पूंजीपति द्वारा प्रकाशित होती है जो अधिक से अधिक रुपया खर्च कर सकें. जिसकी ऊंचे से ऊंचे अधिकारी वर्ग तक पहुँच हो, जो चांदी की मार से सबका मुंह बन्द कर सके विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विज्ञान का काम उन नीम-हकीमी दवाओं का प्रचार करना हो गया है, जो धनिकों की पूंजी से चलने वाली कम्पनियों द्वारा तैयार की जाती हैं।

इस अर्थमयी विषमता ने हमारे सामाजिक एवं गार्हस्थिक जीवन में सब से बड़ी उलझनें डाल दी हैं। दो प्रेमासक्त स्त्री पुरुष इस आर्थिक विषमता के कारण जीवन साथी नहीं बन पाते। स्त्री अपनी पसंद के पुरुष के साथ विवाह नहीं कर सकती, बल्कि जो भी आर्थिक दृष्टिकोण से सबल व्यक्ति उसे मिल सके उसके साथ ही उसे शादी करनी पड़ती है और बहुधा यह पुरुष अपनी पसंद का पुरुष नहीं होता। प्रेम की अपेक्षा रुपये या सामाजिक पद-प्रतिष्ठा के हेतु विवाह किया जाता है। वर का पिता अपने शिक्षित, सुन्दर, युवा पुत्र के लिए बड़ी से बड़ी रकमें दहेज में लेना चाहता है, बाकायदा सौदाबाजी होती है, मार्केट वैल्यू आंकी जाती है अंत में वर और वधू अनिच्छा होते हुए भी मिमियाते हुए बलि बकरे की भाँति धन-देव की बलि चढ़ा दिये जाते हैं, और दोनों का जीवन विषाक्त बन जाता है।

इस पूंजीवाद के पोषण के लिये ही साम्राज्य वाद का जन्म होता है। पूंजीपति बड़े बड़े मिल-कारखाने खड़े करते हैं, उनसे जो सामान बनता है उसके निकास के लिये मार्केट चाहिये। ये मिल-कारखाने इतना सामान बनाते हैं कि अपने देश में उसकी खपत नहीं हो पाती। अतः विदेशों में मार्केट ढूंढना पड़ता है। धीरे-धीरे व्यापार

के द्वारा पिछड़े देशों का आर्थिक शोषण किया जाता है, उनके उद्योग-धन्धों को समाप्त करके अपने माल को लादा जाता है और एक दिन राजनैतिक प्रभुत्व भी जमा लिया जाता है। इस प्रकार साम्राज्यवाद पनप उठता है।

समाजवाद

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पूंजीवादी आर्थिक ढांचा मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है, उसने मानव को दानव बना दिया है, उससे छुटकारा पाना नितान्त आवश्यक है।

अब सोचना यह है कि इस आर्थिक दुर्व्यवहार का समाधान क्या है ? क्या यह चिर-शाश्वत और अपरिवर्तनशील है ? हमें इसका समाधान ढूंढना है, भिन्न २ अर्थ शास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों ने इस पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को समाप्त करने के लिए भिन्न २ वादों, सिद्धान्तों एवं विचार पद्धतियों का सृजन किया है, जिनमें से मुख्य समाजवाद और साम्यवाद हैं।

समाजवाद इस आर्थिक वैषम्य को दूर करने का उपाय बताता है। समाजवाद के अनुसार राष्ट्र की सम्पत्ति इस प्रकार बटनी चाहिए कि जिससे सब लोग समान रूप से सुखी रह सकें और अपनी आवश्यकताओं को पूरी कर सकें।

समाजवादी सिद्धान्त के अनुसार आय की समानता बनाये रखना शासन व्यवस्था का प्रथम कर्तव्य है। सम्पत्ति पर किसी का भी व्यक्तिगत अधिकार नहीं होना चाहिये और न ही व्यक्तिगत स्वार्थों के आधार पर किये गये समझौतों का पालन होना चाहिए। समाजवाद के अनुसार राष्ट्र का हित सर्वोपरि है, वह यह सहन नहीं कर सकता कि एक पूंजी पति तो दिन भर मटर-गश्ती करता हुआ बिना श्रम किए हुए दूसरे के श्रमों का फल भोगता रहे और एक मजदूर पतनकारी दरिद्रावस्था में पड़ा हुआ अति श्रम करते करते आधि-व्याधि से आक्रांत होकर असमय में ही काल-कवलित हो जाये। वह वर्ग-हीन समाज में विश्वास रखता है। समाजवाद डंके की चोट कहता है कि

जमींदारों और पूंजीपतियों का धन किसानों और मजदूरों की मेहनत से ही पैदा हुआ है। इसीलिए 'प्राउधन' के अनुसार वह "चोरी का माल" है। समाजवाद के अनुसार सम्पूर्ण उद्योग धन्धों पर व्यक्तिगत अधिकार न होना चाहिए, वे राष्ट्र की सम्पत्ति है, अतः उनका राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। उत्पत्ति के जितने भी साधन हैं, सरकार को उन्हें अपने हाथों में लेना चाहिए। जिस प्रकार सेना, पुलिस, खजाना, डाक आदि को संभालने के लिये अलग अलग महकमें स्थित हैं उसी प्रकार बैंकों, खानों, रेलों, मिलों, कारखानों आदि को संभालने और चलाने के लिये नये महकमें स्थित करने चाहियें और उनके लिये योग्य कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहिये। इस प्रकार के महकमें स्थायी और अत्यन्त संगठित सरकारों द्वारा ही स्थापित हो सकते हैं। क्रांतियों, तानाशाही सरकारों अथवा उन सरकारों द्वारा, जहाँ कर्मचारी स्थायी नहीं होते, यह काम नहीं हो सकता। समाजवाद हिंसात्मक शक्ति में विश्वास नहीं करता वह तो वैधानिक तरीकों से ही उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहता है। उसके मतानुसार यह भी सम्भव है कि क्रांति के बाद जो सरकार स्थापित हो, वह राष्ट्रीय उद्योग धन्धों को न चला सके और उनको फिर पूंजीपति व्यवसायिओं के हाथों में सौंप देने को विवश होना पड़े।

साम्यवाद

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था की समाप्ति और श्रमजीवी वर्ग की सत्ता की पोषक दूसरी वैज्ञानिक विचारधारा साम्यवाद है। समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा के मूल सिद्धांतों में उतना अन्तर नहीं है, केवल पूंजीपतित्व को समाप्त करने के तरीकों और साधनों के प्रयोग में अन्तर है। दोनों ही वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। समाजवाद वैधानिक तरीकों से पूंजीपति भावना का अंत करना चाहता है, विद्रोह और अहिंसा को वह पसंद नहीं करता। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि यदि पूंजीपति वैध परिवर्तन को स्वीकार न करे तब क्या किया जाये? क्या तब उसकी सत्ता को नष्ट करने के लिये राजनैतिक क्रांति और हिंसा आवश्यक नहीं है? समाजवाद हमें

हिंसात्मक क्रांति और रक्तपात की आज्ञा नहीं देता। उसका विचार है कि हिंसात्मक क्रांति में भीषण जन-धन संहार होता है और सामाजिक मर्यादायें टूट-फूट जाती हैं। उसको ठीक करने के लिए अन्त में पुनः स्थायी-व्यवस्था की शरण लेनी पड़ती है। उस सामाजिक अव्यवस्था को रोकने के लिये नैपोलियन, मुसोलिनी, हिटलर जैसे दृढ़ शासकों की आवश्यकता होगी, जिससे अधिनायक वाद (डिक्टेटर शिप-तानाशाही) की सम्भावना रहती है। समाजवाद क्रमिक विकास में विश्वास रखता है। उसके अनुसार हिंसात्मक क्रान्ति के बाद भी वैध-पद्धति से ही शान्ति और सुशासन व्यवस्था स्थापित हो सकेगी। अतः हिंसात्मक क्रान्ति की अपेक्षा पहिले से ही वैध-उपायों का क्यों न आश्रय लिया जाय ?

साम्यवाद मात्र हिंसात्मक क्रान्ति को ही पूंजीवाद की समापिका नहीं मानता किन्तु पूंजीवाद के वैध तरीकों से समाप्त न होने पर हिंसा और रक्तपात को आवश्यक समझता है। वह हिंसात्मक और अहिंसात्मक अथवा अन्य किसी भी तरीके को अपनाने से नहीं हिचकता। वह हर सम्भव तरीके से पूंजीवाद की समाप्ति चाहता है।

समाजवाद और साम्यवाद का अन्तर बताते हुए आर० डब्लू० रॉबसन ने अपनी पुस्तक "कम्युनिज्म क्या है ?" में इस प्रकार लिखा है :—"कुछ लोग समाजवाद और कम्युनिज्म के भेद को समझने में घबरा जाते हैं। उनका विश्वास है कि यह दोनों एक ही चीज हैं और अगर उनमें कुछ फर्क है तो सिर्फ यह कि कम्युनिज्म ज्यादा "उग्र" है। लेकिन ऐसी बात नहीं है।

समाजवाद और कम्युनिज्म में राजनीतिक भेद है और यह भेद मानव समाज को कम्युनिज्म की तरफ बढ़ाने के लिये समाजवाद द्वारा लाई जाने वाली आर्थिक उन्नति पर आधारित है।

समाजवाद सामाजिक स्थिति का एक दौर है जिसमें पूंजीवाद का अस्तित्व खत्म हो जाता है। उसमें आदमी आदमी का शोषण

नहीं कर सकता और हर एक सब की जिन्दगी को अच्छी और सुन्दर बनाने के लिये काम करता है। समाजवादी दौर में भी समाज के कामों को संगठित करने के लिये राज-यन्त्र की आवश्यकता बनी रहती है। यह राज-यन्त्र पूरी तरह से काम करने वालों के हाथ में रहता है। इस दौर में जनता के जीवना-स्तरों में कुछ भेद भी बने रहते हैं। जो लोग समाज की सेवा के लिये अधिक काम करते हैं उन्हें दूसरों की अपेक्षा अधिक मिलती है।

कम्युनिज्म समाज का एक ऊंचा दौर है। वह समाजवाद के बाद की प्रगति है। कम्युनिज्म समाजवाद के सफल हो जाने पर ही मुमकिन हो सकेगा अर्थात् समाज की तमाम भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करसकने के लिये काफी पैदावार बढ़ा सकने पर ही वह मुमकिन हो सकेगा।

आज रूस में साम्यवाद का क्रियात्मक रूप संसार के सामने है। उसने समाजवाद के सिद्धान्तों पर पूरी तरह अमल किया है, जिसके फल स्वरूप वहीं की व्यवस्था में जो आकस्मिक और जबरदस्त परिवर्तन हुए हैं, उनका असर, प्रतिबन्धों की ऊंची ऊंची दीवारों के खड़े किये जाने पर भी दुनिया के कोने कोने में पहुँच गया है। नवोदित साम्यवादी चीन ने अपनी बिगड़ी हालत को बड़े ही आश्चर्य-जनक ढंग से थोड़े ही समय में सुधारा है। इन दो राष्ट्रों में साम्यवाद की सफलता देख कर साम्यवादी विचार धारा के समस्त विश्व में फैलने की विशेष सम्भावना है। आज का बुद्धि जीवी वर्ग उससे बहुत प्रभावित हुआ है।

अधिनायकवाद

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि किसी भी राष्ट्र में जनक्रान्ति अथवा राजनैतिक परिवर्तनों के बाद अधिनायकवाद (डिक्टेटर-शिप) के फैलने की बड़ी सम्भावना रहती है। डिक्टेटर-शिप में सम्पूर्ण जनता की शक्ति एक व्यक्ति में केन्द्रित हो जाती है। जनता की आवाज उसकी अकेली आवाज के सामने दब जाती है। उसकी इच्छा

के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं हो सकता। इसकी इच्छा ही कानून होती है। कोई भी राजनैतिक दल अथवा आर्थिक संघ उस की इच्छा के विरुद्ध अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। मुसोलिनी और हिटलर अधिनायकवाद के ज्वलन्त उदाहरण हैं। साम्यवादी विचार धारा के विरोधी लोगों का कहना है कि रूस में स्टालिन और नवोदित लाल चीन में माओत्सेतुंग भी डिक्टेटर हैं, क्योंकि वहां उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी विचार धारा नहीं ठहर सकती। वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त अन्य किसी भी पार्टी का अस्तित्व नहीं रह सकता।

अस्तु अधिनायकवाद में अच्छाइयां और बुराईयां दोनों हैं। जहां अधिनायकवाद राष्ट्र को केवल एक व्यक्ति के हाथ की कठपुतली बना देता है, वहां वह अपनी निजी इच्छा के अनुसार राष्ट्र को शक्तिशाली और किसी निश्चित कार्य प्रणाली की ओर अग्रसर कर सकता है। वह जिस तरह चाहता है अपने ढंग से राष्ट्र को संगठित और शक्तिशाली बनाता है। वहाँ वह राष्ट्र को गड्ढे में भी ढकेल सकता है, अपनी तानाशाही के जोश में दूसरे की उचित सलाह का भी आदर नहीं करता और एक दिन वह सम्पूर्ण राष्ट्र और स्वयं को सर्वनाश के गड्ढे में धकेल देता है। जर्मनी और इटली इसके उदाहरण हैं। अधिनायक अपने समय में बड़ा भारी लोकप्रिय नेता होता है। उसकी सफलता उसे पुजवा देती है और असफल होने पर वह जनता के हाथों से ही मार भी दिया जाता है।

गांधीवाद

गांधी जी मानव जाति के समस्त संघर्षों को प्रेम, सत्य और अहिंसा के द्वारा समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने एक नये मानव धर्म का विकास किया जो हिन्दू समाज के चार वर्णों और आश्रमों के अलग अलग धर्मों का सम्मिलित रूप है। डा० पट्टाभि के शब्दों में "गांधी जी ने अपने व्यक्तित्व में किसान और जुलाहों के, व्यापारी और व्यवसायी के, युद्ध करने और रक्षा करने वाले क्षत्रिय के और

अनन्त लोक सेवक के गुणों का एक साथ समावेश किया है।" वे प्रेम और सेवा के द्वारा-मानव समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" तथा "वसुधैव कुटुम्बकं" के सिद्धांत द्वारा उन्होंने विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार किया। गांधी जी सामाजिक तथा आर्थिक पद्धतियों के सुधार के पूर्व मनुष्य का सुधार करना चाहते थे। विश्व-समस्याओं तथा भारतीय समस्याओं के सम्बन्ध में उनकी पहुँच मनुष्य के व्यक्तित्व को शुद्ध और ऊंचा उठाने की दिशा की ओर प्रेरित करती थी। गांधीजी रुपये पैसे, शस्त्रास्त्रादि भौतिक साधनों से अधिक आत्मिक शक्ति में विश्वास रखते थे। जिस बात को उन्होंने न्याय युक्त समझा, उसके लिए वे समस्त दुनियां के विरुद्ध भी अकेले ही खड़े हुए। गांधीजी ऐसी बुनियादी क्रांति में विश्वास रखते थे जो जीवन की बुराईयों को जड़ से उखाड़ फैंके।

गांधीजी एक चोर को चोरी के अपराध में पुलिस के सुपुर्द करना अथवा अन्य शारीरिक कष्ट आदि दंड देना पसंद नहीं करते, वे तो अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा उसका मन परिवर्तित करना चाहते थे। उन्होंने एक स्थान पर कहा है—"इसमें आवश्यकता इस बात की होती है कि चोरों और अपराधियों को भी अपना भाई और बहन समझा जाये और अपराध को एक बीमारी माना जाये, जो कि अपराधी में घर कर गई है और जिसका इलाज होना आवश्यक है।" अनुचित शोषण के द्वारा एकत्रित किये हुए धन को वह चोरी का धन समझते थे—"वह धनी या पैसेवाला व्यक्ति, जो कि शोषण या अन्य बुरे उपायों द्वारा पैसा पैदा करता है, डकैती या लूट के अपराध का उस से कम दोषी नहीं जितना कि एक गिरह कट या मकान में सेंध लगाने वाला चोर। धनी केवल प्रतिष्ठा की बाहरी, दिखावटी ओट की शरण ले लेता है और कानून के दण्ड से बच निकलता है"। इस प्रकार हम गांधीवाद को अहिंसात्मक साम्य-वाद तथा समाजवाद के निकट पाते हैं।

गांधीजी पूंजीवाद को बुरा समझते थे और उसे बदलना भी चाहते थे किन्तु हिंसा के द्वारा नहीं उनके हृदय परिवर्तन के द्वारा,

प्रेम और सद्भावना के द्वारा। गांधीजी ने जमींदारों और पूंजीपतियों को समाज का शत्रु नहीं माना। वे उन्हें गरीबों का ट्रस्टी बताते थे। एक बार उन्होंने कहा था—"मैं चाहता हूँ कि मैं आपके दिलों में समाऊं और उन्हें परिवर्तित करूं, जिससे आप यह अनुभव कर सकें कि वास्तव में यह धन आपकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं वरन् किसानों का ट्रस्ट है और आप उन्हीं की भलाई में इस को खर्च करेंगे"। उनका विश्वास था कि वर्ग संघर्ष के द्वारा पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था नहीं बदली जा सकती उल्टे उससे घृणा, विद्वेष और अशान्ति का भयंकर विष फैलेगा, जो इस से भी अधिक विनाशकारी होगा। वे पूंजीपतियों के धन को अन्त में मजदूरों का ही समझते हैं। जिस प्रकार पिता के अनन्तर पुत्र ही समस्त धन का उत्तराधिकारी होता है। कभी मन मुटाव भी हो जाता है किन्तु अन्त में सब कुछ होता बेटे का ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण धन मजदूरों और पूंजी पतियों दोनों का है। उन्होंने किसी वर्ग विशेष, जाति विशेष की उन्नति का समर्थन नहीं किया। उनका सर्वोदय का सिद्धांत मानव-मात्र के उत्कर्ष की घोषणा करता है। जब समाजवाद अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य की सहायता लेना चाहता है तब गांधीवाद अपनी सफलता के लिए प्रत्येक नागरिक की आत्मिक उन्नति और सांस्कृतिक विकास में विश्वास करता है। समाजवाद विकाश में विश्वास करता है। समाजवाद घृणा और फूट के द्वारा समत्त्व का भाव स्थापित करना चाहता है, गांधीवाद मानव-सेवा के लिए घृणा और फूट का त्याग तथा प्रेम और अहिंसा का आश्रय लेता है। गांधीजीने अपने शब्दों में कहा है:—"गांधी मर सकता है, किन्तु गांधीवाद अमर रहेगा"।

ऊपर जिन वादों, सिद्धान्तों और विचार सरणियों का विवेचन किया गया है, वे सभी मानवहित को अपना लक्ष्य बताते हैं। यथापि क्या समाजवादी, क्या साम्यवादी, क्या गांधीवादी सभी का यह दावा है कि हम मानव जाति की अधिक से अधिक सेवा करेंगे। यहां तक कि पूंजीवाद और अधिनायकवाद भी अपने को समाज का बड़ा भारी हितैषी बताते हैं। किन्तु फिर भी सब के सिद्धान्त एक

दूसरे से मेल नहीं रखते। पूंजीवादी ज़मीन और पूंजी पर व्यक्तिगत अधिकार रखना, व्यक्तियों के स्वार्थों को ध्यान में रखकर किए गये समझौतों या इकरारों का पालन कराना और शान्ति रक्षा के अतिरिक्त उद्योग धंधों में किसी भी तरह का राजकीय हस्तक्षेप न होने देना आवश्यक समझता है। समाजवादी आय की समानता को महत्त्व देता है और आय की समानता पर आक्रमण होने पर पुलिस के हस्तक्षेप को। उद्योग धंधों तथा उनकी उत्पत्ति पर सरकार के पूर्ण नियन्त्रण को आवश्यक समझता है। वह यह सब कुछ वैधानिक और शान्तिपूर्ण तरीकों से करना चाहता है। साम्यवाद वैधानिक, अवैधानिक, हिंसात्मक, अहिंसात्मक सभी तरीकों से पूंजीवाद का खात्मा करना चाहता है। अधिनायकवाद एक व्यक्ति की इच्छा पर राष्ट्र को संगठित एवं शक्तिशाली बनाना चाहता है। गांधीवाद प्रेम, सत्य और अहिंसा द्वारा विकारयुक्त मानव मस्तिष्क को बदल देना चाहता है।

अब हमें विचारना यह है कि भारत को किस ओर जाना है? कौन से मार्ग पर चलकर वह स्वयं उन्नति तथा मानवता की सेवा कर सकता है? आज कोई भी शिक्षित बुद्धिजीवी व्यक्ति पूंजीवाद और अधिनायकवाद जैसी घातक और दोषपूर्ण शासन-व्यवस्था को अपनाने की सम्मति नहीं दे सकता। पूंजीवाद और अधिनायकवाद का पतित रूप हम अमेरिका, जर्मनी तथा इटली में देख चुके हैं। अमेरिका का पूंजीवाद कोरिया में अपना भयंकर ताण्डव नृत्य दिखा चुका है, जो लाखों निरीह व्यक्तियों का खून पीकर अट्टहास कर रहा है। ऐसा पूंजीवाद तोप-गोलों और अणुबम की चारदिवारीमें भी अधिक दिन नहीं जी सकता। वह शनैः शनैः अपनी मौत मर रहा है। अधिनायकवाद की हत्या तो उसी दिन होचुकी जिस दिन इटली के तानाशाह मुसोलिनी को वहां की जनता ने स्वयं गोली से उड़ा दिया। हिटलर की तानाशाही भी समय के प्रभाव के सामने न ठहर सकी। फिर भारत तो सदा से जनता-जनार्दन का सेवक रहा है। यहाँ तानाशाही और पूंजीवाद जैसी दुर्गन्धित पगडंडी को अपनाने की सलाह देना दिमाग का दिवाला निकालना है।

साम्यवाद और समाजवाद अवश्य वर्गहीन समाज एवं समस्वयोग की बात करते हैं। उनमें से साम्यवाद (कम्युनिज्म) ने रूस में सफलता भी पाई है किंतु उसके तरीके मानवता की निम्न श्रेणी के हैं। वह हिंसात्मक विद्रोहों, हत्याकांडों, अमानुषिक घृणित प्रयोगों से पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को बदलने में विश्वास रखता है। क्या हमारा भारत ऐसे अमानुषिक प्रयोगों को अपनाने की स्वीकृति देगा? क्या वह शांति और सुव्यवस्था के नाम पर मनुष्य से गिर कर राक्षस बनना पसंद करेगा? गांधी जी के शब्दों में हम इसका उत्तर यों दे सकते हैं:—"मैंने अपने समस्त जीवन में भारत की स्वतन्त्रता के लिये यत्न किया है, लेकिन यदि वह स्वतन्त्रता मुझे हिंसा द्वारा मिले तब मैं उसकी चाहना नहीं करूंगा।"

समाजवाद का आधार-मात्र भौतिक है। उसके विचार में आर्थिक समस्या के हल होते ही सारी सामस्यायें स्वतः हल हो जायेंगी, बस मनुष्य देवता बन जायेगा। किंतु सोचना तो यह है कि क्या वास्तव में आर्थिक समता होते ही समाज का नैतिक-स्तर ठीक हो जायेगा? यदि नैतिकता और अर्थ का सम्बन्ध है तो एक पूंजीपति को, जोकि आर्थिक दृष्टिकोण से पुष्ट है, नैतिक ईमानदार और सदाचारी होना चाहिए, किंतु होता इसके विपरीत है। अतः निष्कर्ष निकला कि आज की समस्या केवल आर्थिक नहीं है, कुछ और भी है। उसका समाधान मात्र पूंजी का समान वितरण नहीं है, बल्कि कुछ और भी है। उसका समाधान न तो साम्यवाद के पास है, न समाजवाद के पास, और न अधिनायकवाद के पास। उसका समाधान केवल गांधी-वाद के पास है।

गांधीवाद मनुष्य के ईश्वरीय अंश में विश्वास रखता है, वह पूंजीवाद व चोरी के विनाश के लिए हिंसात्मक उपायों को काम में लाने की अपेक्षा मनुष्य की आन्तरिक दूषित चित्तवृत्ति को ही बदल देना चाहता है। वह समाज में इतना नैतिक बल भर देना चाहता है कि दुनियां की कोई भी शक्ति उसे अन्याय और अधर्म के सामने न झुका सके। सरकार का प्रयोग वह जितना कम हो सके, करना चाहता है। स्वावलम्बन के द्वारा ही वह अपनी समस्याओं का स्वतः

हल ढूंढना चाहता है। गांधीजी ने कहा है:— "मैं समझता हूं कि यदि लोग स्वयं अपनी सहायता करें तब राजनीति स्वयं उनकी चिन्ता करेगी"।

वस्तुतः आज संसार में जो अशान्ति और वैषम्य फैला हुआ है उसका मूल कारण आर्थिक दुर्व्यवस्था नहीं है, उसका मूल कारण है व्यक्ति में नैतिक ईमानदारी की कमी। आज का व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा एक सा नहीं है। उसमें आत्म-विश्वास और स्वस्थ चेतना का अभाव है। आज का राजनैतिक मानव नैतिक सिद्धांतों के साथ गठबन्धन नहीं करता। वह राजनीति और धर्म (नीति) को तो परस्पर विरोधी समझता है। राजनीति में सत्य, प्रेम, अहिंसा को वह स्थान देने को तैयार नहीं। यही सब से बड़ी विषमता की जड़ है। जब तक मनुष्य में आत्मनिर्माण द्वारा नैतिक बल और स्वस्थ आत्म-चेतना की जागृति नहीं की जायेगी तब तक एक समाजवाद तथा साम्यवाद क्या लाख समाजवाद और साम्यवाद भी स्वस्थ मानवता का विकास नहीं कर सकते। गांधीवाद ही एक मात्र ऐसा पथ है जिस पर चल कर व्यक्ति की स्वस्थ चेतना जागृत हो सकती है। गांधी-वाद व्यक्ति के निर्माण से समाज का निर्माण और समाज के निर्माण द्वारा जाति तथा राष्ट्र का निर्माण और राष्ट्र के निर्माण द्वारा समस्त मानवता का निर्माण कर सकता है।

आज भारत में स्वस्थ चेतना का नितान्त अभाव है, उसकी नैतिक ईमानदारी का दिवाला निकल गया है, धार्मिक निरंकुशता का बोल बाला है। ऐसे अन्धकार के समय केवल गांधीवाद ही उसके भूले भटके समुद्री जहाज के लिये प्रकाश स्तम्भ (Light House) है।

गांधीवाद पर चल कर ही उसका कल्याण हो सकता है और उसी की छत्र छाया में यौद्धिक अशान्ति से श्रान्त और त्रस्त मानवता शान्ति लाभ कर सकती ।

(श्री हरप्रसादशास्त्री)

भारतीय वैधानिक प्रगति

प्रारम्भिक इतिहास (१६००)

यह वह समय था जब कि पाश्चात्य देशों का व्यापार उन्नति के पथ पर था और यह जाति अपने को विज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति द्वारा विश्व की दृष्टि में सभ्य तथा उन्नतिशील दृष्टिगोचर हो रही थीं। ऐसे समय का लाभ उठाने के लिये कुछ पाश्चात्य व्यापारियों ने महारानी एलिज़ा बेथ का सहयोग पाकर भारत में व्यापार करने की जिज्ञासा से ईस्ट-इंडिया कम्पनी का संगठन किया। सन १६१५ में सर टामस रो केवल व्यापारिक सम्बन्ध के लिये राजदूत बनकर आया। वह तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् भारत की स्वतन्त्रता को मुट्ठी में बांध कर स्वदेश लौटा। इसके उपरान्त भारत में पाश्चात्य व्यापारियों ने अपनी कोठियाँ बनाई जिससे उनका व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

इस समय यवनों की सत्ता क्षीण तथा निस्तेज होती जा रही थी। अब कोई ऐसा शासक नहीं रह गया था जो मुग़लों की श्रृंखला को उसी रूप से श्रृंखलित रख सकता। आपसी कलह के कारण छोटे छोटे नवाब तथा जागीरदार अपनी सत्ता को बढ़ाने के लिए इस पाश्चात्य कम्पनी के ऋणी बन गये थे। इस कम्पनी में लूट खसोट का आन्दोलन आरम्भ हो गया। इस आन्दोलन को कुचलने के लिए १७७३ में रेगूलेटिंग एक्ट के अनुसार बंगाल के राज्यपाल (गर्वनर) ब्रिटिश भारत का गर्वनर जनरल बना दिया गया, जिस से इस कम्पनी के सारे अधिकार समाप्त हो गए।

१८५७ का असफल विद्रोह

भारत अशक्त हो चुका था दिल्ली में भारतीय अंतिम सम्राट

बहादुरशाह जो कि अंग्रेजों का पेंशनर था अपने जीवन का एक एक दिन गिन रहा था। इसी समय में सब के अधिकारों के छिन जाने के कारण उस के हृदय में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी थी। जिसने विद्रोह का रूप धारण किया। जो भारत की सर्व प्रथम संगठित क्रांति थी। परन्तु साधारण जनता का असहयोग तथा आपसी भेद भाव के कारण असफल रही जिससे भारत की परतंत्रता की नींव सुगमता से पड़ सकी।

एक्जिक्यूटिव कौंसिल ऐक्ट

इस स्वतन्त्रता के प्रथम समर ने अंग्रेजों के हृदय में प्रति-शोध की ज्वाला भर दी। ऐसे अशान्त वातावरण में लार्ड कैनिंग ने बड़ी ही कूट नीतिज्ञता तथा दूरदर्शिता से काम लिया तथा सन १८६१ में वायसराय के अधिकारों को कम करके सलाहकार परिषद् बना दिया गया। १८७५ में कुछ संशोधित किया गया और परिषद् के हाथ में कुछ साधारण से विभाग भी सौंपे गए तथा ब्रिटिश सरकार ने चान्दी के कुछ टुकड़ों तथा झूठे सम्मान के द्वारा अपने शासन की नींव को और भी जमा लिया था। तथा आपसी भेद भाव को उत्पन्न करने के वास्ते सरकारी पदों के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम सीटों का पृथक विभाजन कर दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों की नीति तीव्रता से अपने पथ की ओर अग्रसर होती गई।

कांग्रेस का जन्म

साम्पदायिक मत भेद बढ़ने तथा शासन की त्रुटियों के कारण जनता के हृदय विदीर्ण हो उठे थे। उनके हृदय को शांत करने के लिए सन् १८८५ में ए० ष्च० ह्यू म के मस्तिष्क से कांग्रेस का जन्म हुआ। इसका एक मात्र उद्देश्य था राजकीय तथा अराजकीय राजनीतिज्ञों का वर्ष में एक बार एकत्रित होकर विचार विनिमय करना तथा राज्य का ध्यान शासन की उन त्रुटियों की ओर आकर्षित करना जिस के कारण किसी समय असंतोष उत्पन्न हो सकता था।

इस संस्था में १८९२ में इंडिया कौंसिल ऐक्ट के अनुसार

चुनाव पद्धति बनी जिस में गैर सरकारी नेताओं को भी इस सलाहकार परिषद् में स्थान मिला तथा उन्हें विवाद करने का भी अधिकार दिया गया। लार्ड कर्ज़न राजनैतिकता के इस कड़वे घूंटों को न पी सका और उसने कांग्रेस को कुचलनेका प्रयत्न बंगाल के दो भाग करके, हिन्दू यवन समस्या को गुरुतर बनाकर तथा एक संकेत पर ही मुस्लिम लीग जैसी प्रतिक्रियावादी संस्था को जन्म देकर किया। बंगालियों ने बंगभंग को प्रचण्ड रूप दे दिया और इस आन्दोलन का समर्थन कांग्रेस ने भी बनारस अधिवेशन में किया। इस समर्थन के पश्चात् ही वैधानिक संग्राम का आरम्भ बताना उचित होगा। साथ ही यह भी कहना अनुचित न होगा कि वैधानिक सुधारों का सूत्रपात भी यहीं से हुआ सर्व प्रथम 'सुधार मिण्टो मार ले सुधार' था। जिस के अनुसार कौंसिलर्स के अधिकारों में अभिवृद्धि की गई।

कांग्रेस अब एक प्रगतिशील राजनैतिक संस्था बन गई थी। इसकी शक्ति बढ़ती देख कर सरकार ने 'मांट फोर्ड सुधार' की घोषणा की जिसका मसविदा ब्रिटिश पार्लियामेंट में सन् १९१७ में पेश हो चुका था पर उसकी घोषणा भारत में १९१९ में हुई। १९१४ के महायुद्ध में भारत ने ब्रिटेन की बहुत सहायता की थी और वह आशा कर रहा था कि उत्तरदायी शासन बहुत ही शीघ्र मिलेगा। किन्तु उसके विपरीत सरकार ने 'रोलट एक्ट' पास कर के भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं का दमन कर दिया। इस कारण समस्त देश में असन्तोष की ज्वाला भभक उठी। उस समय गान्धी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह संग्राम का नेतृत्व कर भारत वापस आ चुके थे। उन्होंने यहाँ की दशा का अवलोकन कर सत्याग्रह की घोषणा कर दी। इस के फल स्वरूप अमृतसर में पाश्चात्य अधिकारी वर्ग ने नृशंसकता पूर्वक दमन किया। जलियां वाले बाग में जनता पर गोलियों की बौछाड़ की गई। बापू ने इतने पर भी दोनों जातियों को एकता का पाठ पढ़ाया और असहयोग आन्दोलन को आरम्भ कर दिया। इसमें विदेशी वस्तुएँ, सरकारी अदालत, सरकारी स्कूलों, नौकरियों और शराब का बहिष्कार किया।

इसका परिणाम यह हुआ कि अल्प संख्यक विद्यार्थियों ने

कालिज छोड़ दिये, हजारों वकीलों ने अदालतें छोड़ दीं। ऐसे समय में सरकार ने हिन्दू मुस्लिम फूट डाल दी। और बड़े बड़े सरकारी नेताओं को जेल में ठूंस दिया गया। कार्य में शिथिलता आ जाने पर पं० मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी ने कौंसिलों में जाकर सरकारसे संघर्ष किया। १६१७ में 'साइमन कमीशन' भारत में आया। उसका सर्वत्र जनता ने काले झंडों से स्वागत किया। सन् १६३० में गांधी ने डण्डी यात्रा में नमक कानून तोड़ कर सत्याग्रह का सूत्र-पात किया। जिस को रोकने के लिए अनेक नये आर्डीनेन्स बनाये गये। सन १६३१ मार्च में लार्ड अरविन--गांधी समझौता हुआ।

गोलमेज कांफ्रैंस और १९३५ का शासन विधान

जनता में असन्तोष बढ़ जाने के कारण १६३० में गोल मेज कांफ्रेंस लंदन में बुलाई गई। इस में सरकार ने भिन्न जातियों के कुछ प्रति-निधि स्वयं निमन्त्रित कर लिए। इस से भी पूर्ण सन्तोष न हुआ तो १६३५ में जाकर निम्न प्रस्ताव एक विधान के रूप में पार्लियामेंट में पास हुआ और सितम्बर को उस पर ब्रिटिश सम्राट के हस्ताक्षर हो गये।

१—इस विधान के अनुसार रियासतें भी भारतीय सरकार में सम्मिलित हो गईं अब तक केवल ब्रिटिश भारत के प्रान्त ही केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित थे।

२—प्रान्तों को पूर्ण उत्तर-दायी शासन दे दिया गया।

३—केन्द्र में भी रेलवे, रिजर्व बैंक तथा विदेशी नीति को छोड़ कर सभी महकमे केन्द्रीय धारा सभाओं के प्रति जिम्मेवार मंत्रियों को सौंप दिये गये।

४—सभी प्रान्तों व रियासतों की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई। किन्तु कुछ एक मामलों में उनके द्वारा कुछ अधिकार स्वयं संगठित संघ को सौंप दिये गये।

५—साम्प्रदायिक चुनाव की प्रथा को स्थिर रक्खा गया तथा १६३२ में दिये गये ब्रिटिश प्रधान मंत्री रैमसे मैकडानल्ड के निर्णय के अनुसार विभिन्न व्यवस्थापक सभाओं में

हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख ईसाइयों के प्रतिनिधियों की संख्या नियत कर दी गई।

मध्य का मार्ग

कांग्रेस ने केन्द्र में इस संघीय शासन विधान को अस्वीकार कर दिया और प्रान्तों में चुनाव लड़ने का निश्चय किया। सन् १९३६-३७ के शरद काल में चुनाव का संग्राम छिड़ा और उसमें अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई। बिहार, उड़ीसा, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बम्बई और मद्रास में विशुद्ध कांग्रेसी मंत्री मण्डल बने। केन्द्र में सन् १९१९ का विधान कांग्रेस ने स्वीकार किया।

१९४२ की जनक्रान्ति व क्रिप्स प्रस्ताव

१९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। इस में लोकमत जाने बिना ही ब्रिटिश सरकार ने इस देश को भी युद्ध में घसीट लिया। कांग्रेस ने इससे असन्तुष्ट हो कर असहयोग की नीति स्वीकार की। सब प्रान्तीय प्रतिनिधियों ने त्याग-पत्र दे दिये। इस के उपरान्त १९४०-४१ में गांधी ने व्यक्तिगत आन्दोलन का संचालन किया। यह आन्दोलन भारत को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए था। कुछ मास पश्चात् गांधी जी को स्वयं यह आन्दोलन बन्द करना पड़ा।

१९४२ का आन्दोलन

सर स्टेफोर्ड क्रिप्स भारतीय नेताओं से बात चीत करने यहां आये, किन्तु कोई समझौता न होने पर कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया। ८ अगस्त १९४२ को महात्मा गांधी को सत्याग्रह आरम्भ करने का भी अधिकार दे दिया गया। वे वाइसराय से पत्र द्वारा बातचीत करना चाहते ही थे कि सब नेता गिरफ्तार कर लिये गए। इस से सारी जनता में असन्तोष फैल गया और इसने एक प्रचण्ड रूप धारण किया। जिस का नाम 'सन् १९४२ की क्रान्ति' पड़ा। इसमें रेल की पटरियों को उखाड़ने, कई स्थानों में रेलगाड़ियों व स्टेशनों को जलाने, अंग्रेजों को मारने, थानों व अदालतों पर कब्जा करने के भरसक प्रयत्न किये गये। अनेक स्थानों पर जनता का शासन हो गया।

इस पर सरकार भी चुप न रह सकी। उस ने भी अपनी बर्बरता तथा नग्नता का परिचय दिया। अनेक स्थानों पर जन समूहों पर गोलियां चलाई गईं।

कितनी ही स्त्रियों पर बलात्कार कर उन को नंगी पेड़ों से लटका दिया गया। कितने ही अबोध बच्चों को संगीनों से बेध दिया गया। कितनी ही नव-युवतियों के शरीर को अपवित्र कर उनको आग में झोंक दिया गया। गांव के गांव जला दिये गये अर्थात् जी खोल कर बदला लिया गया। जनता पर लाखों रुपये सामूहिक कर लगाये गये। यह आन्दोलन भी समाप्त किया गया किन्तु स्वतन्त्रता की भावना जनता के हृदय में प्रबल हो उठी।

वेवल योजना

इस क्रान्ति से ब्रिटिश सरकार को पता लग गया कि अब उनकी सत्ता का पलड़ा डांवा डोल हो चुका है। जिस समय सारे नेता सरकार के मेहमान थे। उस समय देश के बाहर सुभाष बाबू के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौजें बर्मा में ब्रिटिश सैनिकों से मोर्चा ले रही थीं, इस में सफलता न मिल सकी। मई १९४५ में जर्मनी ने पराजय मान ली। इस विजय के उपलक्ष में सरकार ने विजयोत्सव मनाये और इनाम बाँटे, परन्तु जनता ने इसमें कोई सहयोग नहीं दिया। गांधी जी छोड़ दिए गए। लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड वेवल वाइसराय पद पर नियुक्त हुए। उसने आते ही राजनैतिक नेताओं से परस्पर विरोध मिटाने के लिए बात-चीत आरम्भ की। इसके लिए 'शिमला सम्मेलन' बुलाया गया। सम्भव था समझौता हो जाता और 'वेवल-योजना' स्वीकृत हो जाती, किन्तु जिन्हा साहब की हठ ने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करने दिया। इसके अतिरिक्त उसमें भी कुछ त्रुटियां थी।

इस योजना में युद्ध विभाग और विशेषाधिकारों को छोड़कर शेष वे भी विभाग जन प्रतिनिध्यात्मक केन्द्रीय मंत्री मंडल के अधिकार में दिये जाने की बात थी जो क्रिप्स योजना ने वाइसराय के लिए

सुरक्षित रख छोड़े थे। सन् १६१४ के बम्बई अधिवेशन में पास किए गये प्रस्ताव के आधार पर भारत को एक विधान परिषद् द्वारा बनाया गया विधान ही मान्य होना चाहिए था, जिसका उल्लेख इस योजना में नहीं था। अतः यह असफल रही।

भारत मंत्री का अन्तिम प्रयत्न

इतने पर लार्ड वेवल प्रयत्न करते ही रहे। उधर ब्रिटेन में प्रधान मंत्री का चुनाव हुआ, जिसमें मजदूर पार्टी ने भारत को स्वतंत्र करने की अपनी नीति की घोषणा करके चुनाव लड़ा और ब्रिटिश जनता की सहानुभूति प्राप्त की, इस पर मजदूर पार्टी की विजय हुई और श्री एटली प्रधान मंत्री बने। इस के उपरान्त एक मंडल भारत आया और उसने देश के राजनैतिक वातावरण का अध्ययन किया। उसके उपरांत उसने अपनी रिपोर्ट ब्रिटेन पहुंच कर दी, इधर लार्ड वेवल के प्रयत्नों से कांग्रेस को नया जन्म मिला।

इसके उपरांत भारत मंत्री श्री पैथिक लारेंस, श्री क्रिप्स तथा श्री अलग्जेंडर वायुयान द्वारा भारत आए, और भारतवासियों के प्रति व्याख्यानों द्वारा अपनी उदारता प्रगट की। १५ मई के भाषण के आधार पर अंतर्कालीन सरकार बनी, जिसके अध्यक्ष लार्ड वेवल थे।

इस योजना के अनुसार भारत को तीन भागों में विभाजित किया गया। आसाम बंगाल एक में, सिंध पंजाब सीमांत को दूसरे में, तथा शेष प्रांतों को तीसरे में स्थान दिया गया। श्री जिन्हा इस विभाजन से पूर्ण संतुष्ट थे, किंतु श्री जवाहर लाल नेहरू की इस व्याख्या से, कि भागों में प्रत्येक प्रांत आत्म निर्णय के सिद्धांत पर ही प्रवेश करेगा, जिन्हा साहब का मत भेद होगया। अतः इस परिषद में पुनः असहयोग रहा।

कलकत्ते में रक्त-पात

श्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अंतर्कालीन सरकार बन जाने के कारण श्री जिन्हा के नेत्रों में प्रतिशोध की ज्वाला भभक उठी

इसी हेतु १६ अगस्त को मुस्लिम लीग ने संघर्ष दिवस का निर्माण किया। कलकत्ते में इस संघर्ष ने बड़ा भयानक रूप धारण किया। जिस में सहस्रों हिन्दू और मुसलमान मारे गये। इस के कुछ समय पश्चात नौआखली में रक्तपात हुआ। जिसका वर्णन लेखनी द्वारा भी होना कठिन सा है, इतने पर भी श्री नेहरू की केन्द्रीय सरकार असमर्थ थी, प्रान्तीय शासन अधिकारी मुस्लिम लीग के प्रभाव में थे जिस के कारण गवर्नर जनरल तक भी सब कुछ देख करके भी चुप थे।

मुस्लिम लीग सरकार में

ऐसे अशान्त वातावरण में भी श्री नेहरू की सरकार स्वराज्य प्राप्ति के लिए घोर संघर्ष कर रही थी। और यह सम्भव हो गया था कि सम्पूर्ण स्थिति पर काबू हो जाता। किन्तु उसी समय लार्ड वेवल ने लीग को अन्तर्कालीन सरकार में मिल जाने को उद्यत कर दिया। स्वर्गीय श्री लियाकतअली अर्थ मंत्री बनाये गये। इस सहयोग से भारत की दशा और भी बिगड़ती गई क्योंकि मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग की रट लगाये हुए थी। और कांग्रेस को सहयोग देने के स्थान पर रुकावटें डाल रही थी। इस पर निश्चय हुआ कि भारत जून १९४८ तक पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया जायेगा। और मुसलमानों को यह आश्वासन दिया जा चुका था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन पर कोई भी विधान लागू नहीं किया जायेगा। इस से लीग ने बहुत लाभ उठाया। साम्प्रदायिकता में व्यस्त रही जिस के कारण पंजाब, सिंध, व सीमा प्रान्त में रक्त-पात चालू रहा।

माउन्ट बेटन भारत में

२३ मार्च सन् १९४७ को लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउन्ट बेटन गवर्नर जनरल बन कर भारत आये। उन्होंने सब नेता गणों से मिलकर यह निश्चय किया कि मुस्लिम लीग को पाकिस्तान दे दिया जाये। किन्तु पंजाब बंगाल के हिन्दू प्रधान भागों को पाकिस्तान में न मिलाया जाये। इस विषय में ब्रिटिश सरकार द्वारा ३ जून ४७ को घोषणा की गई। जिस में भारत का विभाजन इस प्रकार

किया गया—

सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, सिन्ध, पश्चिमी पंजाब, और पूर्वी बंगाल, सिलहट जिले के साथ पाकिस्तान को।

पूर्वी पंजाब, दिल्ली, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मद्रास और बम्बई भारतवर्ष को। रियासतों को यह अधिकार मिला कि वे जिस संघ में मिलना चाहें मिल सकती हैं और स्वतन्त्र भी रह सकती हैं।

इतने पर भी भारत में भी रक्तपात की गाड़ी पूर्ण वेग से बही जा रही थी, उसे रोकने के लिए बापू ने शीघ्र ही स्वराज्य देने का अनुरोध किया। अब पाश्चात्य सरकार की इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। इसलिए ८ जौलाई को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने नया बिल पास करके भारत और पाकिस्तान दोनों को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का निश्चय किया, और यह भी निश्चय किया गया कि जून १९४८ के बजाय १५ अगस्त १९४७ को ही भारत स्वतन्त्र कर दिया जावे।

१५० वर्षोंके पश्चात् गोरी सरकारका शासन १५ अगस्त १९४७ को समाप्त हो गया और भारत तथा पाकिस्तान दोनों स्वतन्त्र उपनिवेश बन गये। इसके पश्चात् विदेशी सेनाओं की भी भारत छोड़ने की व्यवस्था की गई।

विभाजन का परिणाम

वाइसराय तथा सरकारी अधिकारियों ने दिनरात परिश्रम करके भारत के विभाजन को कुछ मास में कर डाला। सब दफ्तरोंके कागजात, किताबें, फर्नीचर, कर्मचारी और उनकी पुरानी पेंशनें, कारखाने सब का विभाजन किया गया। प्रत्येक प्रांत के सरकारी भवनों का अनुमान लगाया गया। सेनाओं, रेलगाड़ियों, लारियों, जहाजों इत्यादि को बराबर बांट दिया गया। रैडक्लिफ नामक अंग्रेज ने सीमा बँटवारा कर दिया।

इस के उपरान्त पंजाब के दोनों भागों में अल्पसंख्यकों पर

अत्याचार आरम्भ हो गये। रक्त-पात, नर-संहार, लूटमार और आगजनी के भयंकर कांड होने लगे। अनेक स्त्रियों पर बलात्कार कर उनके अंगों को काट डाला गया। इस आँतक से तंग आकर अल्पसंख्यक रक्षा के हेतु भागने लगे। पाकिस्तान से लगभग ५० लाख हिंदू सिख अपने भवनों और लाखों करोड़ों रुपयों को छोड़कर भारत चले आये।

इन शरणार्थी बन्धुओं के खाने पीने तथा बसाने के सम्बन्ध में सरकार ने बड़ी तत्परता से काम लिया।

रियासतों की समस्या

१५ अगस्त १९४७ से पूर्व भारत वर्ष में करीब ६०० रियासतें थीं। जिन की आबादी लगभग ८ करोड़ तथा क्षेत्र फल ७ लाख वर्ग मील था। भारत सरकार के महान नीतिज्ञ श्री सरदार वल्लभभाई पटेल रियासत सचिवालय के प्रधान मन्त्री ने अपनी चतुरता से सभी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया और निम्नलिखित चार परिवर्तन कर दिये।

(१) छोटी छोटी रियासतों को समाप्त करके उन्हें आस पास के प्रान्तों व रियासतों में मिला दिया गया।

(२) मध्य श्रेणी की रियासतों को परस्पर संघ बना कर एकत्र कर दिया गया और उनके शासन प्रबन्ध को केन्द्रित कर दिया गया। लगभग ३०० रियासतें ६ रियासत संघों में इस प्रकार सम्मिलित हो चुकी हैं—

नाम संघ	अंतर्गत रियासतों की संख्या
१—सौराष्ट्र संघ	२२०
२—मत्स्य संघ	४
३—विन्ध्य प्रदेश	३५
४—राजस्थान संघ	१०
५—मध्यभारत	२०

६—पटियाला तथा पूर्वी पंजाब ८

३– जयपुर, जोधपुर और बीकानेर आदि राजपूताने की बड़ी रियासतें अब तक अपनी पृथक सत्ता को नहीं छोड़ सकीं।

४– रियासतों में निरंकुश शासन को दूर करके जनतन्त्र प्रणाली को प्रचलित करने की चेष्टा की गई।

५– पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभागों का भी संगठन किया गया।

भारतीय सरकार से सम्बन्ध

रियासतें तथा संघ अपने प्रांतीय सम्बन्ध में स्वतन्त्र होने पर भी निम्न लिखित तीन विषयों पर भारत की केन्द्रिय सरकार के अनुशासन में रहेंगी।

१– राष्ट्र रक्षा

२– विदेशों से संबन्ध

३– यातायात

हैदराबाद व काश्मीर समस्या

सब रियासतों के सम्मिलित होने पर भी हैदराबाद और काश्मीर के शासकों ने संघ में शामिल नहीं होना चाहा। हैदराबाद का नवाब मुस्लिम राज्य के प्रभुत्व के स्वप्नों की लड़ियाँ गिन रहा था। वहाँ की इत्तहादुल पार्टी और रजाकारों ने जिस के नेता कासिम रिजवी और मीर लियाकत थे। वे सब भारत पर अपना आधिपत्य जमानेकी चेष्टा कर रहे थे। उस चेष्टा के फल स्वरूप ६५ प्रतिशत हैदराबाद के निवासी हिंदुओं पर नृशंस अत्याचार किये। विवश होकर भारत ने इन के प्रति सख्ती आरम्भ की। और ६–७ दिनों के कठिन परिश्रम के पश्चात् निजामने शस्त्र डाल दिये। इसके उपरान्त सरकार ने जनरल चौधरी के नेतृत्व अस्थाई सरकार स्थित कर दी।

काश्मीर में ६५ प्रतिशत मुसलमानी बहुमत था। काश्मीर की दक्षिणी पूर्वी सीमायें भारत से मिलती हैं और पश्चिम उत्तरी सीमायें

पाकिस्तान से मिलती हैं। काश्मीर का शासक हिंदू के कारण पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं होना चाहता था अतः पाकिस्तान ने जबरदस्ती उस पर कब्जा करना चाहा और चुपके चुपके पठानी फौजों को सहायता देने लगा जो बढ़ते बढ़ते श्रीनगर तक पहुँच गई थी। काश्मीर नरेश इस आतंक से घबरा गया और भारतीय संघ में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। ऐसा होते ही भारतीय सेनाएं वायुयान द्वारा काश्मीर पहुँच गई।

युद्ध में भारतीय सेनाओं की विजय हुई। वहां की जनता का नेता शेख अब्दुल्ला भारत संघ में मिलना चाहता है। क्योंकि वे पाकिस्तान के घोर विरोधी हैं। यह सब निर्णय काश्मीर की जनता पर छोड़ दिया गया है।

नया विधान

संविधान सभा ने २५ फरवरी १९४२ को डाक्टर अम्बेदकर की अध्यक्षता में मसविदा बनाकर विधान सभा में पेश कर दिया। लगभग कुछ वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् भारतीय विधान परिषद् में इस विधान की स्वीकृति २६ नवम्बर को हुई उस समय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने अपने भाषण द्वारा इस की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पृष्ठ भूमिका पूर्ण रूप से जनता को दिग्दर्शन कराया।

संविधान की राजनीतिक पृष्ठ भूमि

इसकी प्रस्तावना के अवलोकन करने से ज्ञात हो जाता है कि देश की सरकार को सम्पूर्ण प्रभुता भारत की नागरिकों से प्राप्त होती है। इस में मुख्य विशेषतायें यह हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, विचार विश्वास, तथा धार्मिक पूजा विधि की स्वतंत्रता, नागरिकता के अधिकार, विकास के अवसरों पर समानता तथा भ्रातृत्व प्रेम और राष्ट्रीय संगठन इत्यादि। इस को जनतंत्रात्मक इस लिए कहा गया कि भारत के प्रधान अधिशासक का पद कोई पैतृक सम्पत्ति न होकर योग्यता तथा चुनाव के द्वारा प्राप्त होनेवाला पद होगा। इसी तुलना को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विधान से करने पर पता चलता है

कि यह दोनों ही संविधान संघीय होने के हैं और दोनों में ही संविधान संघीय होने के हैं और दोनों में ही प्रधान अविशासक जनता द्वारा चुना जावेगा। इस की बड़ी विशेषता यह भी है कि किसी राज्य को संघ से पृथक होने अथवा संविधान स्वयं बनाने का अधिकार नहीं दिया गया। इस के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर उसका संघीय स्वरूप हटा दिया जा सकता है और वह एकात्मक विधान रूप में व्यवहार में लाया जा सकता है। साधारण परिस्थितियों के अतिरिक्त युद्ध कालीन समय में अथवा किसी भी राष्ट्रीय संकट में सारा देश एकात्मक राज्य के रूप में परिणित किया जा सकता है।

संविधान में व्यक्ति का स्थान

इस विधान में व्यक्ति के अधिकारियों की बड़ी विशद और विस्तृत घोषणा की गई है। इस का कारण यही है कि भारत में सामाजिक असमानता की अधिकता और उसको शोषण बहुत बढ़ चुका था। इसके अतिरिक्त भारतीय विधान निर्माताओं के सन्मुख संयुक्त राष्ट्र का विधान था। बजाय इसके कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्ति के मूल अधिकारों की व्याख्या करने का अवसर दिया जाता, संविधान में ही उसके मूल अधिकारों की घोषणा की गई है।

संविधान के द्वारा व्यक्ति को दिये गये अधिकार मुख्य रूप में निम्न हैं।

१—समानता का अधिकार।

२—स्वतन्त्रता का अधिकार।

३—शोषण के विरोध का अधिकार।

४—धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।

५—सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार।

६—सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार।

७—वैधानिक संरक्षण का अधिकार।

इनके अतिरिक्त विधान की १४ वीं धारा में कानून के आगे प्रत्येक व्यक्ति को समानता के अधिकार मिले हैं। धर्म विश्वास को लेकर किसी प्रकार का भेद भाव राज्य के कार्यों में नहीं किया जायेगा। इतना होते हुए भी विधान की १७वीं धारा में ऊंच नीच के कलंक को मिटाने के लिए विशेष रूप से व्यवस्था की गई है और इस प्रकार से व्यक्ति की समानता के अधिकार की पूर्ण रूप से पुष्टी कर दी गई है।

१६वीं धारा के अन्तर्गत नागरिकों को अपने विचार प्रगट करने तथा संस्थाएं बनाने, निवास, सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा हस्तांतरित करने का भी उद्योग धन्धा, व्यवसाय या आजीविका अपनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है। हेबियस कार्पस के सिद्धान्तों को विधान की २०वीं तथा २१वीं धारा अन्तर्गत निहित कर दिया गया है। जिसका सारांश यह है कि किसी भी व्यक्ति को बिना कानूनी कार्यवाही के उसको स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जासकता। विधान की २२वीं धारा के अन्तर्गत व्यक्ति की मनमानी गिरफ्तारी और अनिश्चित काल तक की नजार बन्दी के विरुद्ध व्यवस्था की गई है। नजर बन्द व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी क़ानूनी सलाहकार से सलाह लेने का अधिकारी रहेगा।

२३वीं धारा के अन्तर्गत नागरिकों का क्रय विक्रय तथा बेगार अपराध बनाये गये हैं। और २४वीं धारा में बताया गया है कि १४ वर्ष की अवस्था से कम का कोई नागरिक फैक्टरी या खान अथवा किसी भयानक कार्य में नहीं लगाया जायेगा।

२५ वीं धारा से ३० वी धारा के अन्तर्गत धार्मिक, सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

३१ वीं धारा के अन्तर्गत बताया गया है कि कानूनी तरीकों के सिवाय, अन्य किसी तरीकों से किसी भी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा। जिस किसी भी सम्पत्ति का अधिकार या स्वामित्व सार्वजनिक हित के लिए लिया जायेगा, उसकी क्षति पूर्ति की जायेगी।

३२ वीं धारा के अन्तर्गत बताया गया है कि संविधान द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों को कार्यान्वित कराने का उत्तर दायित्व देश के लिए सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है जो सदैव इस के लिए सजग रहेगा कि व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर कोई भी कुठाराघात न हो सके।

संविधान की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि

विधान के चतुर्थ खंड में राष्ट्र नीति के आदेशात्मक सिद्धान्तों की घोषणा की गई है। इस में बताया गया है कि राज्य जनता की सुख सुविधा को बढ़ाने के लिए सदा यत्न शील रहेगा और उसके लिए वह इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक-न्याय प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हो सके। विशेष रूप से राज्य इस बात के लिए यत्नशील होगा कि प्रत्येक नागरिक पुरुष हो अथवा नारी आजीविका उपार्जन करने का अधिकारी होगा इस खंड में यह भी बताया गया है कि राज्य देश के उत्पादक साधनों के स्वामित्व और नियन्त्रण का इस प्रकार बंटवारा करेगा जिससे जनता का अधिक से अधिक लाभ और कल्याण हो सके।

आज की व्यवस्था को उत्पन्न करने के लिये ही कांग्रेस ने इतने दिनों से स्वतन्त्रता के संग्राम को चलाया था। तब वह देश की स्वतन्त्रता व्यर्थ सिद्ध होती है तब तक उस देश के निवासी आर्थिक समानता न पासके हों। जो मौलिक अधिकार और सिद्धान्त इस संविधान में आये उनका उल्लेख कांग्रेस ने पहले ही घोषणा पत्रों द्वारा कर दिया था। अतः यह कहना चाहिये पिछले पचास वर्षों से जिन सिद्धान्तों के लिये हमारे राष्ट्र में स्वाधीनता संग्राम का आरम्भ हुआ, उन्हीं को इस विधान में विशेष स्थान मिला।

यह भारतीय संविधान देश की जनता की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुकूल विकास और प्रगति का जीता जागता स्वरूप है।

इस प्रकार से भारत की वैधानिक प्रगति हो सकी है।

(सम्पादक)

भारतीय ग्राम और उनकी सुधार योजना

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहां के नव्वह प्रतिशत निवासी भूमि माता की आराधना करते हुए ग्रामों में वास करते हैं। इसीलिए हमारे देश में ग्रामों का आधिक्य है। नगरों की संख्या बहुत कम है और वे उंगलियों पर गिने जा सकते हैं, देश का भाग्य ग्रामों के साथ बंधा है, उन्हीं की स्थिति पर देश का उत्थान-पतन निर्भर है। इसी कारण ग्रामों की समस्या अपना निजी महत्व रखती है।

भारत के ग्रामों की दशा, वहां का वातावरण बड़ा विचित्र और करुणोत्पादक है, जंगल-जंगल, हरे-भरे खेतों में फैली सर्पाकार, लहराती पगडंडियों और मेड़ों पर होते चले जाओ, जहां खेतों में से मलमूत्र की तीव्र दुर्गन्ध आने लगे, समझ लो किसी ग्राम के समीप आ पहुंचे। कुछ ही आगे बढ़ने पर कूड़ों से उठ कर मक्खियों के झुंड के झुंड आगंतुक का स्वागत करते हैं और दिन-रात के प्रहरी श्वानदेव चिल्ला कर उसके आगमन की सूचना ग्रामवासियों को दे देते हैं। सामने गांव है, लम्बे चौड़े परन्तु कच्चे और टूटे-फूटे घरों और झोंपड़ों का समुदाय। घरों की दीवारों में न खिड़कियां हैं, न वातायन। मार्ग ऊंचे-नीचे और धूलभरे गन्दे हैं। घरों के गन्दे पानी के लिए नालियां नहीं हैं, वह घर के बाहर किसी गढ़े में एकत्र होता रहता है या मार्ग में बहकर दलदल उत्पन्न करता है। सीमा पर किसी वृक्ष के नीचे कूंआ है, जिसमें वृक्ष के पत्ते और पक्षियों की बीट गिर कर जल को गन्दा करती रहती है। जो कमी रह जाती है उसे ग्रामवासी कूंए की नीची जगह पर स्नान करके और कपड़े धोकर पूरा कर देते हैं। इस कूंए से युवतिएं और वृद्धाएं मिट्टी के घड़ों में जल भर कर ले जाती हैं। गांव के बाहर एक ताल है जिसमें मैला पानी भरा रहता है। इसमें दोपहरी में सूअर

और भैंसे लेट-लेट कर कीचड़ घोलते हैं और गरीब चमारों के बच्चे स्नान और जल क्रीड़ा का आनन्द लेते हैं।

इन ग्रामों के निवासियों की दशा भी ऐसी ही है। वे परिश्रमी हैं। परन्तु पेट के लिए पूरा भोजन और तन के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं जुटा पाते। उनके स्त्री-बच्चे आधे भूखे और आधे नंगे रह कर दुखपूर्ण जीवन बिताते हैं। किसी ग्रामीण की करुण पुकार है--

सिसक-सिसक कर बच्चे रोते, बाहर होता हमें तुषार।
किसे सुनावें कष्ट कहानी, आह सुनेगा कौन पुकार॥

अविद्या और अज्ञान का यहाँ अटल राज्य है। अन्ध-विश्वास और रूढ़िवाद का बोल बाला है। भूत-प्रेत, जादू-टोने में सब का विश्वास है। किसी के बीमार पड़ने पर उसकी दवा-दारूके स्थान पर झाड़-फूंक करना उन्हें अधिक पसंद है। महामारी का प्रकोप होने पर वे स्वच्छता और शुद्धि करने के स्थान पर दान-कथाओं की ओर दौड़ते हैं। तेली के बैल की तरह का कठोर और एकस्वरता से परिपूर्ण उनका जीवन है, जिसमें कहीं नवीनता नहीं, कोई उत्साह नहीं, कोई उल्लास नहीं। वर्ष भर में होली, दिवाली इत्यादि धार्मिक त्योहार या सगाई-विवाह आदि सामाजिक उत्सवों पर ही उन्हें अमोद-प्रमोद मनाने के अवसर प्राप्त होते हैं। खेल-कूद, सैर-सपाटे आदि मनोरंजन का कोई भी साधन उन्हें उपलब्ध नहीं है।

ग्रामों की सुधार-योजनाओं का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अंगरेजी शासकों ने उनकी दशा सुधारने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। सबसे पहले कांग्रेस का ध्यान इस ओर गया। उसे स्वतंत्रता-संग्राम में ग्रामवासियों का सहयोग प्राप्त करना था। महात्मा गांधी ने बताया था राष्ट्र की आत्मा झोंपड़ों में वास करती है। कांग्रेस के इस क्षेत्र में उतरते ही अंगरेजों के कान खड़े हुए और उन्होंने ग्राम-सुधार के अफसर नियुक्त किये। पर यह योजना ग्राम संबन्धी आंकड़े एकत्र करने और भाषण देने तक सीमित रही और कोई रचनात्मक कार्य न हो सकी। ग्रामों में सेवकों की आवश्यकता थी, अफसरों की नहीं। ग्राम सुधार का थोड़ा बहुत ठोस कार्य काँग्रेसी

सरकार द्वारा ही हो पाया है। उसने स्वतंत्रता मिलने पर सन १६४७ में पंचायत राज्य एक्ट पास किया, जिसके अनुसार ग्रामों में ग्राम सभाएं, ग्रामपंचायतें और अदालती पंचायतें स्थापित की गई, जिन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। जमींदारी प्रथा के अन्त से भी कृषकों ने सुख की साँस ली है। कस्तूरबा कोष की स्थापना इसी पावन उद्देश्य के लिए की गई है।

ग्रामों में सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा की है। शिक्षा अभाव उनकी अवनति का मूल कारण है। इसी से ग्रामीण जीवन दुख पूर्ण बना हुआ है। किसी कविने बिल्कुल ठीक कहा है—

जगती कहीं ज्ञान की ज्योती, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति रस में सन जाते॥

निरक्षर होने के कारण ग्रामीण आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में पिछड़े हुए हैं। वे माल बेचते हैं, पर यह नहीं बता सकते कि उन्हें कितना रुपया मिलना चाहिए। वे ऋण चुकाते हैं पर उन्हें यह पता नहीं लगता कि वे कितना रुपया दे चुके और कितना देना शेष है। यह दोहरी मार उन्हें सदा विकल रखती है। विद्या के प्रकाश की कमी के कारण वे अतीत के अन्धकार में भटकते रहते हैं। पुराने अन्ध विश्वास और रूढ़ियें उनका पीछा नहीं छोड़तीं। अनभिज्ञता के कारण अपने कर्तव्य और अधिकार से नितान्त अपरिचित रहते हैं। ग्रामों में पाठशालाओं की संख्या बढ़ाई गई है, परन्तु अब भी वे विशाल मरुस्थल में गिने चुने मरुद्यानों के सदृश हैं। प्रत्येक ग्राम में एक प्रारम्भिक पाठशाला होनी आवश्यक है। ग्रामीणों के लिए शिक्षा न केवल अनिवार्य और निःशुल्क होनी चाहिए, अपितु जिन्हें आवश्यकता हो उन्हें पाठशाला की ओर से पुस्तक, लेखनी आदि भी मिलनी चाहिए। धनाभाव के कारण शिक्षा के कारण शिक्षा में थोड़ा भी व्यय करना उनके लिए कठिन है। धन की प्राप्ति के लिए आयकर के समान लोगों पर शिक्षा-कर लगाया जा सकता है। वर्तमान प्रारम्भिक शिक्षा में भी परिवर्तन की आवश्यकता है यह शिक्षा उनके कृषि कार्य में सहायक सिद्ध नहीं होती। उनके

लिए वर्धा-योजना कल्याणकार हो सकती है। उससे एक ओर व्यय में कमी होगी, दूसरी ओर कुटीर-धन्धों की उपयोगी शिक्षा मिलेगी। शिक्षा के उपयोगी और लाभ दायक होने पर अभिभावक भी बच्चों को सहर्ष पाठशाला भेजने लगेंगे।

प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध होना चाहिये। प्रति पचीस ग्रामों के बीच एक बड़ा विद्यालय होना चाहिये, जिसका पाठ्यक्रम कृषि और ग्रामीण उद्योग धंधों से संबन्धित हो। इसमें भाषा, गणित, नागरिकशास्त्र, कृषि, वनस्पति विज्ञान, पशु-पक्षी पालन अनिवार्य विषय हों। बढ़ईगीरी, लुहारगीरी, कपड़ा बुनना, रंगाई-छपाई इत्यादि विषय ऐच्छिक हों, जिनमें से दो का पढ़ना आवश्यक हो। इस विद्यालय के फार्म, प्रयोगशाला, क्रीड़ाक्षेत्र, छात्रावास निजी हों। इन विद्यालयों में नवीन ढंग के औजार काम में लाये जायें, परन्तु मशीनों का प्रयोग बिल्कुल न किया जायें, क्योंकि मशीनें बेकारी की समस्या को और जटिल बनाने वाली हैं। प्रौढ़ व्यक्तिओं के लिए रात्रि पाठशालाएं खोली जाएं। इन पाठशालाओं में ग्रामीणों को साक्षर बनाने के साथ साधारण ज्ञान भी कराया जाय। रेडियो इसका सर्वश्रेष्ठ साधन है। मेजिक लालटेन, कथा, व्याख्यान भी उपादेय सिद्ध होंगे। प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए सचल पुस्तकालय होने चाहियें, जो ग्राम-ग्राम घूम कर निश्चित दिनों पर पुस्तकें और समाचार पत्र बांटें। पुस्तकें ग्रामवासियों को, ग्राम सभा के प्रधान की अनुमति से, मुफ्त मिलनी चाहियें। ग्रामीणों को जो पुस्तकें दी जायें वे उपयोगी, मनोरंजक और सरलतम भाषा में लिखी हों।

यह शंका की जा सकती है—की जाती है कि इस योजना के लिए इतने अध्यापक कहाँ से आवेंगे? अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिए प्रत्येक जिले में एक दीक्षा विद्यालय खोला जाय, जैसा उत्तर प्रान्त में किया गया है। सचल शिक्षा दल भी स्थान-स्थान पर जा कर शिक्षकों को अध्यापन-कला का ज्ञान करा सकते हैं। फिर भी यदि कमी रहे तो कालिज और विश्वविद्यालयों के छात्र अवकाश के दिनों में पर्याप्त सहायता दे सकते हैं। हमारे देश में एक करोड़ से अधिक विद्यार्थी

हैं। यदि वे सब उत्साह और हार्दिक प्रेरणा से इस कार्य में जुट जायें तो देखते-देखते देश की ऋतु बदल दें। प्रश्न उठता है उनकी उदरपूर्ति का। इसका उत्तर सरल है। ऐसे निष्काम, त्यागी नवयुवकों के लिए अशिक्षित पर निष्कपट और सरल हृदय ग्रामवासी कुछ भी न करेंगे, ऐसा मानना मानव-हृदय और मानव-मस्तिष्क का अपमान करना है। ऐसे युवक और उसके परिवार को ग्रामीन जनता अपने हृदय सिंहासन पर बैठायेगी।

ग्राम वासियों की आर्थिक अवस्था बहुत गिरी हुई है। बेकारी वहाँ पर नगरों से अधिक बढ़ी हुई है। इसका कारण जनता का कृषि के नवीन ढंग से अनभिज्ञ होना है। वे आज भी उसी प्रकार के हल से भूमि जोतते हैं, उसी प्रकार की खाद देते हैं, उसी प्रकार के साधनों से खेतों को सींचते हैं, जिस प्रकार की चीजों का प्रयोग शताब्दियों पूर्व उनके पूर्वज करते थे। विज्ञान के नवीन आविष्कारों का उन्हें ज्ञान नहीं। वे आज भी दो फसल उत्पन्न कर संतुष्ट हैं, जब कि विदेशों में कई फसलें तैयार की जाती हैं। आज देश में जो अन्न-संकट है, उसका कारण यही है कि यहां जनसंख्या कई गुना बढ़ गई है, उत्पादन उतना ही है। हमारे कृषक नवीन साधनों का प्रयोग करना सीख लें और सरकार की ओर से सिंचाई के साधन बिजली के कूएँ और नहरों की संख्या बढ़ा दी जाये तो हमारे खेतों में भी कंचन बरसने लगे। कृषि के अतिरिक्त अन्य उद्यम भी अपनाये जा सकते हैं। अवकाश के समान कपड़ा बुनना, दरियां बनाना, खिलौने बनाना, मधुमक्षिका पालन इत्यादि अनेक साधनों से धनोपार्जन कर सकते हैं।

किसान को पग-पग पर लूटा भी जाता है। इसका कारण होता है उसकी अनभिज्ञता, और भोलापन। बाजार के दाँव-पेच वह नहीं समझता। इसलिए उसके उत्पादन की बिक्री का प्रबन्ध सहयोग समितियों या सरकार द्वारा होना चाहिये, जिससे उसे माल का पूरा मूल्य मिल सके। उसकी दरिद्रता के लिए जमींदार और महाजन भी बहुत सीमा तक उत्तरदायी रहे हैं। इनकी झोली में बेचारे कृषक को

अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक अर्पण करनी पड़ती है। जमींदारी प्रथा की समाप्ति धीरे-धीरे की जा रही है। महाजन के चंगुल से छुटकारा दिलाने के लिए सरकारी बैंक खुलने चाहियें, जो कम सूद पर किसान को रुपया दे सकें। पशु उन्नति के लिए भी योजना बनानी आवश्यक है। पशु कृषि के मुख्य साधन हैं और किसान की सम्पत्ति का मुख्य अंग हैं। बन कट जाने से, चरागाह न रहने से पशुओं को न भरपेट चारा मिलता है, न घूमने-फिरने और कुलेल करने के लिये पर्याप्त स्थान। ग्राम-सभाएं इसका प्रबन्ध कर सकती हैं। उचित दूरी पर पशुचिकित्सालाएं भी खोलने चाहिएं, जिससे उन भयंकर रोगों की रोक थाम हो सके जो एक बार में सहस्त्रों पशुओं की जानें ले कर टलते हैं।

ग्रामवासियों की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति भी शोचनीय है। उनमें अस्वच्छता चरम सीमा पर पहुँची हुई है। उनके घर-बार कपड़े-लत्ते, खाने-पीने में सर्वत्र गन्दगी का राज्य रहता है। यह सच है कि इसका एक कारण धनाभाव है, पर साथ ही उनका गन्दा स्वभाव भी इसके लिए उत्तरदायी है। स्वास्थ्य रक्षा और गृहपरिचर्या का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं होता। इसका परिणाम होता है अकाल मृत्यु और वे महामारी जो गांव के गांव को साफ कर देती हैं। फिर एक तो करेला, दूजे नीम चढ़ा। ग्राम में चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं होता। अतः यह आवश्यक है कि एक ओर मैजिक लालटैन, भाषण आदि द्वारा रोगों की उत्पत्ति और उनकी रोकथाम के उपाय समझाये जायें, दूसरी ओर गाँव में कम से कम दूरी पर चिकित्सालय खोले जायें और सचल चिकित्सक मंडलों का निर्माण किया जाये। इन लोगों को छुआ-छूत, बालविवाह, मृतकभोज, मदिरापान, धूम्रपान आदि की हानियों से भी अवगत कराना आवश्यक है। वे कूपमंडूक का जीवन बिताते हैं। उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का मोटा ज्ञान कराना नेता वर्ग का कर्तव्य है। जबतक वे चीजों को न समझें तबतक उन्हें भेड़-बकरियों की तरह हाँक कर मत-दान केन्द्र तक ले जाना और किसी पक्ष में मत दिला देना प्रजातन्त्र का उपहास करना है।

ग्राम-सुधार समस्या पर जनता और शासक वर्ग सभी का ध्यान है। इस विषय में पर्याप्त कहा जा चुका है और लिखा जा चुका है। सुधार योजनाएं बनी हैं और कुछ अंशों में उन्हें कार्यान्वित भी किया गया है। पर मंजिल अभी दूर है। आन्दोलन के लिए निष्काम, उत्साही और पुरुषार्थी लोगों की आवश्यकता है, जो केवल देशसेवा की भावना से प्रेरित हो कर इस कार्य के लिए अपना तन, मन, धन उत्सर्ग करने को तत्पर हों। स्वतंत्र भारत में ऐसे लोगों का अभाव न होगा। आज या कल अतीत के इन खंडहरों पर निश्चय ही नई सभ्यता के फूल खिलेंगे।

[श्री पं० हरिदत्त शर्मा एम० ए०]

८

भारतवर्ष में सह-शिक्षा

"नारी का हृदय कोमलता का पालना है, शीतलता की छाया है, दया का उद्गम है।"

❀ ❀ ❀

"स्त्री कोमलता है, पुरुष कठोरता है।"

हिन्दी के अमर साहित्यकार कविवर स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' की उपरिलिखित दोनों पंक्तियों पर पाठक यदि विचार-पूर्वक मनन करें, तो उन्हें सृष्टि के नियामक की रचना का मर्म भली-भांति विदित हो सकेगा। वस्तुतः ईश्वर ने स्त्री और पुरुष की रचना सोद्देश्य की है। बाह्याकार में ही नहीं, आन्तरिक रूप में भी दोनों की रचना में महान अन्तर है। शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत भी दोनों का कार्य-क्षेत्र नितरां पृथक् पृथक् ही है। दुर्भाग्य का विषय है कि पाश्चात्य देशों की भाँति भारत में भी आज सह-शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है। इससे स्त्री और पुरुषों को समुचित शिक्षा-दीक्षा नहीं मिल पाती जिसके अभाव में वे भावी जीवन में उन्नति-पथ पर अग्रसर नहीं हो पाते। साधारण सी बात है, परन्तु कोई ध्यान नहीं देता। जब स्त्री और पुरुषों की रचना में स्वयं ब्रह्मा महोदय ने ही इतना विशाल अन्तर समुपस्थित किया है, तो दोनों के लिए समान शिक्षा कैसे हितकर हो सकती है? मानव जीवन का साफल्य तो वास्तव में इस बात में है कि शिक्षा स्त्री को "स्त्री" और पुरुष को "पुरुष बना सके। इसके प्रतिकूल हम देखते हैं कि सह-शिक्षा के कारण दोनों का समुचित विकास नहीं हो पाता एक विद्वान आलोचक ने ठीक ही कहा कि सह-शिक्षा का सबसे अधिक उग्र दोष जो दृष्टि-पथ में आता है यह है कि पुरुष में स्त्रीत्व

की तथा स्त्री में पुरुपत्व की भावना का श्रीगणेश हो गया है जो राष्ट्र के लिए हानिकर है। वे कहते हैं कि—

"The first and foremost outcome of education has been very ruinous. It is this: the boys have become boyish. This fact cuts at the root of country's progress." वास्तव में बात भी यही है। उपरिलिखित उद्धरण नितान्त युक्ति-युक्त है। आज का पुरुष सह-शिक्षा के कारण कायर हो चला है। आज वह पाउडर, क्रीम, शरीर के श्रृङ्गार आदि की ओर अधिक दत्त-चित्त है जो देखा जाए तो स्त्रीत्व के आवश्यक गुण हैं। इन्हीं वर्तमान कायर पुरुषों पर व्यंग्य करते हुए श्री वियोगी हरि ने वीर सतसई" में लिखा है कि—

"कवच कहा ए धारि हैं, लचकीले मृदुगात।
सुमन हार के भार जे, तीन तीन बल खात॥"
किमि कोमल अंग ओढ़ि हैं असहनीय असि घाय।
जिनपै गहब गुलाब की गढ़ि खरोंट पढ़ि जाय॥"

दूसरी ओर ज़रा स्त्रियों की ओर दृष्टि डाल लीजिए। आज पुरुषों की भावना स्त्रियों ने ही ग्रहण करली हैं। आज वे निर्भीक, निर्मम व सबल बनने का प्रयत्न कर रही हैं और बहुत कुछ सफल हो भी चुकी हैं। 'अबला' विशेषण अब स्त्रियों को अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। भारतीय नारी पाश्चात्य नारी का अनुकरण कर रही है। हमें अपने देश को इस विनाशक प्रवृत्ति से बचाना है। हमें भारत को भारत बनाना है, इंग्लैण्ड नहीं। इस लेख के लेखक को भली प्रकार स्मरण है कि एक बार "मैनचैस्टर गार्जियन" में उसने पाश्चात्य नारी के अधः-पतन सम्बन्धी लेख को पढ़ा था जिसका उत्तरदायी एक अंग्रेज लेखक ने सह-शिक्षा को ठहराया था। भला सोचिए कि जो सह-शिक्षा पाश्चात्य देशों को भी अधिक हितकर सिद्ध नहीं हो सकी, वह भारत में किस प्रकार हित-साधक हो सकती है? तात्पर्य यह कि सह-शिक्षा प्रणाली देश के लिए बिल्कुल उपादेय नहीं। स्त्री और पुरुषों को पृथक पृथक् विद्यालयों में उनके व्यक्तित्व के अनुकूल ही शिक्षा-दीक्षा दी

जानी चाहिए ताकि वह शिक्षा-दिक्षा भावी जीवन में उन्हें सफल बना सके तथा देश उन्नतिशील बन सके।

शिक्षा के उद्देश्यों की ओर भी यदि दृष्टिपात करें तो सिद्ध हो जाता है कि सह-शिक्षा पूर्णतः उपादेय नहीं। शिक्षा के तीन प्रधान उद्देश्य हैं—शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास। इन तीनों अंगों की समुचित उन्नति पर ही शिक्षा तथा मानव-जीवन का साफल्य निर्भर करता है। कुछ लोगों का विचार है कि शिक्षा-मन्दिरों में मानसिक विकास के लिए ही यथेष्ट प्रयत्न किया जाना चाहिए, शारीरिक व आत्मिक विकास के क्षेत्र शिक्षा-मन्दिर से बाहर की वस्तु हैं। सूक्ष्म विचार करने पर उक्त मत निरर्थक ही प्रतीत होता है, 'विद्यार्थियों से' नामक पुस्तक में महात्मा गांधी ने तीनों ही तत्वों पर समान रूपेण ज़ोर दिया है,'यदि मनुष्य का शरीर रुग्ण है तो मानसिक रूप से वह स्वस्थ नहीं हो सकता, और यदि उस की आत्मा कलुषित है तो निश्चित रूप से उसके विचार भी विकृत होंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के इन तीनों अंगों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अस्तु, प्रश्न यह उठता है कि क्या सह-शिक्षा स्त्री और पुरुष को इन तीनों दृष्टिकोणों से समुन्नत एवं पुष्ट बनाती है ?

सर्व प्रथम हम शारीरिक दृष्टिकोण को लेते हैं। कवि-कुल गुरु कालिदास ने 'कुमार-सम्भव' में 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' कहकर शरीर के समुचित विकास की ओर हमारा ध्यान ठीक ही आकृष्ट किया है। वास्तव में शरीर के रुग्ण होने पर हम कोई कार्य ही नहीं कर पाते। इस दृष्टि कोण से सह-शिक्षा नितरां दोषपूर्ण है। प्रायः देखा जाता कि लड़कियाँ लड़कों के कालेजों में शाम को खेलने आती ही नहीं। वे तो विद्यालयों के बन्द प्रकोष्ठों में मूक प्रतिमा की भांति बैठकर अध्यापक के व्याख्यान को सुनकर घर लौट जाती हैं। बस यही उनकी शिक्षा है। स्पष्ट है, उनका शारीरिक विकास नहीं हो पाता। दूसरे, स्त्री और पुरुष के लिए खेल भी तो समान नहीं हो सकते। स्त्री पुरुष की भांति क्रिकेट, वालीबॉल, हॉकी आदि नहीं खेल सकती। इतना व्यायाम स्त्री को कठोर बना देगा जो उसके भावी जीवन में घातक सिद्ध होगा। मातृत्व के लिए कोमल भावनाओं का

होना अत्यावश्यक है। यदि पुरुष के समान स्त्री भी क्रूर एवं कठोर बन जायेगी तो यह निश्चित है कि बच्चों का पालन पोषण कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण अच्छी माताओं पर ही निर्भर करता है। विधाता ने कठोरता एवं क्रूरता के लिए तो पुरुष को उत्पन्न किया है। स्त्रियों को पुरुष के गुणों के ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है जब उनके लिए अन्य गुणों का मनोरम भण्डार एकत्रित है? सारांश यह कि सह-शिक्षा मन्दिरों में शरीर का समुचित विकास नहीं हो पाता। स्त्रियां तो इस अधिकार से वञ्चित ही रहती हैं।

मानसिक दृष्टिकोण से दोनों का विकास अवश्य ही पर्याप्त मात्रा में हो जाता है। यदि यह कहा जाये कि सह-शिक्षा का सफल केवल इतना ही है, तो मैं समझता हूँ कि अतिशयोक्ति न होगी। इस सम्बन्ध में भी एक आलोचना आज विद्वज्जगत में प्रचलित है। वह यह कि मस्तिष्क के समुचित विकास के लिए स्त्री और पुरुषों के लिए पाठ्य-क्रम (Courses of Study) पृथक् पृथक् होने चाहिए। जो विषय पुरुष के लिए हितकर हो सकते हैं, वे स्त्रियों के लिए कदापि नहीं हो सकते। स्त्रियों को विशेष रूपेण गार्हस्थ्य-शिक्षा, मातृत्व-भावना आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि उनके भावी जीवन में वह उन्हें उपादेय एवं सहायक सिद्ध हो सके।

आत्मिक दृष्टि-कोण से तो यह सह-शिक्षा अतीव विनाशक है। विद्वानों का मत है कि १२ वर्ष की अवस्था तब तक बालक-बालिकाओं के अध्ययन का प्रबन्ध यदि एक साथ हो, तो कोई हानि नहीं है क्योंकि इस समय तक उनमें क्रमशः पुरुषत्व और स्त्रीत्व की भावनाओं का विकास नहीं आरम्भ होता। बारह वर्ष के उपरान्त सह-शिक्षा मन्दिरों में उनका एक साथ अध्ययन करना मानों व्यभिचार को बढ़ावा देना है। पाश्चात्य देशों में व्यभिचार का जो बाजार आज गर्म है, उससे प्रत्येक शिक्षित भारतीय भली प्रकार परिचित है। हमारे यहां भारतीय मनीषियों ने आठ प्रकार का मैथुन माना है। अविवाहित स्त्री-पुरुषों का परस्पर सम्भाषण व हंसी मजाक आदि

भी एक प्रकार का मैथुन ही है। पाश्चात्य देशों में इसे 'कोर्ट शिप' (Courtship) कहते हैं तथा नैतिक दृष्टिकोण से गर्हित नहीं समझते, परन्तु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के यह सर्वथा प्रतिकूल है। इस सह-शिक्षा का कुप्रभाव आज हमारे देश में भी शीघ्रता से व्याप्त हो रहा है। यह हमारा दुर्भाग्य है। बड़े बड़े शहरों में नित्य प्रति गर्भ-पात आदि की घटनाएं इस व्यभिचार की ज्वलन्त उदाहरण हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सह-शिक्षा भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार सब प्रकार से निषिद्ध एवं वर्जित है। पाठकों को यह जानकर सम्भवतः आश्चर्य होगा कि इस व्यभिचार के रोकने के लिए अब पाश्चात्य देशोंमें भी सह-शिक्षा विरोधी आन्दोलन आरम्भ होने लगे है। इटली व जर्मनीमें सह-शिक्षा मन्दिरों की समाप्ति इस दिशामें एक सफल प्रयास है। अस्तु आज जब पश्चिम राष्ट्र अपने को सह-शिक्षा के कुप्रभाव के चंगुल से मुक्त करने में लगे हुए हैं। तो क्या कारण है कि हमारे देश में भी यह शिक्षा-प्रणाली पूर्वतः समाप्त न कर दी जाय। यदि इस दिशा में सरकार ने महत्त्वपूर्ण प्रयास नहीं किया। तो यह देश का दुर्भाग्य ही होगा। कहां भारतीय उच्चतम आदर्श तथा कहाँ भारतीयों का सह-शिक्षा से उत्पन्न यह अधःपतन ? यह एक घोर विडम्बना है।

सह-शिक्षा के एक पक्ष पर विचार करना मैं परम आवश्यक समझता हूँ। सह-शिक्षा पर मेरा एक बार अपने कालेज की सह पाठिनियों से विचार-विनिमय हुआ। उन्होंने सह-शिक्षा के समर्थन में केवल यह दलील दी कि इसके द्वारा पुरुष से किसी प्रकार कम नहीं रहतीं। पुरुष को जो अपने को उच्चतर एवं श्रेष्ठतर समझता है, निरुत्तर करने के लिए यह शिक्षा नितान्त आवश्यक है। ऐसा ही भ्रान्त मत प्रायः अन्य लड़कियों का भी होगा, उसकी मुझे पूर्णाशा है। इसका उत्तर मैं केवल यही दे सकता हूं कि समाज में स्त्री और पुरुष दोनों समान रूपेण महत्त्वपूर्ण हैं। गृहस्थ-जीवन रूपी रथ के ये दो पहिये कहे जाते हैं। पुरुष यदि अपने को उच्च समझता है, नारी को समझता है, उसको उसके अधिकारों से वञ्चित करता है तो यह अवश्य ही उसकी भूल है। सारपूर्णतया तो केवल इतना है कि शिक्षा

प्राप्त करने के उपरान्त स्त्री और पुरुष दोनों के कार्य क्षेत्र भी पृथक् हो जाते हैं। पुरुष का क्षेत्र है घर के बाहर और स्त्री का घर के अन्दर। यही कारण है कि स्मृतिकारों ने नारी को 'गृहस्वामिनी' कह कर सम्बोधित किया है। परन्तु आज भारतीय नारी को 'गृह-स्वामिनी' नाम से चिढ़ है। घर का प्रबन्ध संभालना, राष्ट्र के भावी नागरिकों का समुचित पालन पोषण करना, भोजनादि की व्यवस्था करना— आदि कार्यों को वह दासी का कार्य समझती है। यह मत पूर्णतः भ्रान्त एवं निराधार है। हाँ, एक बात अवश्य है। वह यह कि जहाँ पुरुष और स्त्री में परस्पर संघर्ष एवम् अधिकारों का अपहरण होने लगता है, वहाँ जीवन अवश्य नारकीय हो जाता है। पुरुष को चाहिए कि वह नारी के अधिकारों का अपहरण न करे। जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं देवता निवास करते हैं—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" स्पष्ट ही है कि सह-शिक्षा भावी दाम्पत्य जीवन के लिए एक घोर अभिशाप है। आज स्त्री और पुरुष में जो कलह तथा परित्याग की भावना (divorce) दिखाई पड़ रह रही, उसका मूल कारण सह-शिक्षा ही है, कुछ और नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सह-शिक्षा वस्तुतः हानिप्रद ही है। इसके भीषण परिणामों की कल्पना मात्र से हृदय सशङ्क हो उठता है भगवान् करे, इंग्लैण्ड व अमेरिका का दूषित वातावरण हमारे देश में प्रसारित न हो। वह राष्ट्र के लिए बड़ा ही शुभ दिन होगा, जिस दिन हमारे देश में सह-शिक्षा की समाप्ति के लिए यथेष्ट प्रयास किया जावेगा। भगवान् ऐसा ही करें।

(प्रो० श्रवणकुमार एम० ए०, एल०, टी०,)

भारत की बढ़ती हुई आबादी और उसका हल

किसी भी देश की जनसंख्या का प्रभाव उन देश के उत्पादन और मनुष्य की कार्य क्षमता पर पड़ता है। यदि देश में जनसंख्या अधिक होगी तो उत्पादन अधिक होने पर भी औसतन मनुष्य को कम वस्तुएँ उपयोग करने को मिलेंगी तथा उसके रहन-सहन का स्तर नीचा होगा। वह कम वस्तुओं के उपयोग करने के कारण कम काम कर सकने में सफल होगा। इसके विपरीत यदि देश में जन संख्या कम है तो कम उत्पादन होने पर भी औसतन आदमी को उपभोग के लिए अधिक मात्रा में मिल सकेंगी। जिनके उपभोग करने से वह अधिक शक्तिशाली, अधिक प्रसन्न तथा अधिक कार्य कुशल व्यक्ति हो सकेगी।

आज सब भारत को घनी आबादी वाला देश कहते हैं। क्योंकि यहाँ के औसतन निवासियों को बहुत कम वस्तुएं उपभोग करने को मिलती हैं? वह गरीबी के दिन व्यतीत करता है, जिसके कारण वह बहुत दुर्बल और कम-कार्य-कुशल बन जाता है। इसलिए कुछ व्यक्तियों का विचार है कि भारत की आबादी को कम होना चाहिए तथा आबादी के बढ़ने की गति को भी कम करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो देश के उत्पादन के बढ़ने पर भी, भारतियों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा नहीं उठ सकेगा। हमारा देश एक खुशहाल देश नहीं बन सकेगा। कुछ व्यक्तियों को भय है कि जब भारत की वर्तमान आबादी में ही अन्न का आकाल सा पड़ा हुआ है, तब यदि आबादी यहां उतनी ही शीघ्रता से बढ़ती रही तो न जाने भविष्य में

हमारी क्या दशा हो। यही कारण है कि "कुटुम्ब योजना" पर आजकल हमारे नेता गण, अर्थशास्त्री तथा राजनीतिज्ञ इतना जोर दे रहे हैं।

भारत की आबादी को कम करने के साधन सोचने से पहले यह देखना कि क्या वास्तव में भारत की आबादी अधिक है या नहीं, अनुचित नहीं होगा। अर्थशास्त्रीयों के इस विषय में बहुत मत भेद है कुछ का तो कहना है कि भारत अधिक आबादी वाला देश है, क्योंकि यहां की औसतन आबादी बहुत गरीबहै ? यहाँ पर जन्मदर और मृत्युदर भी बहुत अधिक हैं। दूसरी ओर ऐसे भी अर्थशास्त्रीयों की कमी नहीं है जो यह कहते हैं कि भारत अधिक आबादी वाला देश नहीं है। क्योंकि अभी तक हमने समस्त उत्पादन के साधनों—भूमि, पूंजी, श्रम तथा व्यवस्था का पूरा उपयोग नहीं किया है। उनका विश्वास है कि यदि देश के उत्पादन के साधनों का भलीभांति उपयोग करें तो अधिक उत्पादन होगा तथा भारत की वर्तमान जन-संख्या से कहीं अधिक जन-संख्या का अच्छी प्रकार लालन-पालन हो सकेगा। ऐसी दशा में जन्मदर और मृत्युदर स्वयं ही घट जायेगी। यह अर्थशास्त्री जन-संख्या को कम करने के पक्ष में नहीं है। क्योंकि वह सोचते हैं कि एक आदमी जो एक मुँह लेकर आया है वह दो हाथ भी लाया है। यदि देश में उत्पादन के अन्य साधन भूमि, पूंजी, श्रम और व्यवस्था की कमी नहीं है,तो यह अपनी आवश्यकताओं से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करने में सहायक होंगे। यह अर्थशास्त्री देश की आबादी को उस सीमा तक ले जाना चाहते हैं जहां पर पहुंच कर देश के उत्पादन के साधनों का अधिक से अधिक प्रयोग किया जा सके और औसतन आदमी को अधिक से अधिक वस्तुएं उपयोग करने को मिलें। यदि आबादी इस सीमा से कम होगी तो पूर्ण रूप से श्रम-विभाजन नहीं हो सकेगा और औसतन आदमी को उतना भाग नहीं मिल सकेगा जितना कि थोड़ी अधिक आबादी के होने पर मिल सकता। इसी प्रकार यदि आबादी उस सीमा से अधिक होगी तो भी औसतन आबादी को कम वस्तुएं उपयोग को मिलेंगी। अतः जन संख्या को उस सीमा तक होना चाहिए जहां पर औसतन आबादी

को अधिक से अधिक मात्रा में उपयोग करने की वस्तुएं मिल सकें।

इस तर्क पर भी ऐसा मालूम होता है कि भारत एक अधिक आबादी वाला ही देश है, क्योंकि यहां पर औसतन आदमी बहुत कम हैं। यह ठीक है कि भविष्य में उत्पादन के सब साधनों का ठीक प्रकार से प्रयोग करने पर इससे भी अधिक आबादी का पोषण हो सकेगा। पर भविष्य की बात तो भविष्य के साथ है। हमें तो वर्त्तमान को देखना है। अतः हमें आबादी को कम करने तथा उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

आबादी को कम करना

यदि भारत की जन्मदर कम हो जावे तो उसकी आबादी बढ़ने की रफ्तार भी कम हो जावे तथा हम औसतन आदमी बढ़ाने में सफल हो सकेंगे। जन्मदर को कम करने का सबसे अच्छा उपाय बड़ी उम्र में विवाह करने का है। आज भारत में यह समझा जाता है कि जब तक पुत्र नहीं होगा पित्रों को मुक्ति नहीं मिलेगी क्योंकि बिना पिंडदान दिए मोक्ष नहीं प्राप्त होता है और पिंडदान पुत्र ही कर सकता है। यही कारण है कि यहां विवाह छोटी उम्र में होंगे तो स्वयं ही आबादी शीघ्रता से बढ़ेगी। यदि हम कानून या समाज के दबाव से विवाह की उम्र बढ़ा सकने में सफल हो सकें तो निश्चय ही जन्मदर कम हो जावेगी। बड़ी उम्र में विवाह करने से स्त्री की सन्तानोत्पत्ति की शक्ति भी कम हो जाती है और वह कम बच्चों को जन्म दे पाती है। अतः बड़ी उम्र में विवाह करने की पद्धति द्वारा हम जन्मदर को कम कर आबादी को घटा सकते हैं।

जन्मदर को कम करने का एक वैज्ञानिक ढंग भी है। आज के युग में कुछ ऐसी वस्तुएँ बन गई हैं, जिनके उपयोग से विवाह होने के पश्चात् भी, संतान उत्पत्ति को रोका जा सके। विदेशों में हर स्त्री-पुरुष इन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं और अपने कुटुम्ब को एक सीमा से अधिक बढ़ने से रोकने में सफल होते हैं। भारत में भी उन वस्तुओं के प्रचार द्वारा जन्मदर को कम किया जा सकता है।

शिक्षा के प्रचार से भी जन्मदर कम हो जाती है। क्योंकि मस्तिष्क के विकास के साथ शारीरिक ह्रास होने लगता है और जन्मदर स्वयं ही कम हो जाती है। दूसरे एक शिक्षित व्यक्ति अपने कुटुम्ब का विस्तार अपनी आय के अनुसार ही बढ़ाता है। क्योंकि वह अपने रहन-सहन के स्तर को ऊँचा बनाने का प्रयत्न करता है। वह एक और अधिक शिशु और एक रेडियो में सदैव तुलना करता है और एक रेडियो क्रय करना अधिक पसन्द करता है बनिस्बत एक शिशु के। यही कारण है कि मध्य वर्ग में जहां शिक्षा का अधिक प्रचार है, जन्मदर गरीब वर्ग से कम है।

जन्मदर को कम करने के लिए मन बहलाने के अनेक साधनों का होना भी आवश्यक है। जब मन बहलाने के अनेक साधन होते हैं तब मनुष्य घर में कम रहता है तथा अपने मन को बहला सकने में सफल होता है। इसके विपरीत यदि देश में मन बहलाने के कम साधन हैं तो मजबूरन मनुष्य को घर में ही मन बहलाने के साधन ढूँढ़ने पड़ते हैं और वह साधारणतया अधिक सम्भोग करने लगता है। परिणाम-स्वरूप देश की आबादी अधिक बढ़ने लगती है। इसी से भारत में एक गरीब व्यक्ति के घर तो हर वर्ष कुटुम्ब में वृद्धि हो जाती है जब कि मध्यवर्ग तथा अमीर वर्ग के व्यक्तियों के यहाँ कम वृद्धि होती है और छोटे कुटुम्ब होते हैं। पर मन बहलाने के साधनों की वृद्धि इस प्रकार होनी चाहिए कि हर वर्ग का व्यक्ति उनको अपनी इच्छानुसार, अपने रहन-सहन का स्तर नीचा किए बिना ही प्राप्त कर सके।

यह देखा जाता है कि देश के कुछ प्रान्तों की आबादी बहुत घनी है और कुछ की कम। इस घनत्व का प्रभाव देश की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है और आर्थिक विषमता अधिक हो जाती है। इसलिए इस विषमता और घनत्व को कम करने के लिए प्रादेशिक पुनर्वितरण अत्यन्त आवश्यक है। इससे यह होगा कि जिन प्रान्तों की आबादी अधिक है वहाँ से वह कम आबादी वाले प्रांतों में चली जायेगी और घनत्व बराबर हो जायगा तथा आर्थिक विषमता भी कम हो

जाएगी। जैसे:—

बंगाल	८०४	उत्तर-प्रदेश	५६२
बिहार	५७१	मद्रास	४४६
उड़ीसा	२४४	पू० पंजाब	३२६
बम्बई	३११	राजस्थान	११६
आसाम	१६८	दिल्ली	३०३८
मध्य भारत	१६२		

यदि देहली, बंगाल और उत्तर-प्रदेश आदि प्रान्तों की कुछ जन संख्या राजस्थान, मध्य भारत और आसाम आदि प्रान्तों में चली जाए तो यह असमानता दूर हो जाए। परन्तु यह कार्य प्रादेशिक आयोजना द्वारा ही सम्भव है।

इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्वितरण से भी जन संख्या की समस्या हल हो सकती है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या के घनत्व पर दृष्टिपात करें तो मालूम होगा कि कुछ निर्धन देशों में जन संख्या का भीषण दबाव है और उसके विपरीत समृद्ध देशों में आबादी बहुत कम है। यदि आवास-प्रवास के ऊपर लगे प्रतिबन्धों को उठा दिया जाए तो यह समस्या बहुत शीघ्र ही हल हो जाएगी और संतुलन ठीक हो जाएगा। जैसे:—

देश	घनत्व प्रति वर्ग मील
भारत	३१३
चीन	१२३
रूस	२३
सं० रा० अमेरीका	५०
योरोप	१२३
पाकिस्तान	२१०

यदि भारत, पाकिस्तान और चीन की कुछ आबादी रूस, सं० रा० अमेरीका में चली जाए तो आबादी का संतुलन ठीक हो जाएगा।

उत्पादन की वृद्धि

उत्पादन को बढ़ाने से भी औसतन व्यक्ति की आमदनी बढ़ जाएगी तथा आबादी को कम करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उत्पादन की वृद्धि के लिए सरकार ने अनेक योजनाएँ बनाई हैं, जिनमें से पंचवर्षीय योजना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आशा है भविष्य में हम इस योजना से देश के उत्पादन को बहुत बढ़ा सकेंगे तथा फिर हमारे देश को घनी आबादी वाला देश कोई नहीं कह सकेगा।

यदि हम देश की आबादी को कम नहीं कर पाए और न उत्पादन को ही बढ़ा पाए तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे यहां सब वस्तुओं का अकाल सा पड़ जाएगा तथा गरीबी और भी अधिक प्रचंड रूप धारण कर लेगी। ऐसी दशा में दैवी दुर्घटनाएँ घटने लगेंगी तथा इन प्राकृतिक कारणों से आबादी कम हो जायेगी। बंगाल का दुर्भिक्ष, आसाम और क्वेटा के भूकम्प, महामारी, विश्व-युद्ध आदि हमें इस बात का ध्यान दिलाते हैं कि जब जब किसी देश की आबादी वहां के उत्पन्न होने वाले खाद्य पदार्थों से अधिक बढ़ गई तब तब प्रकृत ने उस देश पर कुपित हो, आबादी को कम कर दिया। अतः यह उचित है कि हम अभी से सचेत हों अपने देश की जन्मदर को कम कर दें और साथ ही साथ उत्पादन को भी बढ़ाएँ, जिससे हमें प्राकृतिक कोपों का सामना नहीं करना पड़े।

(प्रो० शांति स्वरूप गुप्ता एम० ए०)

एशिया में साम्यवाद

जब १ अक्टूबर, १९४९ में 'माओत्से-तुंग' ने चीन के प्रमुख भाग को जीतकर पेकिंग में कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना की तब पश्चिमी ताकतों की आंखें खुलीं और उन्होंने महसूस किया कि एशिया में साम्यवाद किस हद तक पहुँच गया है; और तभी खुले रूप में बिना सोचे विचारे एशिया में कम्युनिस्टों के खिलाफ़ लड़ाई लड़ने की तैयारी ही नहीं व्यवस्था भी कर ली गई। कुछ दिन तक "शीत युद्ध" गर्म होता गया और २५ जून, १९५० में अमेरिका के नेतृत्व में कोरिया के कम्युनिस्टों के खिलाफ़ लड़ाई छेड़ दी गई और धीरे धीरे स्थिति ऐसी पैदा हो गयी कि चीन को भी कोरिया के मैदान में उतरना पड़ा।

कोरिया युद्ध कहने को तो राष्ट्रसंघ की ओर से लड़ा जा रहा है किन्तु कम्युनिस्टों से लड़ने वाले सभी राष्ट्र पश्चिमी हैं और एशिया वालों का समर्थन अमेरिका के साथ नहीं के बराबर है। इससे मालूम पड़ता है कि एशिया वाले कम्युनिस्टों को उस तरह नहीं देखते जिस तरह पश्चिमी जन-तन्त्रवादी राष्ट्र। हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कई बार कहा है कि कम्युनिस्टों से लड़कर उन्हें हराने का पश्चिमी राष्ट्रों का रवैया बहुत गलत है।

आजकल समस्त एशियाई देशों में कम्युनिस्ट आन्दोलन बहुत ज़ोर पकड़ता जा रहा है और अधिकतर स्थानों पर यह राष्ट्रीयता का जामा पहने हुए और शेष में गरीबी तथा परेशानियां इसकी वाहक हैं।

कोरिया में कम्युनिस्ट आन्दोलन वैसे तो बहुत दिनों से है किंतु द्वितीय महायुद्धकाल में जापान के खिलाफ़ कम्युनिस्ट छापामारों ने

कोरिया में बहुत बड़ी तादाद में संगठित किया था। १६४५ में जब जापान की पराजय हुई तो उत्तर का आधा कोरिया रूस के नियन्त्रण में चला गया और दक्षिण का आधा भाग अमेरिका के कब्जे में रहा। १६४८ में उत्तरी भाग से रूस ने अपनी फौजें हटा लीं तथा कम्युनिस्ट शासन स्थापित कर दिया। अमेरिका ने कोरिया-कमीशन के बहुत कहने सुनने पर १६४८ में अपनी फौजें हटाईं किंतु 'सिग-मैन-री' की अध्यक्षता में सियोल में एक कठपुतली सरकार कायम करदी। इस अवसर पर कम्युनिस्टों ने कोरिया के एकीकरण के लिये सम्पूर्ण देश में चुनाव कराने की माँग की किंतु 'सिग-मैन-री' ने उसे नहीं सुना और वह उत्तरी कोरिया को जीतने की योजना बनाता रहा और इसके बाद की हालत दुनिया तभी जान सकी जब उत्तरी कोरिया के कम्युनिस्टों की फौजें सियोल के पास तक पहुंच गयीं और अमेरिका ने सिग-मैन-री की सहायता को अपनी फौजें कोरिया में बिना राष्ट्रसंघ की इजाज़त लिये उतार दीं।

चीनी कम्युनिस्ट

फारमोसा को छोड़कर समस्त चीन पर कम्युनिस्ट शासन स्थापित हो चुका है और चीन की फौजी ताकत दिन पर दिन बढ़ने के साथ साथ कम्युनिस्टों को जनता का पूरा सहयोग मिलता जा रहा है क्योंकि जनता की भलाई के लिये भी पेकिंग सरकार जी तोड़ प्रयत्न कर रही है।

वाशिंगटन व लन्दन के फौजी विशेषज्ञों के अनुसार चीन के पास ५० लाख तैयार सेना है और २० लाख ऐसे व्यक्ति हैं, जो अर्धशिक्षित हैं तथा जिन्हें एक मास के अन्दर ही युद्ध मोर्चों पर लड़ने के लिये तैयार किया जा सकता है। अमरीकी वायु सेना के चीफ़-ऑफ़-स्टाफ़ जनरल वेडिनबर्ग के अनुसार आज चीन विश्व की सबसे बड़ी हवाई ताकत होगया है।

वीतनाम में

वीतनाम के कम्युनिस्ट 'डा० हो-ची-मिन्ह' की अध्यक्षता में

फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों से लड़ रहे हैं। विदेशी शासकों से आजादी के प्रश्न का वीतनाम के कम्युनिस्टों ने राष्ट्रवादियों का एक संयुक्त मोर्चा बना दिया है। इसीलिए कभी कभी वीतनाम के कम्युनिस्टों को राष्ट्रवादी कहकर पुकारा जाता है। डा० हो-ची-मिन्ह ने १६४३ में ही जापान के खिलाफ छापामार दस्तों का संगठन किया था तथा पहाड़ियों में से जापानियों पर हमले शुरू कर दिये थे। १६४५ में जापानियों की हार होने तक वीतनाम के आठवें हिस्से पर डा० हो-ची-मिन्ह का शासन स्थापित होचुका था। जब १६४५ में जापानियों की हार के बाद फ्रांसीसियों ने वीतनाम को पुनः गुलाम बनाने का यत्न किया तो वीतनाम के राष्ट्रवादी तत्व फ्रांस के खिलाफ हो गये। तब से डा० हो-चीन-मिन्ह की ताकत दिन पर दिन बढ़ती गयी।

आजकल तीन चौथाई वीतनाम पर वीतमिन्हों का कब्जा है और उनकी सरकार को चीन व पूर्वी यूरोप के जनवादी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है।

१६४८ में वीतनाम के राष्ट्रवादी संयुक्त मोर्चे को पार करने के लिये फ्रांस ने भूतपूर्व सम्राट वाओदाई से समझौता किया था किन्तु वाओदाई को आगे बढ़ाने में फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों को कोई सफलता नहीं मिली।

मलाया में

मलाया में भी अन्य दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों की तरह द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होते ही अंग्रेजों से आजादी का आंदोलन शुरू हो गया। कम्युनिस्टों ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। अंग्रेजों ने खुलकर दमन शुरू किए।

अंग्रेजों ने मलायावासियों की आजादी की भावना को दुनिया से छिपाये रखने के लिए मलाया के आजादी के आंदोलन को कम्युनिस्ट आंदोलन बतलाया और अपनी बात को सिद्ध करने के लिए तर्क यह पेश किया कि मलाया के आंदोलनकारियों के नेता कम्युनिस्ट हैं।

"कम्युनिस्ट आतंक" को दबाने के बहाने मलाया में राष्ट्रवादियों पर अंग्रेजों के अत्याचार जारी हैं। इसमें गुरखा फौजें अंग्रेज साम्राज्य-वादियों का पूरा साथ दे रही हैं।

वर्तमान स्थिति का ठीक चित्र खींचने के लिए नवभारत टाइम्स दिल्ली के ४ दिसम्बर १६५१ के प्रभात संस्करण में प्रकाशित रिपोर्ट को ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

अधिकांश मलाया में कम्युनिस्ट शासन

सिंगापुर, ३ दिसम्बर। पता चला है कि कम्युनिस्ट छापामारों ने मलाया राज्य के तीन चौथाई हिस्से पर कब्जा कर लिया है तथा वहां अपनी सरकार स्थापित कर ली है और अंग्रेजों के छीने गये इलाके में कृषि सुधार भी शुरू कर दिये हैं। ग्राम-ग्राम में जन समि-तियां स्थापित की गई हैं, जो सरकार के एक अंग की तरह स्थानीय शासन करती हैं।

जैसे-जैसे मलाया में कम्युनिस्ट छापामारों का आतंक बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे अंग्रेजी फौजें भी दमन कार्य तेज करती जा रही हैं। अब जिन कम्युनिस्टों को अंग्रेज मलाया में पकड़ लेते हैं उन्हें "भूखों मार डालते हैं।" यह तरीका १६ जून से लागू कर दिया गया है।

पत्रों के प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार मलाया में ब्रिटिश शासन ने कम्युनिस्ट होने के आरोप में ५०,००० व्यक्तियों को गिरफ्तार किया है। रायटर की सूचना के अनुसार जब से मलाया में संकट-कालीन स्थिति की घोषणा की गई है तब से १५८ मलाया वासियों को कम्युनिस्ट छापामारों की सहायता करने के आरोप में फांसी की सजा दी जा चुकी है।

चीनी कम्युनिस्टों ने आरोप लगाया है कि अंग्रेजों ने २८०,००० लोगों को यंत्रणा शिविरों में डाल रखा है और चीनियों को बहुत ज्यादा परेशान किया जा रहा है।

फिलीपीन में

फिलीपीन में कम्युनिस्ट आंदोलन का जोर युद्ध काल में हुआ था। कम्युनिस्ट नेताओं ने जापानी तानाशाहों के खिलाफ जनता का संगठन छापामार दस्तों के रूप में किया था और अमेरिका से उन्हें हथियार मिलते थे। १९४४ के अंतिम दिनों में केन्द्रीय लोओन प्रान्त के पहाड़ी भागों में छापामारों ने डा० विंसेन्ट लावा की अध्यक्षता में स्वतंत्र सरकार बनाली। उस समय जापानी तानाशाहों के खिलाफ जनता का संयुक्त मोर्चा था तथा डा० विसेन्ट स्वयं कम्युनिस्ट नहीं थे।

इन्हीं दिनों अमरीकी सेनाओं ने फिलीपीन स्थित जापानी अड्डों पर हमले शुरू कर दिये तथा कुछ प्रदेश छीन लिया और बाद में १९४५ में जापानी आत्मसमर्पण के समय अमेरिका ने समस्त फिलीपीन को अपने कब्जे में ले लिया। चूँकि युद्ध काल में अमेरिका ने फिलीपीन को आजाद करने का आश्वासन दिया था इसलिए अमेरिका ने अपनी फौजों की देख-रेख में चुनाव कराये। इन चुनावों से जापान के खिलाफ संयुक्त रूप से लड़ने वाली जनता में फूट पड़ गयी या यों कहना चाहिए कि अमरीकी अधिकारियों ने अपने हित में इस फूट को फैलाया।

जिन्हें अमरीकी अधिकारियों ने अपने हित में ठीक नहीं समझा उन्हें या तो चुनाव में भाग ही नहीं लेने दिया और कुछ को अगर लेने भी दिया तो उनके समर्थकों को मारा पीटा गया और मतों की गिनती में गड़बड़ की गयी। कम्युनिस्ट विशेष रूप से अमरीकी अधिकारियों की गुस्से के शिकार हुए। इस गड़बड़ को देखकर बहुत से गैर कम्युनिस्ट भी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये—डा० विंसेण्ट भी इन्हीं दिनों कम्युनिस्ट पार्टी में सम्मिलित होगये थे। चुनाव के बाद अमरीका के समर्थक मेन्युअल रोक्साज को राष्ट्रपति बना दिया गया। चुनाव में हारने वाले लगभग सभी कम्युनिस्टों के साथ शामिल हो गये।

कम्युनिस्टों की ताकत सबसे ज्यादा तो तब बढ़ी जब क्रिरीनों की सरकार तथा उसके भ्रष्टाचारी अफसरों ने जनता की कठिनाइयों को सुधारने की अपेक्षा बढ़ा और दिया।

फिलीपीन में कम्युनिस्टों की ताकत दिन पर दिन बढ़ने का एक और प्रमुख कारण है और कहा यह कि अमरीका ने फिलीपीन में लगभग २८० हवाई अड्डे बना लिए हैं और फिलीपीन में इतने हवाई अमरीकी सैनिक हैं कि चारों ओर वे ही दिखलाई पड़ते हैं। इससे गरीबी से परेशान जनता क्रिरीनो सरकार के खिलाफ होती जाती है और कम्युनिस्टों की सहायता करती जाती है।

दक्षिणी पूर्वी एशिया के अन्य देशों की भाँति फिलीपीन में भी कुछ पहाड़ी इलाके में कम्युनिस्ट सरकार स्थापित हो चुकी है किन्तु उसके सम्बन्ध में फिलीपीन की सरकार देश के बाहर कोई खबर नहीं निकलने देती। अमरीकी पत्रकार श्री के० सी० पीटर का अनुमान है कि फिलीपीन के कम्युनिस्टों के साथ सशस्त्र फौज है और चीन की तरह फिलीपीन के कम्युनिस्ट भी धीरे धीरे अपना क्षेत्र बढ़ाते जा रहे हैं।

शेष देशों में

इसी प्रकार बर्मा, हिन्देशिया, जापान, लंका, ईरान व अन्य अरब देशों में जनता को पेट की समस्या कम्युनिज्म की तरफ ले जा रही है। भारत तथा पाकिस्तान के पश्चिमी भाग में जनता की धार्मिक भावनाएँ तथा आर्थिक हालात कुछ ठीक होने के कारण अभी साम्य-वाद तेजी से नहीं आ पाया है। फिर भी विद्यार्थियों व मजदूरों में इसका प्रभाव बढ़ती की तरफ है। पाकिस्तान के पूर्वी भाग के किसान तथा मजदूर बहुत गरीब तथा परेशान हैं इसलिए वहाँ तिभागा जैसे किसान आँदोलन जोर पकड़ रहे हैं। पूर्वी बंगाल में अभी सरकार द्वारा साम्प्रदायिकता को भड़का देने से रोजी-रोटी का आंदोलन कुछ कम पड़ गया था किन्तु जैसे ही साम्प्रदायिक हालत में सुधार हुआ और जनता का आन्दोलन शुरू हुआ। पूर्वी बंगाल से बारबार हिन्दुओं

को निकाले जाने का कारण यही है कि वहाँ की सरकार साम्प्रदायिकता का जहर फैलाए रखने में ही अपना भला समझती है और गरीब मुस्लिम जनता को भुलाए रखना चाहती है। लेकिन उसका यह हथियार ज्यादा दिन तक काम देने वाला नहीं मालूम पड़ता।

(आनन्द स्वरूप जैन)

नारी के—आगे बढ़ते हुए चरणों को मत रोको !

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा उद्विग्न हो उठे। उन्होंने सोचा सृष्टि तो अब बन गई, और इसका एक अंग विशेष नर भी बन गया, परन्तु अब सृष्टि की स्वयं सृजना अनवरत रूप से कैसे चले ? वे, इस विचार लीन हो गये। अन्त में उनके विचारपूर्ण निर्णय ने कमल-सी कोमल सुन्दरी सृष्टि में भेजी। सृष्टि बढ़ने लगी। पुरुष चकित हुआ कि नारी में नर को निर्माण करने की शक्ति है। वह उसे देवी मानकर पूजने लगा। नारी के प्रति पुरुष की निरन्तर श्रद्धा बढ़ती ही गई। पुरुष ने, नारी-शक्ति रूप के दर्शन किये और वह विवश हो गया कि नारी—माता, निर्माता एवं मानव वंश और समाज पथ-प्रदर्शिका है, और संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दर कृति है। यह तो है भावना और काव्य कल्पना-लोक की बात।

युगों क्या, कल्पों—काल पूर्व, नारी का मान रहा हो तो रहा हो, पार 'परतःप्रमाण धर्म-ग्रन्थीय-युग' में तो नारी का जीवन, पुरुष की चेरी के रूप में ही बीता है। हिन्दू-धर्म में स्त्री को धर्म-कर्म, अर्थ काम मोक्ष आदि की प्राप्ति में सहायक अवश्य बताया है, परन्तु इसके यह अर्थ कदापि स्वीकार नहीं किये गये कि नारी, पुरुष के समान स्तर की उच्च है ! स्पष्ट बात तो यह है, जब भी मनुष्य ने किसी से काम निकालने की इच्छा की, तब उसने खुशामद की राह अपनाई। पुरुष ने अपने द्वारा निर्मित शास्त्रों में जहां नारी और शूद्रों को, पशुओं की भाँति अपने नियंत्रण में रखने के विभिन्न प्रकार सुझाये हैं, वहां एकाध जगह चापलूसी के शब्द भी कहे हैं, जिनका-क्या

महत्त्व ! किसी को अपमानित करने के उपरान्त, उसकी प्रशंसा में कुछ नाममात्र के खुशनुमा शब्द कहने से क्या पूर्व कहे कड़वे वचनों की शक्ति कम हो जाती है ? कभी नहीं । धर्म-शास्त्रों में एकाध स्थान के अतिरिक्त कहीं भी नारी को यथार्थ में वास्तविक रूप में सम्मानित नहीं किया गया हैं। अपितु अपने आगे आने वाले नर-समाज को ऐसे हथकण्डे सिखाने की चेष्टा की गई प्रतीत होती है कि नारी उसके पंजे में कैसे सदा दबी रहे:—

'अस्वतन्त्रः स्त्रियः कार्याः
पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।'

(मनु ६ । २)

'पुरुषों को चाहिए कि वे स्त्रियों को अपने संरक्षण से बाहर न रहने दें ।'

यह क्या है ? पुरुष की नारी पर मनमानी हठधर्मी, कि नारी को पुरुष की प्रधानता स्वीकार करके उसके साये में ही जीना चाहिए। क्या नारी इतनी कोमल है कि वह पृथ्वी पर चल नहीं सकती, धूप को सहन नहीं कर सकती, या वायु के स्पर्श से उसका तेज मलिन हो जाता है ? इस से भी बढ़कर सठियाए दिमाग की बात लीजिए:

'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।'

(मनु ६ । ३)

अभिप्राय है—'स्त्री बिना रक्षक के छोड़ने योग्य नहीं है ।'

क्या यही है—धर्म शास्त्रों की, नारी के प्रति श्रद्धा और सुन्दर भावना, जिस पर हिन्दू-समाज अभिमान करता रहा है ?

पुरुष क्योंकि शास्त्रों का लेखक रहा है, सामाजिक और आर्थिक ढांचे को भी उसी ने अपने हाथों में सदा दबाये रखा है, अपने हित में नारी की उपेक्षा उससे हो गई तो यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है । परन्तु आज नारी समाज में इतनी जागृति आ गई है कि अब वह और देर तक अपने जीवन में अधिक पाखंड को सहन नहीं कर सकती अब तो वह उन तमाम राह के रोड़ों को दूर करके ही दम

लेना चाहती है, जिसके कारण उसकी सदियों से नींद हराम रही है, और आज उसके क्षत-विक्षत अंगों में अगणित व्रण उभरते ही चले आ रहे हैं। अब रोग के प्रति और ममता बनाये रखने से तो जीवन में खतरा उभारता ही रहेगा। यदि हम संसार के घटनाचक्र पर दृष्टि फैलाकर देखें तो ज्ञात होगा कि वैदिक-काल में जिस प्रकार मानव-वंश में आर्य और दस्यु,केवल दो वर्ग थे, ठीक आज दुनियाँ, स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित हो रही है: एक—धनवान और दूसरे—शोषित। यह वर्ग–भेद मिटता दिखाई नहीं देता, अपितु दिनोंदिन इसकी गहराई अधिक ही होती जा रही है–यानी अब वर्ग-भेद का मिटना तब असम्भव है, जब तक कि दुनियां में—अधिक संख्या में बसने वाली पीड़ित जनता की विजय नहीं हो जाती, और रक्त-चूसकों की जान, चर्म से विलग नहीं हो जाती।

वर्ग-संघर्ष के अस्तित्व को स्वीकार कर लेने पर इस बात के समझने में एक मिनट भी नहीं लगती, कि धनवान और ऊंची जाति वालों के रीतिरिवाज ग़रीब और छोटी जाति वालों से बहुत भिन्नता पर स्थापित हैं। धनवान और बचारे गरीबों की तुलना ही क्या! दोनों वर्ग के जीवन दो विभिन्न रेखाओं पर निरन्तर प्रवाहित हुए चले जा रहे हैं। अमीर और ऊंची जाति की स्त्रियां ही परदा करती हैं, और केवल पति-मनोरंजन के अलावा उन्हें कुछ भी काम नहीं करना होता, सभी काम दासों द्वारा सम्पादित जो हो जाते हैं। इसके विपरीत गरीब और छोटी जाति वाली स्त्रियों को मैंने परदा किये कभी नहीं देखा। ग़रीबी में दिन बिताने वाले बेचारे क्या आदमी, उनके बाल-बच्चे और औरतें सभी मिलकर एक दूसरे के काम को पूरा करवाने में चौबीसों घन्टे डटते हैं; एक साथ मिलकर सब काम करते हैं। उनकी औरतों को तो दोहरी जीवन गाड़ी ढोनी पड़ती है। दिन में मजदूरी भी कमानी पड़ती है, बच्चों की देखरेख भी 'मां' होने के नाते उन्हीं के जिम्मे है' और सुबह-शाम चक्की-चूल्हे में भी उन्हें ही जूझना पड़ता है। यदि उनकी औरतें झूठे परदे की शरम से अपना मुंह ढक लें तो उनको रोटी भी न मिले। ग़रीब औरतों की जीवनचर्या को देखकर मन उमड़ आता है, बेचारी औरत की यह भी क्या कोई जिन्दगी है ? बाजार हाट में ग़रीब लोगों की सिसकती

जिन्दगी ढोती स्त्रियों को देखो, खेतों में, मिल-कारखानों में, खानों में और सड़क पर ईंट-कंकर-पत्थर ढोते हुए सभी के मुख अनावरण मिलेंगे। जिस प्रकार से निर्धन-वर्ग के पुरुष जर्जरित वस्त्र धारण करे मिलेंगे वैसे ही उनकी स्त्रियां को भी शोचनीय दशा में पायेंगे। हमारे युग में जब ग़रीबी अधिक है, तब हमारे सभी काम ग़रीबों को दृष्टि में रखकर ही होने उचित हैं। आज ग़रीबी में सताई गई औरतों की यही मांग है—उनका जीवन सुरक्षित हो और उनके हाथों विश्व की कोमलतम कलायें विकसें; जिससे नीरस संसार, सरस बने।

नारी जीवन में होती सामाजिक प्रधान क्रान्ति 'संबन्ध-विच्छेद-प्रथा' प्रचलित होने देने का विरोध अब असंगत और वाहियात प्रतीत होता है। 'हिन्दू-कोड-बिल' का साधारण बोलचाल की भाषा में अब 'तलाक-बिल' ही नाम धर दिया गया है। 'हिन्दू-धर्म-शास्त्रों' से प्रभावित दिमाग़ों के लिये 'तलाक' जैसे कोई नई चीज नहीं है। हाँ, उन नाम-मात्र के हिन्दुओं के लिये, जिन्हों-ने स्वप्न में भी भारतीय-साहित्य और सांस्कृतिक-इतिहास के कभी दर्शन नहीं किये, और केवल चन्द सिर फिरे रूढ़िग्रस्त लोगों के स्वार्थ निहित मनोनीत सिद्धान्तों और परिपाटियों के पालनार्थ, 'संबन्ध-विच्छेद' जैसे मानवीय अधिकार प्रदान करने वाले नियमों का विरोध बेसुरा और बेतुका राग ही है, और कुछ नहीं। यह बात सत्य होने पर भी कि धर्म-शास्त्रों ने नारी अधिकारों की उपेक्षा की है, कई अवस्थाओं में नारी को 'संबंध-विच्छेद' का अधिकार स्पष्टतया दिया है। भारतीय-साहित्य में, मनुस्मृति—जिसे सृष्टि की एक बहुत ऊँची और बड़ी विचित्र कृति माना जाता है, उसने नारी को यह अधिकार देने की घोषणा की है।

उन्मत्तं पतितं क्लीबम—
बीजं पाप रोगिणाम् ।
न त्यागोऽस्ति
द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥

(मनु ९। ७९)

भावार्थ—'यदि स्त्री ऐसे पति से संबंध-विच्छेद (द्वेष) करती है—जो पागल है, विवेक (धर्म) त्यागकर पतित हो गया है, नपुंसक तथा कोढ़ आदि भयंयर रोग-ग्रस्त है तो—उसको कोई दोष वा दण्ड नहीं दिया जा सकता ।'

तब-आज का पुरुष-समाज, किस मुंह से इस विषय पर अपनी शास्त्रनिष्ठा प्रगट करते हुए शास्त्रानुमोदित 'संबंध-विच्छेद-प्रथा' का विरोध करता है ?

इससे अधिक मानव के किसी वर्ग की आज और क्या अधोगति हो सकती है, कि उसे इस 'अर्थ-युग' में आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा जाये ! यह तो कोई गौरवशाली और मानवोचित कार्य नहीं, कि नारी होने के कारण ही उसे हीन समझ कर, उसके पूजनीय संरक्षकों की सम्पत्ति में उसका भाग स्वीकार न किया जाय, वा पुरुष और नारी में भेद माना जाये। आज—जब नारी इस पैसे और धन के भूखे संसार में, अपनी रक्षा के लिये व्यवस्था संचालकों से 'दाय-भाग' की स्वीकृति चाहती है, तो लोक और परलोक की चर्चा करके उसे अब बहका लेने के मंसूबे, स्वार्थियों की बेवकूफियों पर गुस्से के साथ ओठों पर मुस्कराहट लाते हैं।

नारी ने अब मुक्ति की राह पर पग धरा है, अब तो वह आर्थिक जगत् में भी अपनी सत्ता को प्रस्थापित करके ही रहेगी। विकसित भौतिक जगत् के नवीन प्रसाधनों ने अब विश्व को बहुत छोटा बना दिया है। आज दूरी नाम की वस्तु दिनोंदिन संकुचितता में ढल रही है, और मानव-वंश जो सदियों से बिछुड़ा हुआ था, जब आज परस्पर में एक-दूसरे से गले मिलने की तैयारियां कर रहा है, तब क्या 'हिन्दू-समाज' इतना निर्बुद्धि है कि वह अपने द्वारा स्थापित अवान्तर भेदों को कभी मिटा ही नहीं सकता (?) मनुष्य जिस वस्तु को बना सकता है, उसको—आवश्यकता पर सरलता से नष्ट करने की भी क्षमता उसमें है। अब, वह समय आ पहुँचा है, जब निर्जीव मर्यादाओं के मलबे में दबी 'अवान्तर-जातिय-प्रथा' का रौब इन्सान पर कायम नहीं रह सकेगा। 'वर्ण'-विभाग' की शृंखला

तो टूट चुकी है, अब तो केवल हीन-संस्कारों की लज्जा ही शेष है—जो अंतर्जातीय क्षेत्र में समाज को आगे बढ़ने से रोक-थाम रही है। अब वह युग तेजी से लदा जा रहा है, जब कि समाज में 'वर्णव्यवस्था' प्रचलित थी। और आज वर्णव्यवस्था या महत्व इसके अतिरिक्त रह ही क्या गया है, कि विवाह आदि के मामलों में जाति की नीच-ऊंचता का विचार पुराने लोग करलें।

आज की संतति तो मानव की समानता के प्रश्न को जब हल करना चाह रही है, तब—कौन आश्चर्य की बात है—आज का इन्सान रीति-रिवाजों के विरुद्ध बग़ावत के दीपक की लौ को और प्रज्जवलित करे! केवल सामंतशाही युग के अतिरिक्त, जिस युग में कि नारी केवल एक मात्र वासना-पूर्ति का खिलौना बनी रही, सदैव ही वह पुरुष की अग्रणी रही है। जिस काम को करने में पुरुष ने हार स्वीकार कर ली, इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी हैं—नारी की अप्रतिभ शक्ति का कोप कभी भी रिक्त नहीं हुआ और उसने कभी किसी बड़ी-से-बड़ी शक्ति से भी पराजय न मानी। जिस काम को करने में पुरुष-वर्ग अपनी गौरव-गरिमा को हल्का होने के डर से आज हिचक रही है, आज नहीं तो कल—नारी अपने पुरुषार्थ के बलबूते पर विजयी अवश्यक होगी।

जीवन पोषक तत्त्वों का तो, अविवेकी और दुकरिया-पुराण प्रिय सदा से ही विरोध करते चले आये हैं। 'भारतीय-धर्म' तो सदा से 'युग' के साथ अपने को परिवर्तित करता रहा है। आज से सौ साल पहिले पुरुष के मर जाने पर, जब नारी को जबर्दस्ती उसके पति के शव के साथ जला दिया जाता था, उस धार्मिक परिपूर्ण मान्यता को आज जब समाप्त कर दिया गया है, तब 'हिन्दू-धर्म' आज नष्ट तो नहीं हो गया! कल तक विधवा-विवाह वर्जित था, और अब विधवा-विवाह खुले तौर पर होने लग गया से तो क्या 'हिन्दू-संस्कृति' रसातल को चली गई? परसों तक अछूतों की परिस्थित विधर्मियों से अधिक गई गुजरी थी, और आज हिन्दू जब उनको स्वार्थवश अपना ही सगा मानते जा रहे हैं तो क्या 'हिन्दू-सभ्यता'

गङ्गा में डूबने जा रही हैं—यदि नहीं, तो कोई कारण समझ में नहीं आता कि 'हिन्दू-कोड-बिल के बन जाने से, जब नारी सच्चे अर्थों में पुरुष की साथी बनने के योग्य हो जायेगी, तो कौन-सा शास्त्रों की ओर से ऐसा भूकम्प उठेगा जिससे कि धर्म के सिर पर से पानी फिर जायेगा, और 'मानव-वंश' हमेशा के लिऐ सुख की नींद में सो जायेगा !

नारी ने अनवरत श्रम के अनन्तर आज जब जीवन-ज्योति-मार्ग को अपनाया है तब भारत का दब्बू समाज बौखला उठा है, और शिथिल चरित्र की दुहाई को जोर-जोर से दोहरा रहा है, कि यह हो जायेगा, नारी के आगे बढ़ जाने से वैसा हो जायेगा और मानव-वंश का क्रम बिगड़ जायेगा ? हाँ, निश्चय ही नारी के प्रतिपल आगे बढ़ते हुये चरणों के दबाव से वर्तमान म्रियमाण हिन्दू-धर्म की सामाजिक प्रणाली की मौत अवश्यंभावी है।

(कुमारी निर्मला माथुर)

पंच वर्षीय योजना

योजना जीवन का एक आवश्यक अंग है। प्रत्येक कार्य को करने में हमें योजना का सहारा लेना पड़ता है। भोजन बनाने में रसोइये को यह सोचना पड़ता है कि उसे कौन-कौन सी और कितनी कितनी मात्राओं में वस्तुओं की आवश्यकता होगी? एक व्यक्ति के भाषण की व्यवस्था करते हुए संयोजक को सोचना पड़ता है कि कहाँ पर भाषण का प्रबन्ध हो, किस-किस व्यक्ति को आमन्त्रित किया जाए तथा किसे सभापति बनाया जाए आदि आदि? परन्तु यह सब योजना किसी एक काम को पूरा करने के लिए बनाई जाती है और साधारणतः एक या दो व्यक्तियों के लाभ के लिए ही होती है। सन् १९२३ में रूस ने सबसे पहले उस 'योजना' शब्द को दूसरे अर्थ में प्रयोग किया। उसने 'पंच वर्षीय योजना' को बना कर, देश के उद्योग-धंधों की वृद्धि कर, जन साधारण की आर्थिक उन्नति का बीड़ा उठाया। 'योजना' अब व्यक्तिगत न रही बल्कि राष्ट्रीय बन गई। रूस की इस 'योजना' में तानाशाही की बू थी। क्योंकि सरकार द्वारा उत्पादन के साधनों—भूमि, श्रम, पूँजी और साहस—का भिन्न भिन्न उद्योग धंधों में वितरण होता था और इस प्रकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को तिलाँजली दे दी गई। इसके विपरीत अमरीका में १९२९ की 'योजना' पूरे राष्ट्र की 'योजना' नहीं थी, बल्कि देश के कुछ पिछड़े हुए लोगों को उठाने की 'योजना' थी। टैनैसी वेली की यह 'योजना' तानाशाही से दूर थी क्योंकि उसमें उस स्थान के व्यक्तियों का सहयोग अधिकार से नहीं बल्कि उनकी इच्छा से लिया गया?

भारत में भी कुछ दिन हुए एक 'राष्ट्रीय योजना' बनाई गई है। जिसके द्वारा देश की आर्थिक दशा को सुधार कर निर्धनता को सदा के

लिए नमस्कार किया जा सके परन्तु इस योजना को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति को समझे तथा हमें आर्थिक समस्याओं का सामाजिक ज्ञान हो। अतः देश की आर्थिक समस्याओं का संक्षेप में विवेचन करना अनुचित नहीं होगा।

भारत एक गरीब देश है। यहाँ पर अधिकांश व्यक्तियों को भोजन, तन ढकने को वस्त्र तथा रहने तो मकान भी नहीं मिलता है। इस पर भी वस्तुओं का मूल्य बढ़ रहा है। आज जो वस्तुओं की साधारणतया कीमत है, वह युद्ध से पूर्व की कीमतों से साढ़े चार गुना अधिक है। इन बढ़ती हुई कीमतों ने साधारण मनुष्य के सामने और भी विकट समस्याओं को ला खड़ा किया है। आज एक मध्यवर्ग के व्यक्ति के लिए अपने घर का लालन-पालन कर सकना कठिन हो रहा है। इसका परिणाम है कि भारतीयों की कार्य-क्षमता, गिरते हुए स्वास्थ्य के साथ कम होती जा रही है और कार्य-क्षम का प्रभाव देश के उत्पादन पर पड़ता है।

देश के विभाजन ने भी अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। भोजन की समस्या को ही ले लीजिए। वर्तमान भारत को अ-विभाजित भारत की ७१ प्रतिशत भूमि मिली और ७७ प्रतिशत व्यक्ति। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान में होने वाले झगड़ों के कारण हज़ारों की संख्या में शरणार्थी भारत में आ गये। इस कारण भारत की भूमि पर अधिक व्यक्तियों को खिलाने का बोझ पड़ा। साथ ही भारत को पंजाब की उर्वरा भूमि को भी खोना पड़ा। इन सब कारणों से भोजन की विकट समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई है। यही नहीं, हमारी कुछ मिलें भी कच्चे माल के लिए पाकिस्तान की मोहताज हो गई हैं। कपड़े और जूट की मिलें इनमें से प्रमुख हैं। यदि इन मिलों को पाकिस्तान से ठीक प्रकार से कच्चा माल नहीं मिले तो यह अपनी पूरी शक्ति से काम नहीं कर सकती हैं। यही कारण है कि हमारे देश की उत्पत्ति इतनी शीघ्रता से नहीं बढ़ रही है जितनी की हमें आशा थी। कुछ वस्तुओं में तो इसके विपरीत उत्पादन कम ही हो रहा है।

युद्ध के समय मकान बनाने का लगभग बन्द ही हो गया था।

इससे मकानों की कमी मालूम पड़ रही थी। देश के विभाजन के कारण पाकिस्तान से हज़ारों शरणार्थी भारत में आए, जो शहरों में रहना चाहते थे। इस कारण अब मकानों की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। साथ ही इन बेघर-बार शरणार्थियों को फिर से बसाने का काम भी कोई सरल नहीं था। भारत-सरकार के अथक परिश्रम तथा प्रयत्नों पर भी हम आज तक इन भाईयों को ठीक प्रकार से नहीं बसा पाए हैं।

भारत-सरकार ने इन समस्याओं को सुलझाने के लिए, देश के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया। सरकार का विचार था कि नई-नई मिलें खोल, देश उत्पादन सरलता से बढ़ाया जा सकेगा तथा साथ ही बेकारी की समस्या भी स्वयं ही सुलझ जायेगी। परन्तु पूंजीपतियों ने इस समय साथ देने से इन्कार कर दिया। पूंजी के अभाव में नई मिलें खोल सकना असम्भव हो गया। यही नहीं, इन पूंजीपतियों ने अपनी पूंजी को, जो मिलों में लगी हुई थी बटोरने का प्रयत्न किया। अतः एक ओर तो देश का उत्पादन बढ़ने के बजाय गिरने लगा और दूसरी ओर पूंजी की समस्या उत्पन्न हो गई।

इन सब समस्याओं को सुलझाने तथा देश की आर्थिक उन्नति करने के लिए भारत-सरकार ने कुछ विशेषज्ञों का एक बोर्ड बनाया जिसका कार्य देश की दशा के अनुसार 'पंचवर्षीय योजना' बनाना था इन विशेषज्ञों ने इसी वर्ष एक योजना को सरकार के सन्मुख रखा है। इनका ध्येय इस योजना की सहायता से देश में युद्ध से पर्व की दशा को स्थापित करना है। इनकी इस योजना को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) योजना के सिद्धांत।

(२) पंच वर्षीय योजना।

(३) प्रबन्ध।

योजना के सिद्धान्त

पंचवर्षीय योजना को भारत के राजतन्त्र के अनुसार:—

(अ) प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीविका के साधन जुटाने हैं।

(ब) धन का वितरण जहाँ तक हो सके—समान रूप से करना है।

(स) पूंजी का नियन्त्रण जन-हित के लिए करना है।

इन सब आदर्शों को सरकार 'पंचवर्षीय योजना' जनता के सहयोग से प्राप्त करना चाहती है, क्योंकि यह योजना उन्हीं के हित के लिए है। हमारा देश, एक प्रजातन्त्र देश होने के नाते किसी और ढ़ग का प्रयोग भी नहीं कर सकता है।

पंच वर्षीय योजना

पंचवर्षीय योजना का ध्येय देश में युद्ध से पूर्व की स्थिति को स्थापित करना है, जिससे की भविष्य में देश की आर्थिक दशा को उन्नत किया जा सके। विशेषज्ञों का विचार है कि इस 'योजना' में १४६३ करोड़ रुपये व्यय होंगे। इन्होंने इस योजना को अलग अलग भागों में विभाजित किया है। उनमें से प्रमुख-प्रमुख यह है।

कृषि

हमारे सामने दो प्रश्न हैं—यथेष्ट मात्रा में भोजन पैदा करना जिससे सब व्यक्तियों का लालन-पालन हो सके और साथ ही अधिक मात्रा में कच्चे माल को पैदा करना, जिससे देश की मिलों को कच्चे माल के लिए विदेशों का मुँह न देखना पड़े। योजना बनाने वालों का विचार है कि हम कुछ वर्षों तक दोनों ही वस्तुओं को अधिक मात्रा में नहीं पैदा कर सकेंगे। अतः वह सोचते हैं कि हम ३० लाख टन अन्न प्रति वर्ष विदेशों से मँगायें तथा कच्चे माल को अधिक मात्रा में स्वयं ही पैदा कर उद्योग धंधों के विकास की ओर अधिक ध्यान दें। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए उन्होंने खेतों के क्षेत्रफलों को बढ़ाने तथा वैज्ञानिक ढंग से खेती करने पर जोर दिया है। वह सब

खेतों को दो भागों में विभाजित कर देना चाहते हैं। एक "रजिस्टर्ड फार्म" और दूसरे "छोटे सहयोग फार्म"। रजिस्टर्ड फार्म वह होंगे जिनका क्षेत्रफल एक निश्चित सीमा से अधिक होगा। इन फार्मों के मालिकों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करनी पड़ेगी। आधुनिक मशीनों की सहायता से खेती करने तथा ठीक प्रकार से पानी और खाद के प्रबन्ध होने से उपज फी एकड़ बहुत अधिक बढ़ जाएगी। इस रजिस्टर्ड फार्म पर काम करने वाले मजदूरों का वेतन भी सरकार द्वारा निश्चित किया जावेगा जिससे पूँजीपति इन मजदूरों का शोषण नहीं कर सके तथा इनकी कार्य-क्षमता रहन-सहन के स्तर से ऊँचा होने के साथ बढ़ सके। इन खेतों की समस्त पैदावार को सरकार के हाथों बेचना पड़ेगा।

हम जानते हैं कि आज भारत में खेतों का क्षेत्रफल कम होने से फी एकड़ पैदावार भी बहुत कम है। जब कि विदेशों में एक एकड़ भूमि में तीस मन अन्न पैदा होता है तब हमारे देश में केवल दस मन ही अन्न पैदा हो पाता है। 'पंच वर्षीय योजना' के बनाने वालों ने "छोटे सहयोगी फार्म" की मदद से फी खेत का क्षेत्रफल बढ़ाने का स्वप्न देखा है। जिससे कि पैदावार फी एकड़ बढ़ सके। छोटे छोटे खेतों के मालिक यदि मिल कर एक बड़ा खेत बना लें तब यह खेत "छोटा सहयोगी फार्म" कहलायेगा और इस फार्म को सरकार की ओर से अनेक सुविधायें दी जाएगी। उदाहरणार्थ सरकार द्वारा कम सूद पर रुपया मिलना, खेती के विशेषज्ञों की सहायता मिलना, फसल को बाजार में बेचने का ठीक प्रबन्ध होना तथा सस्ते और अच्छे बीजों का प्राप्त होना आदि-आदि। योजना बनाने वाले विशेषज्ञों का विचार है कि किसान इन सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए स्वयं ही "छोटे सहयोगी फार्म" बना डालेंगे और इससे देश को लाभ होगा।

इन दो प्रकार के फार्मों के अतिरिक्त "गांव उत्पादन समिति" भी बनाई जावेगी। यह समिति किसानों के प्रतिनिधिओं और सरकार के प्रतिनिधियों का एक मण्डल होगी। यह सब मिलकर यह

निश्चित करेंगे कि वे किस-किस वस्तु को कितनी-कितनी मात्रा में उत्पन्न करें। इस समिति का काम किसानों की आवश्यकताओं को मालूम कर उन्हें सरकार तक पहुंचाने का भी होगा, जिससे सरकार इन वस्तुओं को किसानों तक पहुंचा सके जिससे उत्पादन में वृद्धि हो। यह समिति बिना जोती जमीन को भी जोतने का प्रबन्ध करेगी तथा सरकार को अनाज खरीदने में भी मदद करेगी।

इन तीन साधनों से हमारी कृषि का ढांचा बदल जायेगा और योजना का ध्येय सरलता से प्राप्त किया जा सकेगा। योजना-विशेषज्ञों का विचार है कि इस कृषि योजना पर १९१७७ लाख रुपये व्यय होंगे।

सिंचाई और शक्ति के साधन

किसी भी देश के उद्योग धंधों को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि वहां पर सस्ती शक्ति अधिक मात्रा में व्यक्तियों को मिल सके। शक्ति या तो बिजली की होती है या कोयले, लकड़ी, मिट्टी के तेल, पैट्रोल आदि की होती है। भारत में इस समय सभी प्रकार की शक्तियों का अभाव है। अतः यदि हम देश में औद्योगिक क्रांति चाहते हैं तो हमें सस्ती शक्ति को बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न करनी चाहिए। इस विचार को सम्मुख रखते हुए (Multipurpose Projects) की ओर अधिक ध्यान दिया है। योजना-विशेषज्ञों का विचार है कि ७२६ करोड़ रुपये व्यय कर वह बहुत अधिक मात्रा में सस्ती बिजली उत्पन्न कर सकेंगे जिससे कि मिल, कारखाने सरलता से चलाए जा सकेंगे और इन (Multipurpose Projects) के पूरा होने पर बहुत अधिक भूमि सींची जा सकेगी। जिससे खेतों की उपज भी बढ़ जावेगी।

मिल और कारखाने

भारत में इस समय पूंजी का अभाव है। अतः बड़े बड़े कारखाने खोल सकना असम्भव है। दूसरे, बड़े बड़े कारखानों में

मशीनों का प्रयोग भी अधिक होता है अपेक्षा कृत मजदूरों के। इसलिए बेकारी का प्रश्न सम्मुख रखते हुए भी बहुत बड़े कारखाने खोलना उचित नहीं है। इन सब बातोंके कारण, इस पंचवर्षीय योजना के विशेषज्ञों ने अपना ध्यान कुटीर धन्धों और छोटी मात्रा की उत्पत्ति की ओर दिया है। वह इन छोटे-छोटे धन्धों को प्रोत्साहन देकर अनेक प्रश्न सुलझाना चाहते हैं। इन धन्धों के विकास से, बिना पूंजी के भी देश का उत्पादन बढ़ जावेगा। इस प्रकार कन्ट्रोल की विकट समस्या का स्वयं ही अन्त हो जावेगा। इससे बेकारी का प्रश्न भी सुलझेगा, क्योंकि छोटे छोटे धन्धों में मशीनों के अतिरिक्त अधिक मजदूर काम करेंगे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन्होंने बड़ी बड़ी मिलों को बन्द करने का विचार किया है, परन्तु वह नये और बड़े कारखानों को नहीं खोल कर वर्तमान कारखानों से पूरा काम लेन चाहते हैं।

पंचवर्षीय योजना-विशेषज्ञों ने (Basic industries) पर भी ध्यान दिया है। उनका विचार (Basic industries) को खोलने का है जिससे भविष्य में विदेश से मशीनों को न मांग कर देश में ही बनाई जायें। इस प्रकार, कुछ समय बाद जब यह (Basic industries) आरम्भ हो जायेगीं तब देश में अधिक उत्पादन की मात्रा कर देश का उत्पादन एकदम बहुत अधिक बढ़ाया जा सकेगा।

पंचवर्षीय योजना में अनेक समितियों को बनाने की भी योजना है। उदाहरण के लिए एक "Development Council" स्थापित की जावेगी। यह मिलों के उत्पादन को निश्चित करेगी तथा लागत खर्च को कम करने के उपाय बतायेगी। मजदूरों और पूंजीपतियों के झगड़ों को तय करने के लिए भी एक समिति बनाई जावेगी। एक बोर्ड मजदूरों की मजदूरी निश्चित करने के लिए बनाया जाएगा। एक "नैशनल इन्डस्ट्रीयल हैल्थ म्यूज़ियम" भी खोला जावेगा जो मजदूरों के स्वास्थ्य का ध्यान रखेगा। इसी प्रकार के अनेक बोर्ड होंगे जो मकानों की समस्या शरणार्थियों की समस्या, शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं आदि समीस्याओं को सुलझायेंगें।

पंच वार्षीय योजना को पूरा करने में लगभग १४९३ करोड़ रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। योजना-विशेषज्ञों का विचार है वे इसी रुपये को केन्द्रिय और प्रान्तिय सरकारों से और राज्य संघों से, चीफ कमिश्नर की सरकारों से, स्टरलिंग बैलैन्सेज से और विदेश से ऋण लेकर रुपये की आवश्यकता को पूरा कर सकेंगे। अनुमान किया जाता है कि विदेशों से ३७५ करोड़ रुपये का ऋण लेना पड़ेगा।

प्रबन्ध कार्य

योजना-विशेषज्ञों ने आज की सरकार के प्रबन्ध की कड़ी आलोचना की है। उनका विचार है कि यदि राज्य प्रबन्ध ठीक नहीं हुआ तो योजना कितनी भी सुन्दर क्यों न हो, अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकेगी तथा सब प्रयत्न निश्फल हो जावेंगे। इस लिए उन्होंने सरकार के प्रबन्ध को ठीक करने की योजना बनाई है। उन्होंने यह भी बताया है कि किस प्रकार से यह योजना कार्य रूप में परिणित की जावे ?

इस पंचवर्षीय योजनको पढ़ने के बाद कोई भी व्यक्ति योजना-विशेपज्ञों की बुद्धि की सराहना किए बिना नहीं रह सकता। इन्होंने इस योजना को तैयार करने में बहुत प्रयत्न किया है। वह बहुत ऊंचे आदर्शों तथा आशाओं को लेकर नहीं चले हैं। उन्होंने अपनी समस्याओं और साधनों का भली भाँति अध्ययन करके इस योजना को बनाया है। अतः यह योजना बहुत ही वास्तविक है यदि यह कार्य रूप में परिणित हो गई तो अवश्य ही देश की आर्थिक दशा को सुलझाने में किसी सीमा तक सफल होगी। परन्तु कुछ व्यक्तियों ने इस योजना की कड़ी आलोचना भी करी है। एक बड़े अर्थशास्त्री का कथन है कि यह योजना बेकारी की समस्या को ठीक प्रकार हल करने में असफल रही है। उनका विचार है कि हर योजना को यह ध्येय होना चाहिए कि वह देश से बेकारी बिल्कुल दूर कर दे। परन्तु यह योजना ऐसी कोई भी ध्येय लेकर नहीं चलती है। इसी प्रकार एक दूसरे अर्थशास्त्री का कथन है कि आज की परिस्थितियों में अन्न का आयात करना उचित नहीं है। क्योंकि यदि कल कोई युद्ध छिड़ जाए तो अन्न का

आयात नहीं हो सकेगा और देश में अकाल पड़ जावेगा। एक बड़े अर्थशास्त्री ने इस 'योजना' को इसलिए बुरा कहा है कि यह ३७५ करोड़ रुपया विदेश से ऋण लेने का विचार रखती है। उनका विचार है कि इतना रुपया हमें कभी भी ऋण के रूप में विदेशों से नहीं मिल सकता और ऐसी दशा में यह योजना सफल नहीं हो सकेगी।

इस आलोचनाओं के होने पर भी हम कह सकते हैं कि यह 'योजना' अपनी जैसी अकेली है। हो सकता है कि इसमें कुछ कमियाँ हो। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इसे निरर्थक समझ अलग कर दें। हमें इन कमियों को दूर कर इस 'योजना' को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करना चाहिये। जिससे हम अपनी आर्थिक समस्याओं को सुलझा सकें।

(प्रो० शान्ति स्वरूप गुप्ता एम०ए०)

मृत्युकर

प्रत्येक राष्ट्र का आर्थिक ढांचा उसकी आय पर निर्भर रहता है। राज्यकर और व्यापार आय के मुख्य साधन माने जाते हैं। प्राचीन काल में प्रचलित राजकीय करों में मृत्युकर का प्रमुख स्थान था। इंग्लैण्ड का मृत्युकर अथवा साम्पतिकर और अमरीका का उत्तराधिकार कर एक ही कर के विभिन्न नाम हैं। उत्तराधिकार कर सम्पति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के मृतक व्यक्ति के सम्बन्धों पर निर्भर रहता है। सर्व प्रथम इस कर को ईसा से ११७ वर्ष पूर्व रोमन साम्राज्य में प्रचलित किया गया था। शनैः शनैः समस्त साम्राज्य में इस कर को लगा दिया गया। इसके कर प्रणालीके अन्तर्गत यदि मनुष्य अविवाहित मरता था तो उसकी सारी सम्पत्ति कर के रूप में राज्य कोष में चली जाती थी। निसन्तान मरने वाले व्यक्ति की ५० प्रतिशत सम्पत्ति का स्वामी राज्य होता था। मध्य युगीन राज्यों में जनपद (Manor) के अध्यक्ष (Lord) भी अपनी आर्थिक उन्नति के लिए इस कर को लगाते थे।

यूरोप में इस कर का जन्म दातायदि नैपोलियन को कहा जाये तो आपत्ति न होगी। निरन्तर युद्धों के कारण वहाँ का आर्थिक ढांचा छिन्न भिन्न हो चुका था। प्रत्येक राष्ट्र का आर्थिक जीवन अन्धकार मय था। इस आपत्तिकाल में प्रमुख अर्थशास्त्रीयों के परामर्श पर इंगलैण्ड, फ्रांस, स्पेन इत्यादि में यह कर लगाया गया। इस कर प्रणाली में कुछ प्रारम्भिक दोष थे अतएव १७९६ में फ्रांस की राज्यसभा द्वारा कुछ सुधार किये गये। इटली ने भी १८६२ में इस कर को लगाना स्वीकार कर लिया। इंग्लैण्ड में कुछ सुधारों के उपरान्त १८९४ में प्रगतिशील सम्पत्ति कर प्रणाली को अपना लिया गया। संयुक्तराष्ट्र

अमरीका के कुछ भागों को छोड़कर संघ सरकार ने प्रे० विल्सन के राज्य काल में १६१६ में इस कर को लगाना स्वीकार लिया। कनाडा में यह कर १६४१ में लागू किया गया। भारत में भी इस कर को लगाने की योजना आयोग ने सिफारिश की है।

मृत्युकर का उद्देश्य

उन्नत राष्ट्रों में इस कर की दरें कुछ अधिक होती हैं। यदि सम्पत्ति प्राप्त करने वाला व्यक्ति मृतक का दूर का सम्बन्धी अथवा मित्र है तो कर की दर कुछ अधिक होती है। यदि सम्बन्ध समीप का होता है तो राज्य मृतक की सम्पत्ति का कुछ प्रतिशत ही लेता है। अधिकतर राज्यों में छोटी सम्पत्ति पर यह कर नहीं लिया जाता है ब्रिटेन में एक परिवार में आकस्मिक रूप से कई मृत्यु लगातार होने पर कर की दर कम कर दी जाती है, अन्यथा समस्त सम्पत्ति समाप्त हो जाने का भय रहता है जिसका उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त युद्ध सेवाओं में मृत्यु होने अथवा दान देने पर भी कर नहीं लिया जाता है या कम लिया जाता है।

वास्तविक रूप में देखा जाये तो मृत्युकर का उद्देश्य समाज के धन का समान वितरण करना है। यदि करों की दर कम हो तो प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य अपने जीवन काल में अधिक सम्पत्ति एकत्रित करता है इस प्रकार राज्य उसकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी से अधिक धन प्राप्त हो जाता है। ब्रिटेन में १६४६ में बड़ी सम्पत्ति को प्राप्त करने वाले व्यक्ति से यदि वह मृतक का दूर का सम्बन्धी होता था तो ६० से ८० प्रतिशत तक कर लिया जाता था। इस प्रकार बड़ी सम्पत्तियों पर बुरा असर पड़ता था। अतएव इसमें कुछ सुधार किये गये।

मृत्यु निश्चित सत्य है। अतएव सम्पत्ति के अधिकारी की मृत्यु पर राज्य को निरन्तर आय होती रहती है। कई स्वामी अपने जीवन काल में ही इतना नकद रुपया एकत्रित कर लेते हैं कि उनके उत्तराधिकारियों को उनकी मृत्यु के उपरान्त कर चुकाने में सहूलियत हो

जाती है। मृत्यु के समय किसी धार्मिक या शिक्षण संस्था को दी जाने वाली सम्पत्ति इस कर से मुक्त रखी जाती है। इस सम्पत्ति को छोड़ने के उपरान्त जितनी भी सम्पत्ति बचती है उस पर कर लिया जाता है।

विशेषतायें व हानि

आर्थिक विशेषज्ञ मृत्यु कर को इस कारण अच्छा समझते हैं कि इससे राज्य को नियमित आय होती रहती है। विशेष कर उन देशों में जहाँ कि सम्पत्ति का विभाजन नहीं होता, मृत्युकर द्वारा समानता लाई जा सकती है। धन का वितरण समान हो जाने पर सामाजिक रूप में फिर इस कर का कोई महत्व नहीं रह जाता है। किसी भी सम्पत्ति का मूल्य आंकना सहज नही होता है। यदि कोई छोटी सम्पत्ति का स्वामी एक समय में कर देने की क्षमता नहीं रखता है तो उसे वार्षिक किस्तों में चुकाने की सुविधा दी जाती है।

मृत्यु कर की सबसे बड़ी हानि व्यक्तिगत बचत पर होती है। कृषि योग्य व अचल सम्पत्ति को अधिक मात्रा में बेचने से उसका मूल्य घट जाता है। अतएव मनुष्य कम बचत करते हैं।

कर की दर

अभी हाल में अमरीका में कर वृद्धि के कारण आयकर के समान समस्या खड़ी हो गई है। स्थानीय निवासी को ६० हजार डालर की सम्पत्ति पर छूट दी जाती है। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति पर ३ से ७७ प्रतिशत तक कर लिया जाता है। ब्रिटेन में तो कभी कभ यह दर ६० से ८० प्रतिशत तक पहुंच जाती है। रूस जैसे साम्यवादी देश में भी जहाँ कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का अभाव ही है, मृत्युकर प्रचलित है वहाँ पर उत्तराधिकारी को ३०० से १००० रूबल तक की सम्पत्ति पर ५० प्रतिशत कर देना पड़ता है और १० हजार से ऊंची सम्पत्ति पर केवल १० प्रतिशत ही लिया जाता है।

कर बचाने की समस्या

कर की ऊंची दरें सम्पत्ति के स्वामियों को कर बचाने के लिये

बाध्य करती हैं। अमरीका में बहुत से मनुष्य अपने जीवन काल में अपनी सम्पत्ति उत्तराधिकारियों को दे देते हैं परन्तु इस पर भी उन्हें पारितोषिक कर देना पड़ता है। ब्रिटेन में यह कर नहीं है। यदि सम्पत्ति देने के पाँच वर्ष के भीतर सम्पत्ति के भूतपूर्व स्वामी की मृत्यु हो जाती है तो समस्त सम्पत्ति पर मृत्यु कर लगा दिया जाता है।

अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार किसी भी व्यक्ति पर कर का इतना ही बोझ डालना चाहिये जितना कि वह सुगमता पूर्वक उठा सके। ऊंची दरों के कारण बड़ी सम्पत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं जिनसे कि राज्य को वास्तविक आय होती है। जस्टिस होम्स ने एक बार कहा था कि, 'जब कि न्याय एक रेखा अंकित कर देता है तब अपराधी व अपराध दोनों तरफ होते हैं। जब कि कर छिपाने वाला अपराध से मुक्त कर दिया जाता है तब वह न्याय द्वारा प्रदान की जाने वाली समस्त सुविधाओं का उपभोग करता है। यदि वह अपराधी घोषित कर दिया जाता है। तब वह कर बचाने वालों की श्रेणी में आता है।' वास्तविक रूप में मृत्युकर के सम्बन्ध में अधिकारियों और करदाताओं में होड़ लगी रहती है। वह एक दूसरे की अज्ञानता का लाभ उठाना चाहते हैं।

मृत्युकर बचाने के अनेकों उपायों में सम्पत्ति का छिपाना, देश से निष्क्रमण व जीवन काल में सम्पत्ति दे देना है। बहुत से मनुष्य ऊंची कीमतों पर ऐतिहासिक वस्तुएँ खरीदकर अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ जाते हैं क्योंकि उन पर कर नहीं लगता है।

भारत में मृत्युकर

यहाँ मृत्युकर का वास्तविक स्वरूप प्रचलित नहीं है, परन्तु उत्तराधिकार कर इस देश में ज्ञात अवश्य है। १७९२ में यह कर कालीकट में जमोरिन शासकों द्वारा लागू किया गया था। रियासत बीकानेर में विकसित कर प्रणाली के अनुसार यह कर लिया जाता था। भारत में सर्व प्रथम १८५६ में इस कर को लगाने की चेष्टा की

गई थी। सन् १६२४-२५ में कर अन्वेषण समिति द्वारा भी मृत्युकर लगाने पर जोर दिया गया था। १६३८ में जब प्रान्तीय वित्त मन्त्री सम्मेलन में मृत्युकर के सम्बन्ध में विचार किया गया तब विभिन्न कारणों से इसका विरोध किया गया था। अतएव उस समय इस प्रश्न को कुछ समय के लिये टाल दिया गया। विरोध के मुख्य कारण यह थे:—

(१) सम्पत्ति का मूल्यांकन सम्भव नहीं है।

(२) उद्योगों में पूंजी लगाने की आदत अभी पूर्णतया विकसित नहीं हुई है।

(३) व्यक्तिगत व्यापारिक आय निश्चित नहीं है जिससे व्यवसाय का मूल्यांकन किया जा सके।

(४) मिताक्षरा न्याय के अनुसार संयुक्त हिन्दू परिवार में यह समस्या बाधक होगी।

(५) उत्तराधिकार कर लगाने का अधिकार केवल राष्ट्रीय सरकार को है।

(६) उत्तराधिकार कर एक साम्यवादी बचत है।

हिन्दू कोडबिल और मृत्युकर

ऊपर कहा जा चुका है कि मिताक्षरा न्याय के अनुसार मृत्युकर के लिये संयुक्त हिन्दू परिवार में सम्पत्ति का मूल्यांकन सम्भव नहीं है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार अभी सहल नहीं है। हिन्दू कोडबिल पास हो जाने पर यह बाधा दूर हो जायेगी तभी इस कर को लगाने की प्रश्न सहल हो सकेगा।

योजना आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रथम पञ्च वर्षीय योजना में भी मृत्युकर लगाने का समर्थन किया है। कमीशन के अनुसार आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय योजना के प्रथम चरण हैं अतएव उचित दिशा में शीघ्रपग उठाना होगा। और "समस्या का मूल

आय का सुधार ही नहीं हैं अपितु धन का असमान वितरण है जिससे कि आय में असमानता आती है।" इतना अवश्य निश्चित है कि मृत्युकर से राज्य को निश्चित आय होती है। जिससे कि शनैः शनैः सम्पत्ति विभाजन की असमानता को समाप्त किया जा सकता है।

(नीरस योगी)

द्वितीय विश्व युद्ध

"The old order changeth yielding place to new;
And God fulfils Himself in many ways,
Lest one good custom may corrupt the world"

—Tennyson.

"प्राचीन परम्पराओं का स्थान नूतन परम्पराएं ले लेती हैं। ईश इस कार्य को विभिन्न प्रकार से पूर्ण करते हैं। इस लिए कि कहीं कोई अच्छी किन्तु प्राचीन परम्परा संसार को भ्रष्ट न कर दे।"

परिवर्तन जगत का नियम है। युद्ध के बाद शांति और शाँति के बाद युद्ध आते ही रहते हैं। पिछले महायुद्ध (१९१४-१९१८) के घाव अभी पुरने भी न पाये थे, कि द्वितीय महा समर का डंका योरोप में बजने लगा। जब १ सितम्बर १९३९ को जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण किया इस आक्रमण का कारण यह था कि पोलैंड ने जर्मनी की इस मांग को ठुकरा दिया था, कि उसे "डैन्जिक" लौटा दिया जाये। पोलैंड से सद्भावना प्रदर्शित करने के फलस्वरूप फ्रांस मेंभी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। इस प्रकार वह विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया, जिसे आधुनिक इतिहास कार "A great Romance in history" (इतिहास में एक महान कल्पित घटना) कहते हैं।

जर्मनी की युद्ध प्रक्रिया से मित्र राष्ट्रीय सेनापति आश्चर्य चकित रह गये। जर्मनी की शक्तिशाली सेनाओं ने देश पर देश जीतने प्रारम्भ कर दिये। वारसा का पतन २७ सितम्बर १९३९ को हो गया। और ९ अप्रैल १९४० को डेनमार्क पर और ९ अप्रैल १९४० को हालैंड पर जर्मनी ने आक्रमण कर दिया। रॉटर्डम पर १४ मई को

जर्मनवासियों ने भयानक बमबारी की, और हालैंड को आत्म-समर्पण करना पड़ा। बमवर्षा के फल-स्वरूप अधिक क्षति हुई। पचास हज़ार नागरिकों में से ३० हज़ार काल कलवित हो गये। बेल्जियम ने २७ मई १९४० को आत्म समर्पण कर दिया। और जर्मनी ने डेनमार्क पर अधिकार कर लिया। ५ जून १९४० को फ्रांस का युद्ध प्रारम्भ हुआ। जर्मनी ने फ्रांस का युद्ध नौ दिनों में समाप्त कर दिया। और १४ जून को पैरिस का पतन हो गया। ग्रेट ब्रिटेन का युद्ध इसके बाद प्रारम्भ हो गया। अगस्त से प्रारम्भ होकर यह युद्ध अक्टूबर १९४० तक चलता रहा। यह युद्ध एक भयंकर युद्ध माना जाता है। जिसमें जर्मनी की हवाई बम वर्षा का प्रमुख स्थान था।

युद्ध का एक प्रमुख युग "३ सितम्बर १९४० से प्रारम्भ होता है। आंग्ल अमेरिकन संधि सामने आई। युद्ध चलता रहा। अक्टूबर १९४० में इटली ने यूनान पर आक्रमण कर दिया। और २२ जनवरी १९४१ को ब्रिटेन ने इटली के जलसेना केन्द्र (Naval Base) टोब-रुक पर अधिकार कर लिया। पुनः जर्मनी ने यूनान और यूगोस्लाविया पर आक्रमाण कर दिया। और शीघ्र ही एथेन्स पर अधिकार कर कर लिया। जर्मनी के नूतन युद्ध प्रक्रिया का प्रदर्शन उसकी सेनाओं ने २० मई १९४१ को क्रीट के आक्रमण में किया। ब्रिटेन का युद्ध पोत "हुड" (Hood) २४ मई को डुबा दिया गया। १ जून को ब्रिटिश सेनायें क्रीट से हटा ली गई।

रूस पर जर्मनी के आक्रमण ने संसार के इतिहास में एक नवीन अध्याय खोल दिया। रूसी युद्ध मोर्चे का क्षेत्र फल १५०० मील था। जोकि फिनलैंड से कृष्णा सागर तक फैला हुआ था। रूस पर आक्रमण करके हिटलर को भी उसी दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा जो नैपोलियन का हुआ था।

ब्रिटेन के द्युध कालीन प्रधान मन्त्री चर्चिल और अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट १४ अगस्त को मिले। और उन दोनों ने ३० अक्टूबर १९५१ को "एटलान्टिक घोषणा पत्र" प्रकाशित किया।

बहुत शीघ्रतासे जर्मन सेनायें रूसी सीमा पर अधिकार करती

जा रहीं थीं। कीव पर १० सितम्बर को जर्मनी ने अधिकार कर लिया। २२ नवम्बर को उसकी सेनायें रूस्तोव में घुस गईं।

७ दिसम्बर १९४१, युद्ध के इतिहास में एक अभूतपूर्व दिन था। जब जापान ने पर्ल-हारबर स्थिति अमरीका के नाविक, सैनिक और हवाई अड्डे पर हवाई आक्रमण किया। अमरीका ने स्वप्न में भी जापान के ऐसे विध्वन्सात्मक आक्रमण की कल्पना नहीं की थी।

ब्रिटेन और उपनिवेशों ने ८ दिसम्बर १९४१ को जापान के विरूद्ध युद्ध घोषणा कर दी। ऐसे समय में ही चीन रंगमंच पर उपस्थित हुआ। और उसने शत्रु राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। अब युद्धाग्नि पूर्व और पश्चिम दोनों में भड़क उठी। जापानियों ने अत्यन्त आश्चर्य जनक ढंग से दो ब्रिटिश युद्ध पोतों—"प्रिन्स ऑफ वेल्स" और "रिपल्स" को १० दिसम्बर को डूबो दिया। जापान के इस कार्य से समस्त संसार की भय और प्रशंसा पूर्ण आंखे उसकी ओर उठ गईं। जर्मनी और इटली ने ११ दिसम्बर को संयुक्त राज्य अमरीका के विरूद्ध युद्ध घोषणा कर दी और २५ दिसम्बर को हॉग-कॉंग ने जापान की शक्तिशाली सेनाओं के सन्मुख आत्म समर्पण कर दिया। ३ जनवरी १९४२ को २६ राष्ट्रों ने शत्रु राष्ट्रों के विरूद्ध सम्मिलित युद्ध घोषणा कर दी। और १५ फरवरी को संसार ने आश्चर्य के साथ सिंगापुर के पतन का भयानक समाचार सुना। २३ मार्च १९४२ को जापानियों ने अंडमान टापुओं को भी जीत लिया। युद्ध-ज्वाला दिन प्रतिदिन उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। और अब बंगाल को इस आग से खतरा बढ़ रहा था। सारा भारत जापान की बढ़ती हुई शक्ति की ओर भय से देख रहा था। बर्मा जापान के हाथों में जा चुका था। और अस्थायी आजाद हिंद सरकार के सर्वोच्च सेना-पति श्री सुभाषचन्द्र बोस जापान सरकार से बंगाल और भारत को युद्धाग्नि से बचाने के लिए कूटनीतिक खेल खेल रहे थे।

शत्रु-राष्ट्रों की सफलता की चरम-सीमा १२ सितम्बर १९४२ को हो गई। जब जर्मन सेनायें स्टालीनग्राड की गलियों में लड़ रहीं थीं। और तभी से शत्रु राष्ट्रों की पराजय प्रारम्भ हो गई। प्रत्येक

वस्तु अपना चरमोत्कर्ष देखने के पश्चात् पतन का मुख भी देखती है। यही हाल जर्मनी का हुआ शत्रु राष्ट्रों की प्रथम पराजय मिश्र में हुई। तब कैसेबलैन्का के समीप रूजवेल्ट और चर्चिल में दूसरी भेंट हुई।

जर्मनी ने लेनिन ग्राड पर १८ जनवरी १९४३ को घेरा डाल दिया। किन्तु यह अभिकार २ फरवरी १९४४ को समाप्त हो गया। और उसके साथ ही ३ लाख जर्मनी की छटी सेना भी समाप्त हो गई। यह हिटलर को एक मृत्यु जैसा धक्का लगा।

१५ अगस्त को मुसोलिनी के स्तीफे के पश्चात इटली के टापू एक-एक करके मित्र राष्ट्रों द्वारा जीत लिए गये। इटालियन नाविक सेना ने ११ सितम्बर १९४३ को आत्म समर्पण कर दिया। और कोर्सिका मुक्त कर लिया गया। अब संयुक्त राष्ट्रीय सहायता और पुनर्वास संगठन के अन्तर्गत सारा कार्य आरम्भ हुआ। मित्र राष्ट्रीय सेनायें ६ जून १९४३ को जनरल आइजनहोवर की कमान में उत्तरी फ्रांस में उतरी, और २२ जनवरी १९४४ को दक्षिणी रोम में।

अपने पतन से पूर्व जर्मनी ने अपनी युद्ध दक्षता का चरम-प्रदर्शन किया। उसके उड़न बम जो ३५० मील फी घंटे की रफ्तार से उड़ते थे ब्रिटेन में गिराये गये। ब्रिटेन पर जर्मनी आक्रमण का सबसे भयानक पहलू था। वी २ बमों (V-2 Bombs) का प्रयोग और इसके बाद जर्मनी का पतन प्रारम्भ हो गया। १७ अगस्त १९४४ को मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को भयंकर और निर्णायक रूप से पराजित कर दिया। मित्र राष्ट्रों और रूस के हाथों में एक एक करके शहर, बंदरगाह आते गये। मुसोलिनी को २९ अप्रेल १९४५ को मार डाला गया और १मई १९४५ को हिटलर की मृत्यु का समाचार आया। ७ मई को जर्मनी ने बिना शर्त के आत्म समर्पण कर दिया।

जर्मनी की पराजय के बाद युद्ध का भार बहुत कम हो गया और जापान को जीतना भी सरल दिखाई देने लगा और यह कार्य जर्मन वैज्ञानिक ओटो वाहन के अविष्यकार अणु बम द्वारा और भी

सरल हो गया। एक नौ सैनिक युद्ध में अमेरीका ने १८ अक्टूबर १९४४ को जापान को एक करारी हार दी। और १५ फरवरी १९४५ को १५०० वायुयानों ने टोकियो पर नौ घंटे तक लगातार बम वर्षा की। हीरोशिमा पर ६ अगस्त को पहला अणु-बम गिराया गया। और ९ अगस्त को दूसरा नागासाकी पर। युद्ध की क्षति-पूर्ति में हिस्सा लेने के अभिप्राय से रूस ने पुनः जापान के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी।

अन्त में जापान को पोस्टडम् सम्मेलन की शर्तें स्वीकार कर आत्मसमर्पण करना पड़ा और इस प्रकार फासिज्म और तानाशाही का अन्त होकर जनतंत्र की प्राण-प्रतिष्ठा हुई उस युग में जब कि रक्त से सने इतिहास के पृष्ठ सूखने भी न पाये थे।

(श्री जगदीश प्रसाद "रवि" एम० ए०)

विश्व में कच्चे माल का संकट

गत् १५० वर्षों में पराधीन राष्ट्रों की उन्नति साम्राज्यवादी राष्ट्रों की इच्छा पर निर्भर रही है। इन पराधीन राष्ट्रों को अविकसित देश में रखकर उनके आर्थिक स्तर को निम्न श्रेणी में परिवर्तित कर दिया गया है। इसी भावना का आश्रय लेकर उनकी औद्योगिक उन्नति में भी बाधा डाली गई है। किसी भी समृद्ध देश का आर्थिक ढाँचा वहाँ पर प्राप्त होने वाले कच्चे माल की मात्रा पर निर्भर रहता है। कच्चा माल मिलने पर ही औद्योगिक विकास सम्भव है, परन्तु उसके लिये यह भी आवश्यक है कि उपभोग करने वाली वस्तुओं का निर्माण देश में ही किया जाये। कच्चे माल के अभाव में उत्पादन के अन्य साधन भूमि, श्रम व पूंजी व्यर्थ ही हो जाते हैं। वैसे उत्पादन के लिये समस्त साधनों का होना आवश्यक है, परन्तु आज के युग में कच्चे माल को ही अधिक महत्व दिया जाता है। अमरीका का अविकसित देशों में इसीलिये प्रभाव है (विशेषकर पश्चिमी यूरोप में) कि वहां पर कच्चे माल की प्रचुरता है। रूस की औद्योगिक उन्नति का प्रमुख कारण भी वहाँ पर कच्चे लोहे के पर्याप्त मात्रा में मिलना ही है।

कच्चे माल की प्राप्ति के लिये ही औद्योगिक उन्नति व बढ़े हुए राष्ट्र उपनिवेश प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। वहाँ के मानव-समाज के बढ़ते हुए चरणों को रोका जाता है। इस अकुंश के कारण ही मानव-समाज को युद्ध की भट्टी में निरन्तर झोंका जाता है। मलाया, मध्यपूर्व, हिन्दचीन, पोर्टिको और फिलिपाईन आज इसी कारण अशान्ति का केन्द्र बने हुए हैं कि वहाँ पर विदेशी शक्तियाँ

कच्चा माल प्राप्त करने की होड़ में लगी हुई है। वह आय के इस साधन को छोड़ना नहीं चाहती हैं।

प्रश्न उठता है, कि कच्चे माल के सन्मुख मानव को प्रमुखता दी जा सकती है, या नहीं? मानव श्रेष्ठ है, इस कथन से किसी को आपत्ति न होगी परन्तु इसका भी विरोध नहीं किया जा सकता है कि शक्ति सम्पन्न राष्ट्र जो कि मानवों का समूह ही होते हैं निरीह मानवों का शोषण अपने लाभ के लिये ही करते हैं। इन साम्राज्य लोलुप राष्ट्रों को जन-शक्ति के साथ साथ कच्चे माल की भी युद्ध के समय आवश्यकता पड़ती है और इसी कारण कच्चे माल को मानव की अपेक्षा प्रमुखता दी जाती है। कच्चे माल की दौड़ में ही विश्व में दो महायुद्ध हुए और अब भी जनसमाज को निरन्तर उसका भय रहता है।

इन अविकसित राष्ट्रों के आर्थिक स्तर नियत रहने का एक कारण यह भी है कि वहाँ पर श्रमिकों की आय बहुत ही कम है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैण्डरसन के अनुसार यह सब "मांग व पूर्ति के अन्ध विश्वास के कारण हुआ है।" इसी सन्तुलन के अभाव में इन देशों की व्यापारिक स्थिति भी सुदृढ़ नहीं है। इन बस्तियों का आर्थिक शोषण रोकने का एक मात्र उपाय यह है कि इन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता दे दी जाय। भारत, बर्मा, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया इत्यादि आज स्वतंत्र होकर उन्नति के मार्ग पर निरन्तर बढ़ रहे हैं। आजकल इस समस्या को एक अन्य उपाय से सुलझाने की चेष्टा की जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ इन अविकसित देशों को किसी उन्नत राष्ट्र की संरक्षता में दे देता है। परन्तु इस का फल विपरीत ही निकला है। क्योंकि यह संरक्षक राष्ट्र अविकसित देश को अपनी ही सम्पत्ति मानने लगते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस व्यवस्था में कुछ संशोधन अवश्य किया गया है परन्तु इसका भी कोई विशेष परिणाम नहीं निकलता। इस नवीन व्यवस्था के अनुसार अविकसित प्रदेश को एक संरक्षक समिति के अन्तर्गत दे दिया जाता है। कुछ देश इस व्यवस्था का विरोध करते हैं क्योंकि वह किसी भी मूल्य

पर अपने उपनिवेशों का त्याग नहीं करना चाहते हैं। दक्षिणी-पश्चिमी अफरीका के सम्बन्ध में भी यही हुआ।

नियम के रूप में इस समस्या का सुगम हल यह है कि अविकसित देशों को एक संरक्षक समिति के अन्तर्गत रखा जाय। प्रत्येक देश को मुक्त रूप में माल इत्यादि खरीदने की सुविधा प्राप्त होनी चाहिये। इस प्रकार इन पिछड़े हुए देशों का पूर्ण रूप से आर्थिक विकास हो सकेगा। परन्तु भय है कि यह प्रदेश विदेशी शक्तियों के षड़यन्त्रों का केन्द्र भी बन सकता है जो कि स्थानीय हितों के विरुद्ध ही सिद्ध होगा।

इतिहास पर दृष्टिपात

उन्नत राष्ट्रों के लिये कच्चे माल की समस्या गम्भीर नहीं है, कहने में हिचक ही होती है। जबतक विविध व्यापार प्रणाली जीवित थी यह देश अपने कच्चे माल की कमी अन्य स्थानों से उचित दर पर माल खरीद कर कर लिया करते थे। परन्तु यह व्यवस्था १६३० में समाप्त होगई। इसके भंग होते ही जर्मनी, जापान और इटली ने युद्ध के लिये माल संग्रह करना शुरु कर दिया। समस्या को सुलझाने के लिये अनेकों प्रयत्न किये गये। अनेकों बार चेष्टा की गई कि कच्चे माल का समान वितरण किया जाये परन्तु इसका साम्राज्यवादी देशों द्वारा कड़ा विरोध किया गया। अन्य देशों को भेजे जाने वाले माल पर भी कड़ी निगरानी की जाती थी। इस माल पर चुंगी की दरें भी काफी ऊंची थीं। कच्चे माल को बेचने के लिये एकाधिकार समितियाँ (Cartles) बनाई गईं। इन संस्थाओं का उद्देश्य मुक्त-व्यापार को समाप्त करना, उत्पादन में बाधा डालना और इस प्रकार कीमतें बढ़ाना था। स्वयं अमरीका जहाँ पर कि इस प्रणाली का विरोध कानून द्वारा किया जाता है इस अव्यवस्था को रोकने में असमर्थ रहा। शक्ति-सम्पन्न देश कच्चे माल का सञ्चय कर रहे थे, इसके विपरीत अन्य देशों को उनकी मांग से भी कम माल दिया गया। माल की कीमत अदा करने में भी कठिनाई थी क्योंकि विविध व्यापार प्रणाली के भंग होने पर पौण्ड का किसी अन्य यूरोपीय मुद्रा में परिवर्तित

नहीं किया जा सकता था। अतएव मुद्रा के अभाव में भी माल प्राप्त न होसका और बाध्य होकर जर्मनी इत्यादि देशों ने उपनिवेशों की मांग की। जर्मनी के आर्थिक जादूगर डा० शास्ट ने नवीनतम उपायों से जर्मनी के लिये माल एकत्रित किया।

द्वितीय महायुद्ध का मूलकारण कच्चा माल ही था। महायुद्ध के समाप्त होने पर आशा की जाती थी कि यह समस्या समाप्त हो जायेगी परन्तु युद्ध-पूर्व स्थितियों के समान ही इस का समाधान न किया जा सका। आज भी इस समस्या को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सुलझाने की चेष्टा की जा रही है। स्थाई शन्ति के लिये यह आवश्यक है कि अन्य राष्ट्रों की उचित मांग पर भी विचार किया जाये। पराधीन देशों के श्रमिकों को अंतर्राष्ट्रीय रूप में सहायता देनी चाहिये। देश के व जान-शक्ति के कल्याण के लिये कृषि व औद्योगिक विकास पूर्ण रूप में किया जाये। इस विकास के साथ साथ यह आवश्यक है कि उनके निर्यात में कोई कमी नहीं रहे अन्यथा आर्थिक ढांचा भंग हो जाने का भय रहता है। दूसरे शब्दों में प्राथमिक माल अथवा कच्चे माल की उपज पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

कच्चे माल की कीमतें स्थिर न रहने के कारण भी आर्थिक ढांचे पर गम्भीर रूप में असर पड़ता है। आज कच्चे माल की कीमतें केवल इस लिये ऊंची हैं कि साम्राज्य—लोलुप राष्ट्र तीसरे महायुद्ध के स्वप्न देख रहे हैं। यदि तीसरा महायुद्ध नहीं हुआ जिसकी कि सम्भावना है तो कच्चे माल की कीमतें काफी गिर जायेंगी। ब्रिटेन प्रभृति देश डालर सुलभ न होने के कारण इस समस्या से काफी चिन्तित हैं। जापान में जीवन—यापन का खर्च इसलिये बढ़ गया है कि चीन ने उसे कच्चा माल देना बन्द कर दिया है।

गत मार्च-अप्रैल में कई समितियों का निर्माण कच्चे माल के वितरण के लिये किया गया था। अबतक बनाई गई ७ समितियों में ब्रिटेन, फ्रांस व अमरीका ही प्रमुख सहयोगी हैं। अभी हाल हीमें कच्चे माल की समस्या के समाधान के लिये एक राष्ट्र मण्डलीय सम्मेलन

बुलाया गया था। ब्रिटेन ने उनपर अन्तर्राष्ट्रीय निमन्त्रण की मांग की थी। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड इत्यादि देशों ने मुक्त व्यापार की मांग की थी। वास्तविक रूप में यह मूलभेद उत्पादक और उपभोक्ता देशों के स्वार्थों का संघर्ष है। स्वयं राष्ट्रमण्डल के देशों में कच्चे माल के संग्रह और पुनर्शस्त्रीकरण को लेकर मतभेद है। कच्चे माल के उत्पादक देश आज कमी का आर्थिक रूप में लाभ उठाना चाहते हैं। इसी मतभेद पर दुःखी होकर मजदूर दलीय मन्त्री श्री स्टोक्स ने कहा था कि, "इस समस्या में हम सब की रक्षा निहित है।" ब्रिटेन आज भी जबकि चर्चिल की सरकार पदारूढ़ है इस समस्या को सुलझाने पर ज़ोर दे रहा है।

इन राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त भी कच्चे माल की समस्य आर्थिक संकट उत्पन्न कर रही है। क्योंकि गत ६ वर्षों में रुई व रबड़ की मांग से अधिक निरन्तर रूप में उत्पादन किया गया है। विशेषकर जबसे अमरीका ने यह घोषणा की है कि वह आगामी वर्ष कच्चे माल का संग्रह नहीं करेगा, एक आर्थिक संकट की सम्भावना उत्पन्न कर दी है। निश्चित रूप में केवल इतना कहा जासकता है कि इस योजना का कच्चे माल की कीमतों पर गहरा असर पड़ेगा।

कच्चे माल की समस्या पर विचार करते हुए हमें दो बातों पर ध्यान देना होगा। इनमें से पहली के सम्बन्ध में श्री स्टर्न ने गत मई के 'बैंकर' में लिखा था कि यह एक प्रारम्भिक मतभेद है। गत वर्षों में कच्चे माल की कमी बढ़ती ही गई है। कोयला, गंधक, कच्चा लोहा, ऊन और जस्त में तो कमी स्पष्ट अनुभव की जाती है। टिन का उत्पादन मांग के अनुसार नहीं बढ़ सका है अथवा यह कहा जा सकता है कि उसके उत्पादन में कुछ प्रतिशत ही उन्नति हुई है। श्री स्टर्न द्वारा तैयार की गई तालिका से स्थिति और भी स्पष्ट हो जायेगी। इसमें कच्चे माल व औद्योगिक माल के आंकड़े दिये गये हैं। इन आंकड़ों में रूस को छोड़ कर समस्त विश्व का उत्पादन सम्मिलित है।

सुगमता की दृष्टि से १६३७-३८ को प्रारम्भिक वर्ष मानकर उसका उत्पादन १०० माना गया है।

१६३७—३८=१००

	१६३७	१६३८	१६४६	१६५०
औद्योगिक माल व खनिज	१०४	६६	१४२	१६०
कच्चा माल	१०५	६५	१२४	१३४

तालिका को देखने से स्पष्ट है कि कच्चे माल के उत्पादन में विशेष उन्नति नहीं हुई है।

श्री स्टर्न के अनुसार कच्चे माल की कमी का दूसरा कारण 'कृत्रिम कमी' है। इसे उत्पादन पर नियन्त्रण आदि लगा कर प्रस्तुत कियागया है। उदाहरण के रूप में रुई और टिन हैं। साथ ही अमरीका की संग्रह योजना व पुनर्शस्त्रीकरण का रबड़, तांबा, अल्म्यूनियम, निकल, इत्यादि के उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इतना अवश्य सत्य है कि यदि मांग व पूर्ति की समस्या सुलझ भी गई तब भी अनेकों कठिनाईयाँ रह सकती हैं इस समस्या का एक मात्र हल दीर्घ कालीन योजना पर निर्भर है जिस में उत्पादक व उपभोक्ता देशों का सहयोग आवश्यक है। दूसरे साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों द्वारा भी इस समस्या का उचित हल निकाला जा सकता है।

(श्री नीरस योगी)

धर्म ही राजनैतिक संघर्षों का कारण है

आज विश्व में राजनैतिक संघर्षों का बोल बाला है। पृथ्वी के नीचे राज्यों में, एक दूसरे के विरुद्ध, षडयन्त्रों का भूकम्प चल रहा है। चारों ओर अशान्ति और भय का साम्राज्य है। सम्पूर्ण भूमण्डल पर चिन्ता के काले बादल छाये हुए हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए नाना प्रकार के उपायों का अवलम्बन किया जा रहा है, परन्तु वे दिन प्रति दिन जटिलतर होती जा रही हैं। देशों का राजनैतिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई है। इस संघ के आधीन अनेक महत्त्वपूर्ण संगठन हैं, जिनमें सयुक्तराष्ट्र-शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति समिति, अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम सघ, विश्व-स्वास्थ्य- संघ मुख्य हैं। विश्व की शान्ति और उन्नति के लिए संसार के बड़े-बड़े लोगों की सभाएँ होती हैं, लम्बे-चौड़े भाषण दिये जाते हैं, समझौते होते हैं, परन्तु ये और अन्य सभी उपाय निष्फल सिद्ध हो रहे हैं—मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों - ज्यों दवा की गई।

संसार में शान्ति की स्थापना के लिए किये गये प्रयत्न सफल क्यों नहीं हो सके, युग-युगों से विपन्न और त्रस्त मानव एक बार भी सुरक्षा और निर्भयता की साँस क्यों नहीं ले सका, यह प्रश्न है जिसका उत्तर समय की सबसे बड़ी माँग है। अब तक की असफलताओं का कारण इन राजनैतिक संघर्षों के मूल कारण का न समझना है। चिकित्सा से पहले रोग का निदान आवश्यक है। इन संघर्षों के अनेक कारण समय-समय पर उपस्थित किये गये। कभी शस्त्रीकरण, कभी पूँजीवाद, कभी अविद्या, अज्ञान और निःशस्त्रीकरण और समाजवाद और शिक्षा प्रसार में विश्व शान्ति के सपने देखे गये,

परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। राजनैतिक संघर्षों का मूल कारण धर्म है और जब तक धर्म की समस्या हल नहीं होगी, तब तक शान्ति की आशा शशश्रृंग के समान दुराशामात्र रहेगी।

मानव आरम्भ ही से संघर्ष-प्रिय रहा है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया और उसके अपनत्व की सीमा बढ़ती गई, उसके संघर्ष का क्षेत्र भी बदलता गया। आरम्भ में मनुष्य अपने पूर्वज की सन्तति को—रक्त के संबंधियों को अपना समझता था, तब यह संघर्ष दूसरे वंश के लोगों से होता था। कालान्तर में उसके पूर्वज को अपना पूर्वज मानने वाले लोग—उसके धर्म में विश्वास करने वाले लोग भी अपने समझे जाने लगे और यह संघर्ष अन्य धर्मावलम्बियों से होने लगा। कहना न होगा, कि धर्म परिवर्तन का अर्थ केवल मान्यताओं का परिवर्तन ही नहीं है, उसके साथ सम्पूर्ण परम्पराएँ बदल जाती हैं। इस्लाम स्वीकार करने पर ईश्वर के स्वरूप, उसकी उपासना के ढंग, उसके उपदेश और तीर्थ स्थान विषयक धारणाओं में ही उलट फेर नहीं होता; उसके साथ हमारा सम्बन्ध उन पूर्व पुरुषाओं की शृंखला से जुड़ जाता है जो आज के मुसलमान पर आकर समाप्त होती है। उनके पूर्वज हमारे पूर्वज हो जाते हैं, हम उनके बन जाते हैं। इस प्रकार धर्म देश-काल के बन्धनों को तोड़कर समान विश्वास वाले लोगों में एकता उत्पन्न करता है। एक धर्म के मानने वाले परस्पर पारिवारिक घनिष्ठता और समीपता का अनुभव करते हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार में जितनी राजनैतिक हलचलें हुई हैं, जितने युद्ध रचे गये हैं, जितना रक्त पात हुआ है, उन सब का कारण धर्म रहा है। भारत के प्राचीन कथा-शास्त्र देवता और दानवों के युद्ध वर्णन से रंगे पड़े हैं। इसका कारण क्या था? धार्मिक भिन्नता तिब्बत के रहने वाले देवता और पश्चिम दिशा में बैक्ट्रीया और असीरिया के राक्षस और असुर कहलाने वाले लोग भिन्न धर्मों के मानने वाले थे। दोनों के राज्यों में निरन्तर संघर्ष चलता रहता था। आर्यों ने जितनी विजय कीं वे सब धर्म प्रसार से

संबन्धित थीं। वैदिक ध्येय वाक्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' में धार्मिक आवेश निहित था। लंका-विजय और वहां की राज्य-क्राँति का कारण एक मात्र धर्म था। वैदिक धर्म के पृष्ठ-पोषक श्री रामचन्द्र जी महाराज के लिए असह्य था कि उनकी मातृभूमि के समीप राक्षसी धर्म पल्लवित हो। परन्तु युद्ध का कोई कारण विद्यमान न था। श्री रामचन्द्र जी महाराज को विवश हो कर कारण उत्पन्न करना पड़ा। वह वेष बदल कर, कदाचित कोई उपद्रव खड़ा करने के लिए, रावण राज्य पंचवटी में जा प्रविष्ट हुए और रावण की सहोदरा शूर्पणखा को विरूप कर रावण को युद्ध के लिए उत्तेजित किया। विभीषण ने वैदिक धर्म के झंडे के नीचे आकर अपनी जान बचाई।

पाश्चात्य देशों में धर्म के कारण जो राजनैतिक युद्ध हुए, जो भीषण मारकाट हुई उसके स्मरण मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अमरीका में पहुंचे विभिन्न देशों के ईसाइयोंने मिल कर वहां के मूल निवासियों के साथ क्या नहीं किया? यूरोप की भूमि कभी प्रोटेस्टेंट कभी रोमन कैथोलिकों के रक्त से कितनी बार नहीं रंगी गई। क्रूसेडस-सलीबी जंगें, जिनसे सारा यूरोप थर्रा उठा था— कोरे धार्मिक युध्द थे। इग्लैंड की रक्त हीन राज्यक्रांति का एक मात्र कारण धर्म था। इग्लैंड निवासी प्रोटेस्टेंट, जिनके हाथ में शक्ति थी, यह नहीं देख सके कि उनके राज्यसिंहासन पर अन्य धर्म का मानने वाला व्यक्ति बैठे। उन्होंने भीषण आन्दोलन किया और विलियम को सिंहासन पर बैठा दिया। एक उदाहरण और लीजिए। सम्राट कॉन्सटैण्टाइन के समय में तमाम रोम एकता के सूत्र में बंधा था। बाद में जब ईसाई धर्म के दो टुकड़े हुए तो रोम और कुस्तुन्तुनिया के राज्य भी एक दूसरे से प्रथक हो गए। पश्चिमी रोमन साम्राज्य में पोप की तूती बोलने बोलने लगी, 'पूर्वी रोमन साम्राज्य आर्थोडाक्स चर्च कहलाने लगा। धार्मिक भिन्नता के कारण दोनों न केवल प्रथक हुए अपितु सदियों तक परस्पर लड़ते रहे। कहानी बढ़ती है। आर्थोडाक्स चर्च का प्रधान केन्द्र 'सेण्टसोफिया' नामक विशाल गिरजा था। पन्द्रहवीं शताब्दी में तुर्कों ने पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त कर दिया। सेण्ट-सोफिया एक मस्जिद में परिणत कर दी गई। इस पवित्र सेण्ट-

सोफिया को हस्तगत करने के लिए रूस के ज़ारों ने उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कुस्तुन्तुनिया पर भारी तैयारी के साथ अनेक आक्रमण किये। रूस के ज़ारों को यह असह्य था कि उनके धर्म का इतना बड़ा गिरजा मस्जिद बना रहे और उस पर इस्लामी झंडा फहरावे। ये आक्रमण उस समय तक जारी रहे हैं जब तक सन १९१४ के महायुध्द में ज़ारों की सत्ता ही समाप्त नहीं हो गये। वर्तमान काल की घटनाएं भी इसी तथ्य की पुष्टी करती हैं। भारत के कितने ही मुसलमान पाकिस्तान की मांग पेश करते हैं। क्यों करते हैं? इस लिए कि केवल मुसलमानों का एक अपना राज्य हो, जहाँ कुरान द्वारा निर्दिष्ट पद्धति पर शासन हो, जिससे अन्य इस्लामी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबन्ध स्थापित कर एक सुदृढ़, शक्तिशाली इस्लामी गुट का निर्माण किया जा सके– ऐसे गुट का जो समय पड़ने पर भिन्न धर्म वाले राष्ट्रों को कुचल सके और जो इस्लाम का प्रसार कर सके। और अंग्रेज हिन्दुओं के विरूद्ध उनका पक्ष लेते दृष्टिगोचर होते हैं, क्यों? इसलिए कि ईसाईमत की जितनी समता इस्लाम से है, उतनी हिन्दू धर्म से नहीं। अफ्रीका में ईसा के अनुयायियों और अन्य धर्म के लोगों में कितने दिनों से संघर्ष चला आता है, अन्य धर्म के लोगों पर जितना अत्याचार हो रहा है, उसे रोकने के लिए किस ईसाई धर्मावलम्बी ने पग उठाया है?

वास्तविक बात यही है कि राजनैतिक घटनाचक्र का प्रेरक सदा से धर्म रहा है और रहेगा। इहलोक और परलोक दोनों के सुख का ठेका लेने वाले धर्म के हाथों में मनुष्य का कठपुतली की तरह नाचना स्वाभाविक है। अतः इन धर्मों के रहते संसार के राजनैतिक संघर्षों का अन्त होना अत्यन्त दुरूह है। जितने धर्म बने हैं, वे विशेष देश और विशेष काल के सम्बन्ध रखते हैं। देश और काल में अन्तर होने पर वे एक समस्या खड़ी करके देते है, स्वयं समस्या बन जाते हैं। इस लिए किसी धर्म के सिद्धान्तों पर विश्व के समस्त लोग एक मत हो सकें, यह असम्भव है। और, मत भेद रखने वालों के लिए धर्म में कोई स्थान नहीं होता— हो नहीं सकता। यदि विश्वास और अविश्वास रखने वालों को एक श्रेणी में रख दिया

गया तो विश्वास रखने का कुछ अर्थ ही न हुआ। यही कारण है कि अब तक के सभी धर्म किसी न किसी अंश में मानव समाज में विरक्ति, वैमनस्य और घृणा का बीज वपन करते रहे है और करते रहेंगे।

धर्मों के इन अवगुणों के कारण सारा संसार अशांत है। उनके चंगुल से मानव समाज का उद्धार करना समय की सबसे बड़ी माँग है। तब हमें किधर जाना है? दो मार्ग हैं, या तो धर्म को पूर्ण रूप से देश निकाला दे दिया जाय या एक नया लचीला धर्म समाज को दिया जाय। धर्म हीन समाज की रचना तो कोरी काल्पनिक चीज है, क्योंकि यदि केवल 'धर्म' शब्द से द्वेष न हो तो यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक अवस्था में मनुष्य का कोई न कोइ धर्म अवश्य रहना है जो लोग कोई धर्म नहीं मानते, उनके भी कुछ सिद्धान्त होते हैं, कुछ आदर्श होते' हैं जिनके प्रकाश में वे अपना मार्ग तय करते हैं। वही उनका धर्म है। समस्त धर्मों का बहिष्कार कर भी रूस धर्म के पंजे से कहां बचा? उसका भी एक अनीश्वरवादी धर्म बना जो 'साम्यवाद' कहलाता है। इस धर्म के प्रसार के लिए जितना उत्साह उसने दिखाया है, उतना संप्रति किसी भी धर्म के मानने वाले राज्य ने नहीं दिखाया। तब दूसरा मार्ग ही खुला रह जाता है। उसी पर हमें बढ़ना। हमें एक लचीले मानव-धर्म की स्थापना करनी है। हिन्दुस्तानी इस कार्य को करेंगे। भूतकाल में हिन्दू-धर्म के रूप में—वैदिक धर्म के रूप में नहीं—वे एक ऐसे उदार धर्म की स्थापना का सफल प्रयोग कर भी चुके हैं। हिन्दूधर्म की लचक की कल्पना केवल इस बात से की जा सकती है कि उसकी न कोई परिभाषा है, न लक्षण। ईश्वरवादी-अनीश्वरवादी, वेदमार्गी, वाम-मार्गी, आमिष भोजी-निरामिष भोजी, मूर्ति पूजक, मूर्ति भंजक सभी हिन्दू धर्म के अन्तर्गत रहे हैं। वह एक ऐसा उद्यान है जिसमें हर प्रकार के बेल बूटे खिले हुए हैं। सहस्त्रों हूण और शक आक्रमणकारी के रूप में हिन्दुस्तान में आये और सब हिन्दूधर्म में समा गये। जिस मनुष्य ने देश की सीमा में पग रखा वही इस विशाल धर्म संघ का सदस्य बन गया। महाराज तिलक ने ठीक ही लिखा है—

"असिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता, यस्य भारत भूमिका।
पितृभूः पुण्य भूश्चैव, सर्वे हिन्दुरिति स्मृतः ॥"

—लोकमान्य तिलक

अर्थात् "समुद्रों से घिरा, सिन्धु के उद्गम तक जो देश है वह भारत है। यह भूमि जिसकी पितृभूमि है या जो इसे पुण्य भूमि समझता है, वह हिन्दू है।" यदि एक देश के लोगों के लिए एक धर्म बन सकता है, तो एक विश्व के लोगों के लिए एक धर्म क्यों नहीं बन सकता ? ऐसे धर्म की स्थापना अवश्य होगी।

नागरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य हमारे दृष्टिकोण को विस्तृत बनाना है। हम जीवन की संकुचित गलियों में से निकल कर प्रशस्त राजपथ पर आवें, विशाल हृदय बनें। आज हम विश्व के नागरिक हैं, विज्ञान के आविष्कारों ने समय और दूरी को मिटा दिया है। हमें ऐसे धर्म को अपनाने की आवश्यकता है जिसकी परिधि में संपूर्ण विश्व आराम से सो सके, जो प्रत्येक मानव का हाथ पकड़ कर ले चले, हमें समझें, विश्व एक घड़ी के समान हैं जिसमें विभिन्न आकार, स्वभाव विचार और रुचि के लोग भिन्न-भिन्न आकार के अलग-अलग काम करने वाले पुरजों की तरह हैं। यह विषमता ही महान समता की रक्षा करती है। विश्ववंद्य महात्मा गाँधी जिनकी प्रार्थना में वेद, गीता, गुरुग्रन्थ साहब, कुरान, बाईबिल, सभी का सम्मिश्रण रहता था, इसी धर्म का प्रसार करना चाहते थे। विश्व शान्ति के अग्रदूत पं० जवाहरलाल नेहरू के धर्म विद्रोह में इसी विमल धर्म की सुनहली सांसें हैं। जिस दिन मनुष्य इस धर्म को अपना लेगा उस दिन राजनैतिक संघर्षों से छुटकारा मिलेगा और संसार को नव प्रभात के दर्शन होंगे।

(पं० हरिदत्त शर्मा एम० ए०)

कला और राजनीति

कला का उद्देश्य है ···· मनुष्य के लिए, धरती पर स्वर्ग की सृष्टि रचना। राजनीति का कार्य है····· मनुष्य की सामाजिक स्थिति को सुचारु बनी रहने देने के लिए, अपनी दंडनीति द्वारा व्यक्ति पर नियंत्रण करना। राजनीति अपनी सुरक्षा के लिए कला और कलाकार को अपने विपरीत न रहने दे······यह बात तो उसके लिए स्वाभाविक है, परन्तु कला की सृजना तो समाज को सत्य, शिव और सुन्दर बनाने के लिए है, जब कि राजनीति तो अपने विधान पर समाज को चलने के लिए विवश करने वाली एक शक्ति मात्र है······इसलिए कला का अस्तित्व और जीवन अधिक महत्वपूर्ण और रक्षणीय है, राजनीति की अपेक्षा।

कला-पूरित युग के पश्चात्, जब मनुष्य और उसके समाज का ध्यान आत्म-दर्शन, वा कहो आनन्द और सुख से हटकर, उसकी दृष्टि केवल जड़ जग में उलझ गई, तब से उसके जीवन में स्थूल-पदार्थ और भौतिक-सम्पदा ही सर्वस्व हो गई। यही कारण है कि आज का साधारण समाज······रस, काव्य, संगीत और सरस-शाश्वत-साहित्य से विमुख हो, चेतना से जड़वाद यानी Historical Materialism (ऐतिहासिक-भौतिकवाद), Dialectical Materialism (द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद) की ओर मुड़ रहा है। जड़वाद, क्योंकि चेतन आत्मा की रस सृष्टि को समझ नहीं सकता, इसी कारण वह कला को केवल अपनी विजय की रक्षा का एक अस्त्र बनाने के अतिरिक्त, रस सृष्टि को मुख्य न मान, गौण रूप में उसे स्वीकार कर रहा है। यही वह आधार है—जिसके सहारे मार्क्सवादी वा प्रगतिशील कहलाने वाला आदमी, जिसके जीवन में केवल रोटी, कपड़ा और सांसारिक ऐश्वर्य

उपभोग मात्र की चाह है, अपनी राजनीतिक स्वार्थपूर्ति के लिए कला को, राजनीति की आधीनता में लाने के लिए दन्द-फंदों की मायावी सृष्टि रच रहा है।

सामान्य दृष्टि से देखने पर......कला और राजनीति दोनों का ही उद्देश्य मानव-समाज को समृद्ध बनाना दिखाई देता है, पर··· ···सिद्धान्ततः और परिणाम स्वरूप दोनों में आश्चर्यजनक अन्तर है। कला यदि आग्रहात्मक, विनम्र, विनीत निवेदन है, तो राजनीति शासितों के लिए अनिवार्य-पालनीय दंडमय आदेश है। दूसरे शब्दों में······ कला यदि सद्यः सहृदयता की सौम्य प्रतिमा है, तो राजनीति बलात् विकराल-काल की क्रूर मूर्ति है। कला और राजनीति के जब विचार और निश्चयपूर्ति के ढंगों में विपरीत अन्तर है, तब निश्चय ही दोनों के उद्देश्यों के एक होने पर भी परिणामों में भेद का रहना स्वाभाविक है।

कला की निष्पत्ति—स्फटिक-सम कमनीय-पावन मानस अन्तश्चेतना से है, और राजनीति की उत्पत्ति······रक्तप्लावित घटनाचक्र और भौतिक संघर्षमयी संयोजना से है। कला का क्षेत्र विशेषतः आभ्यान्तरिक और सामान्यतया बाह्य भी है, और राजनीति का व्यापार सीमित है। जड़ जगत् व राज्य की सीमा तक कला का राज्य जितना विराट् और विशाल है, राजनीति का घेरा उतना ही लघु और संकुचित है। कला-कल्पना को, यदि राजनीति मूर्त रूप दे तो उस समाज की वैभवशालीनता और श्रेष्ठता की बात ही क्या? राजनीति यदि कला को अपनी पुष्टि का साधन मात्र बना उसको अपने पंजों में दबोच रखने की चेष्टा करती है, तो इसका अभिप्राय है······राजनीति अपने शासनाधिकृत राज्य में केवल जड़ शान्ति, यानी शवसम मौन परिस्थिति के आह्वान में ही जीवन् और अपना कल्याण साधन करती है।

मनुष्य जन्म, निसर्गतः एक सर्वोच्च कल्पना और घटना है, जिसका कर्मक्षेत्र केवल रोटी और शरीर-पोषण तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य की देह क्योंकि पार्थिव है, इसलिए वह भौतिक पदार्थों की

उपेक्षा करके सचमुच जीवित नहीं रह सकता, परन्तु उसकी पार्थिव देह में चैतन्य आत्मा है ·· जिसके सम्बल पर उसकी बाह्य क्रिया, सक्रिय है। उस अन्ततः ज्योति से विमुख होकर, न वह व्यष्टि रूप में और न ही समष्टि · किसी भी स्वरूप में सुखी और आनन्दित रह सकता है। इसीलिए भारतीय दर्शनकारों ने··· पूर्वी साहित्य में कला को एक दिव्य-कृति वा आदर्श रचना के रूप में सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित कर उसे मानव जीवन की श्रेष्ठ निधि बताया है। पाश्चात्य विचारक, जिनकी गति प्रायः केवल जड़ जगत् तक ही सीमित रही है, मार्क्स आदि पंडितों ने ···· साहित्य का आधार अन्ततः आर्थिक मान कर, "रोटीवाद" में कला का यथार्थ रूप, वा कलाकार की प्रगति को सैद्धान्तिक रूप प्रदान कर, कला की गरिमा को निस्तेज और श्रीहीन लुंठित बना दिया है।

मार्क्स और प्रगतिवादियों की कला वस्तुतः वास्तविक स्वरूप में कला नहीं है ··· प्रोपेगेंडा (प्रचार) मात्र है। कला तो वह है······ जिसके लक्षण भारतीय शास्त्रों, ग्रन्थों में वर्णित हैं। प्रकारान्तर से उन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन अनेकों विदेशी रस कला शास्त्रियों ने, अपनी बेजोड़ कृतियों में पग-पग पर विकसाया और साहित्यिकों, कवियों और कलाकारों ने भी उसे सरसाया है। उन महान् अमर कलाकारों की रचनाओं में दिव्य आभा तभी बिखरी है, जब कि उनकी चेष्टाएं केवल रोटी तक ही सीमित न थीं, राजनीति के नियम बंधन रूपी रोड़े उनकी चाल में बाधा न डाल सके और स्वतन्त्रता से, आत्म दृढ़ता से अपनी स्वभावाभिव्यक्ति को साकार कर पाये। क्या राजनीति के अंकुश की नोंक के नीचे दब कर कोई कला वा कलाकार कभी फल-फूल सकता है ? कला और कलाकार के पनपने के लिए जब कि स्वच्छन्द स्वतन्त्रता और स्वात्मानुभूति प्रकाश की छूट प्रथम शर्त है, कभी नहीं ! कभी नहीं !!

मार्क्सवाद से प्रभावित राजनीति की तो प्रबल अकांक्षा है······ कला और साहित्य, राजनीति के अधीन अपने निष्प्राण ढांचे को बनाये रखें। कला और साहित्य ही केवल नहीं, अपितु मनुष्य और उसके

समाज की हर हलचल, राजनीतिक सुरक्षा में अपने अमूल्य जीवन को खपाये। पर कला यह बात कभी स्वीकार नहीं कर सकती कि उसकी प्रगति में राजनीति कोई बाधा डाले। यह बात अत्यन्त आश्चर्य की है……कहने को मार्क्सवाद, जनता और समाज की मुक्ति का दूत है, परन्तु वह कला और कलाकार की स्वतन्त्र भावधारा पर अपनी अभिकांक्षा तृप्ति की प्रधानता, राजनीति के आधीन उन्हें बना …… क्यों ग्रहण करता है ?

राजनीति, बुभुक्षिता की कभी शान्त न होने वाली एक असीम अतृप्ति है, जिसके कारण मानव और उसके समाज में कभी शान्ति, सुख और आनन्द के क्षण नहीं आ सकते। कला के सहयोग से राजनीति अपने में अपूर्व गुण उत्पन्न कर सकती है, और कलाकार के कमनीय चतुर हाथों से मानव जीवन का रूप रंग निखर सकता है…… यह श्रीहीन और फीका समाज, समृद्ध और आनन्दमय बन सकता है। यह सब तभी सम्भव है……कला, राजनीति के आश्रित न हो और उसकी स्वच्छ अभिलाषा बन्धन-मुक्त हो। कलाकार की आँखों में रूप-सौन्दर्य के स्वप्न और हृदय में परिष्कृत और आतंक रहित निर्भीक भावनाओं की अभिलाषायें मचलती हों, चेहरे पर अभाव की कोई रेखा न चमकती हो, तब वह इस मुमूर्षु धरती और जन-जीवन में अपनी कला द्वारा आनन्दमयी सृष्टि की रचना रच देगा।

(कुमारी निर्मला माथुर)

स्वतन्त्र भारत और उसकी समस्यायें

स्वतंत्रता के पथ में भारत को झाड़ झंकाड़ से घिरे हुए पथ में चलना पड़ा। कितनी साधनाओं और बलिदानों के उपरान्त १५ अगस्त १९४७ के दिवस को भारत को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परन्तु उसे क्या पता था कि आजादी के ये चमकीले वस्त्र उसके शरीर में कांटों के समान चुभने लगेंगे! और जब अनेक समस्यायें कांटे बनकर उसके सम्मुख आई तो वह उन्हें देखकर दंग रह गया—

१ रियासतों की समस्या

भारत के विभाजन से पूर्व ५६२ ऐसी रियासतें थीं जो कि भारत को विष का प्याला पिला सकती थीं। भारत की महान आत्मा सरदार वल्लभ भाई पटेल ने इन रियासतों का विलीनीकरण निम्न प्रकार से करके भारत को खतरे से बचा दिया।

क. छोटी छोटी रियासतों को पास वाले प्रान्तों में मिला दिया गया।

ख. कई कई रियासतों को मिला कर संघ बना दिया गया।

ग. कुछ रियासतों की शासन व्यवस्था को केन्द्रीय सरकार के आधीन कर दिया गया।

घ. बड़ी रियासतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना करदी गई।

२ शरणार्थी - समस्या

भारत-विभाजन के उपरान्त एक करोड़ से अधिक शरणार्थी

भारत में आये। इनके रहने और पालन की समस्या भारत की सरकार के सम्मुख उपस्थित होगई। सरकार ने लगभग इसको हल करने के लिये ३० करोड़ रुपया व्यय कर दिया गया है। इतने पर भी यह समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हो सकी है। सरकार ने अचल सम्पत्ति की हानि को पूर्ण करने का भी भरसक प्रयत्न किया। भारत में आये हुए शरणार्थियों की अचल सम्पत्ति पाकिस्तान में लगभग ४० अरब रुपये की थी और भारत से गये हुए मुसलमानों की सम्पत्ति केवल १० अरब के ही लगभग थी। इसलिये पाकिस्तान इस समस्या को हल करने के लिये कदापि तैयार नहीं इतने पर भी भारतीय सरकार उसको सुलझाने के लिये उपाय सोच रही है।

३ नई सीमाओं की रक्षा

चीन के प्रभाव को तिब्बत में बढ़ता हुआ देखकर नैपाल और बर्मा के सीमान्त देशों में अराजकता के कारण भारत सरकार को बहुत सतर्क रहना पड़ रहा है। आसमान की ओर भी साम्यवादी दूसरे देशों की शक्ति के भरोसे उपद्रव मचा रहे हैं। इन सब बातों को सामने रखते हुए सरकार इस समस्या को सुलझाने का भरसक प्रयत्न कर रही है।

४ अन्न संकट

विभाजन के फलस्वरूप अधिक उपजाऊ भूमि पाकिस्तान में चली गई है, जिसके कारण अन्न संकट भारत को चारों ओर से घेरे खड़ा है। इसका मुकाबला करने के लिये प्रत्येक वर्ष हमारी सरकार करोड़ों रुपयों का अनाज विदेशों से मंगा रही है। इसके अतिरिक्त अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलनों के द्वारा वह अन्न-संकट का सामना कर रही है। अतः आशा है कि भारत शीघ्र ही अन्न में स्वावलम्बी हो जायेगा।

५ शिक्षा-स्वास्थ्य

इसके लिए भारतीय सरकार रचनात्मक कार्य कर रही है।

योजनाओं को पूर्णरूप से कार्यान्वित करा रही है। इसका सम्बन्ध भारत की आर्थिक अवस्था के साथ है। यदि आर्थिक अवस्था अच्छी होती गई तो यह समस्या भी भली भांति सुलझ जावेगी।

६ आर्थिक दशा

स्वावलम्बी न होने तक किसी भी देश की आर्थिक अवस्था ठीक नहीं हो सकती है। कृषि के सम्बन्ध में तो भारतीय सरकार हर प्रकार से प्रयत्नशील है और उद्योगों के बारे में हर प्रान्त में नदियों में बाँध बनाकर बिजली पैदा करने के लिए भरसक प्रयत्न हो रहे हैं। हर प्रकार के यन्त्रों के अविष्कार के अभिप्राय से बड़ी बड़ी रसायन-शालयें खुल चुकी हैं। और शेष योजनाओं को पूर्ण करने की चेष्टा की जा रही है। इसके लिए योजना आयोग की भी स्थापना कर दी गई है।

७ राजनैतिक दशा

[क] देश की अन्तरिक दशा।

[ख] विदेशों के साथ भारत का सम्बन्ध-!

[क] भारत सरकार ने सरदार पटेल के नेतृत्व में कई समस्याओं को सुलझाया है। भारत-विभाजन के उपरान्त कम्युनिस्टोंकी हलचलें खतरनाक सीमा तक पहुंच चुकी थी। हैदराबाद, मद्रास और बंगाल तो उपद्रवों का केन्द्र बने हुए थे। इनको सुधारने के लिए भारत को कठोर नीति का सहारा लेना पड़ा। आकालियों, सोशलिस्टों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ जिस नीति का प्रयोग किया, वह भारत के प्रत्येक नागरिक के सामने है। इस समय भारत में शांति की स्थापना हो चुकी है फिर भी कम्युनिस्टों से सरकार को सतर्क रहने की अवश्यकता है।

[ख] विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति इस समय बहुत विकट है। विश्व में इस समय दो दल बन चुके हैं। एक का नेतृत्व अमेरिका के हाथ में है और दूसरे का रूस के हाथ में। भारत सरकार की नीति

इस समय दोनों में मेल करवाने की है। इसके अलावा भारत ने कई विदेशों में अपने राजदूत भेजकर अपने देश के मान को ऊँचा किया है।

८ साम्प्रदायिकता तथा प्रांतीयता

भारत की यह समस्या नये संविधान के बन जाने से कुछ सुलझ सी गई है और आशा है कि आने वाले समय में कोई भी भेद-भाव न रह सकेगा।

(सम्पादक)

युद्ध अनिवार्य क्यों ?

प्राणिशास्त्रवेत्ताओं ने जब अन्य प्राणियों का अध्ययन आरम्भ किया तो उसके साथ साथ मनुष्य का भी अध्ययन आरम्भ हुआ। डारविन तक पहुँचते पहुंचते यह बात पूर्ण रूप से निश्चित हो गई कि मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह विकास के मार्ग में पड़ा हुआ, किसी विशेष प्रकार के बन्दर का ही रूप है। इस सिद्धान्त ने एक बड़े विचित्र सिद्धान्त को जन्म दिया और वह था 'सरवाइवल ऑव दि फिटेस्ट' जिस के अनुसार वही प्राणी अपने को इस संसार में रख सकता था जो सबसे अधिक जीवन के योग्य हो। योग्यता का अर्थ अन्त में बल के रूप में परिवर्तित हुआ और यह माना जाने लगा कि जो शक्तिशाली है वह निर्बलों को नष्ट कर के संसार में बने रहेंगे। इसको प्रमाणित करने के लिए प्रकृति के जंगली जानवरों का उदाहरण दिया गया जिसके अनुसार शक्तिशाली वनस्पति निर्बल को कुचल कर बढ़ जाते हैं। इस सिद्धान्त का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज ने भी 'स्वतंत्र-प्रतिस्पर्धा' के बल पर मानव उन्नति का मार्ग अपनाया। इस 'स्वतन्त्र-प्रतिस्पर्धा' के मूल में ही व्यक्तिवाद की प्रधानता तथा समाज में निर्बलों को कुचल कर बढ़ने की भावना भी छिपी हुई थी।

इस सिद्धान्त के स्वीकृत होने का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज में संघर्ष और तज्जन्य युद्धों की प्रधानता हो गई। युद्धों तथा संघर्ष को देख कर यह जानते हुए भी कि युद्ध के मूल में 'स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा' तथा उसके कारण उत्पन्न परिस्थितियाँ ही हैं, कुछ विद्वानों, जो एक विशेष व्यवस्था से प्रभावित हो गये थे, युद्ध के नवीन कारणों पर

प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। बहुत विद्वानों ने कह दिया कि युद्ध मानव स्वभाव में भी उसी प्रकार निहित हैं जिस प्रकार अन्य जानवरों में। जर्मनी के विद्वान नित्से महोदय ने संसार की बुराईयों को दूर करने तथा वीरता आदि गुणों की सृष्टि के लिए युद्ध को मानव के लिए अत्यावश्यक तथा कल्याण कर बताया। मनोविज्ञान के विद्वानों के अनुसार भी जंगली जानवरों के संस्कार मनुष्य के मस्तिष्क में होने के कारण युद्ध की प्रेरणा देने वाले प्रमाणित हुए।

यदि विचार किया जाय कि इन विद्वानों ने ऐसा क्यों कहा तो हमें यही कहना पड़ेगा कि उनकी परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा कहने को बाध्य किया ? यह सत्य है कि कोई भी विचार परिस्थितियों की उपज होता है। बात यह थी कि पश्चिम में पूंजीवादी सभ्यता सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में ही आनी आरम्भ हो गई थी। पूंजीवाद के मूल में 'स्वतन्त्र व्यक्तिगत स्पर्धा' को उचित नियम के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। इस नियम के अनुसार जनता की बड़ी संख्या को तो नहीं पर शासक वर्ग की एक बड़ी संख्या को अवश्य बहुत लाभ था। पूंजीवाद पहले व्यापार के रूप में आया। व्यापार—बाजार के लिए संघर्ष अनिवार्य था। भिन्न-भिन्न देशों को बाजार बनाने के लिए भिन्न-भिन्न व्यापारियों में संघर्ष अनिवार्य था। पहले एक देश के व्यापारियों में भी संघर्ष रहा जैसे ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने बहुत समय तक इंग्लैंड के व्यापारियों को भारत तथा चीन आदि में व्यापार नहीं करने दिया। इंग्लैंड में जब सरकार पर प्रभाव डाला गया तब अन्य लोगों को भी व्यापार करने की आज्ञा मिल सकी।

यह संघर्ष जो केवल एक देश के व्यापारियों में ही था दूसरे देश के व्यापारियों से स्पर्धा के कारण दब गया और आवश्यकता के अनुसार राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। सबसे पहले राष्ट्रीयता की भावना ब्रिटेन में १५८८ ई० में एलिजाबेथ के काल में लक्षित हुई जिस समय स्पेन के आरमेडा का विरोध करना था। यह पूंजीवादी सभ्यता की सामन्तवादी श्रद्धा तथा धर्म प्रधान सभ्यता पर बौद्धिक विजय थी। इसके पश्चात् तो पूंजीवाद के विकास के साथ हालैंड, अमरीका, फ्रांस

तथा स्पेन में राष्ट्रीयता प्रधान होती गई। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त होते-होते वह संसार के सभी देशों में परिव्याप्त हो गई।

पूंजीवाद का भी धीरे धीरे विकास हो रहा था। पहले व्यापार की प्रधानता रही फिर बैंकों की हुई, तत्पश्चात् उद्योगों की प्रधानता हो गई। उद्योगों की प्रधानता के साथ एक देश में इसका रहना असम्भव हो गया। पूंजीवाद में व्यापार, बैंक तथा उद्योग साथ साथ चलते हैं। जब तक व्यापार की प्रधानता रहती है तब तक संघर्ष कुछ कम रहता है। जैसा कि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में रहा। बैंकों की स्थापना के साथ साधनों पर अधिकार करने की लालसा तीव्र होने से संघर्ष कुछ और तीव्र होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में इसकी प्रधानता रही। इसके साथ ही बड़े बड़े उद्योगों का विकास हुआ जिससे श्रम का शोषण अधिक होने लगा तथा पक्के माल की खपत के लिए बाजारों पर एकाधिकार की आवश्यकता बढ़ने लगी। इस तरह हम देखते हैं कि पूंजीवाद किसी एक देश में नहीं रह सकता। यह एक अन्तर्राष्ट्रीयवाद है जो एक स्थान पर बन्द करके नहीं रक्खा जा सकता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है युद्ध को स्वाभाव बद्ध मानने वाले विद्वानों ने तथा आवश्यक कल्याणकर समझने वालों ने संघर्ष की अनिवार्यता को देख कर ऐसा कह दिया था। एक बच्चा बचपन से ही अत्यन्त लड़ाकू नहीं होता उसकी परिस्थितियाँ ही उसको लड़ाकू बनाती हैं। यह देखा जाता है कि माता पिता जिस प्रकार के होते हैं उसी प्रकार के स्वभाव आदि के बच्चे भी हो जाते हैं। यदि उनमें अन्तर पड़ता है तो कुछ तो उत्तराधिकार में पाये संस्कारों के कारण तथा कुछ वातावरण के कारण। मनुष्य के जीवन में वातावरण का बहुत अधिक हाथ है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुष्य स्वभावतः युद्ध प्रिय नहीं है, प्रत्युत परिस्थितिवश वैसा बना हुआ है। यदि यह मान लिया जाय कि कुछ लोग प्रबल संस्कारों के कारण वैसे हों भी तो यह नहीं माना जा सकता कि उन कुछ व्यक्तियों के कारण युद्ध अनिवार्य हो जायेगा क्योंकि युद्ध एक पूर्ण सामाजिक घटना है,

केवल व्यक्ति के ऊपर इसको आधारित नहीं किया जा सकता। यदि कुछ ही व्यक्ति ऐसे हों जो युयुत्सु प्रकृति के कहे जा सकते हैं तो उनको वातावरण के प्रभाव शिक्षा आदि के प्रभाव से उस प्रवृत्ति से हटाया जा सकता है। प्रत्येक देश की शासन व्यवस्था ही यह प्रमाणित करती है कि व्यक्ति की युयुत्सु प्रकृति तब तक कुछ नहीं कर सकती जब तक समाज उसको अवसर न दे।

यह देखा जा चुका है कि युद्ध में एक व्यक्ति के स्वभाव को विशेष महत्व नहीं रखता। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जा चुका है कि पूंजीवाद के आगमन ने ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं कि युद्ध अनिवार्य से हो गये और उनके पक्ष में तरह तरह के तर्क रक्खे जाने लगे। प्रश्न यह होता है कि क्या युद्ध का कारण पूंजीवाद की केवल प्रतिस्पर्द्धा ही है अथवा और कोई अन्य बात ?

कार्ल मार्क्स तथा ऐंगिल्स के अनुसार युद्ध का एक दूसरा ही महान कारण है। वह कारण कि पूंजीवाद संसार का अध्ययन करके नहीं बनाया गया है प्रत्युत मानव समाज के सम्पूर्ण इतिहास के अध्ययन के पश्चात् निकाला गया है जिसको कोई भी यथार्थवादी अस्वीकार नहीं कर सकता है। उनका कथन है कि समाज में द्वन्द्व है अर्थात् वर्ग संघर्ष है। एक बार आदिम साम्यवाद था उसके पश्चात् आर्थिक कारणों से उसमें वर्ग बन गये और वे वर्ग अपने स्वार्थों के लिए लड़ते आ रहे हैं। वे समाज में दो ही वर्ग मानते हैं एक शोषक तथा दूसरा शोषित। उनका कथन यह है कि जिस समय व्यक्ति अपने भरण पोषण से अतिरिक्त सामग्री अपने आर्थिक साधनों द्वारा उत्पन्न करने में सक्षम हुआ उसी समय से समाज में दो वर्ग हो गये। एक वर्ग श्रम करने वाला तथा दूसरा उस श्रम का उपभोग करने वाला हुआ। इस प्रकार वर्ग विभाजन हो गया। इस वर्ग विभाजन के अनुसार ही जैसी परिस्थिति बनती गई वैसे ही विचार भी मानव समाज के बनते गये। सभ्यता के भिन्न-भिन्न युगों में यह संघर्ष शोषण के आधार पर घटता बढ़ता रहा। पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण के साधन बढ़ते जाने से, यह संघर्ष बहुत तीव्र हो गया है। दूसरी बात यह है कि

इसके कारण एक ऐसा श्रम जीवियों का वर्ग उत्पन्न हो गया है जो केवल श्रम ही पर आधारित हैं। ये श्रम पर आधारित रहने वाले शोषण की तीव्रता के कारण बढ़ते चले जा रहे हैं तथा एक साथ कार्य करने के कारण संगठित भी होते चले जा रहे हैं। पूँजीवाद यह विशेष वर्ग उत्पन्न करके अपने पैरों में ही कुल्हाड़ा मारा है। पूँजीवाद इसके बिना रह नहीं सकता। अतः यह सम्भव नहीं कि इस वर्ग को बिना उत्पन्न किए ही यह व्यवस्था चल जाय।

शोषित वर्ग में दो भाग हैं एक मजदूर तथा दूसरा किसान। किसान को पहले नेता सदा ही शोषक वर्ग से ही मिला करता था, क्योंकि किसान संगठन न होने के कारण नेतृत्व नहीं कर सकता था अब उसे नेतृत्व के लिए मजदूर वर्ग मिल गया है जो शक्ति में आने पर उसके स्वार्थों को भी हल कर सकेगा। आज यही कारण है कि किसी देश में शान्ति नहीं है। क्रान्ति की बातें सर्वत्र सुनाई देरही हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि जिस प्रकार पूँजीवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय वाद है उसी प्रकार साम्यवाद भी। यह निश्चित है कि जहाँ कहीं पूंजीवाद होगा वहां साम्यवाद अवश्य आ जायेगा।

जिस प्रकार पूँजीवाद का विकास ब्रिटेन से हुआ उसी प्रकार साम्यवाद का विकास जर्मनी से हुआ। जर्मनी में ही ऐसी परिस्थिति पहले उत्पन्न हुई कि कार्ल मार्क्स और ऐंगिल्स जैसे विद्वान पुरुष उत्पन्न हो सके। ब्रिटेन में भी 'लेबर पार्टी' की प्रभुता का भी रहस्य इसी वर्ग के निर्माण में ही है। यह वर्ग फिर भी साम्यवाद की स्थापना करने में असमर्थ इसलिए था कि अन्य देशों में श्रमिकों के शोषण से वह भी पल रहा था। सबसे प्रथम साम्यवाद के आधार पर सरकार रूस में ही बन सकी। क्योंकि वहां के आन्दोलन का नेतृत्व मजदूरों के हाथ में चला गया। रूस के पश्चात् इस वाद की गति और तीव्र हुई और यह यूरोप के कई देशों में भी स्वीकृत हुआ तथा चीन जैसे महान देश में भी इसको समानता मिली। इसकी बढ़ती हुई गति ही यह प्रत्यक्ष करती है कि पूँजीवाद की तरह से वह भी किसी एक देश में बन्द नहीं रह सकता।

पूँजीवाद तथा साम्यवाद के संघर्ष को देखते हुए यह कहने को बाध्य होना पड़ा है कि ये द्वन्द्व एक साथ नहीं चल सकते। जिस प्रकार सत्य-असत्य, प्रकाश-अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार इन दोनों का साथ रहना, इनके बीच समझौता होना असम्भव है। इस परिणाम पर पहुँचने का आधार आधुनिक घटनायें हैं। कोरिया का युद्ध इस प्रकार के समझौते पर प्रकाश डालने में बहुत सहायक हो सकता है। कितने दिनों से समझौते की बात चल रही है पर यह सम्भव नहीं हो सका। चीन में जनता के चुने प्रतिनिधियों की सरकार प्रतिष्ठित है पर उसके प्रतिनिधि यू० एन० ओ० में नहीं रक्खे जाते। कोरिया के विषय में भारत के प्रधान मंत्री की राय की जैसी व्याख्या की गई वह साफ प्रमाणित करती है कि स्वार्थ के आधार पर ही पूँजीवादी देश कोरिया में समझौता करने के पक्ष में है। आज ईरान में तेल का प्रश्न, मिश्र में 'स्वेज' का प्रश्न इतना दबाव डाल रहा है कि पूँजीवादी देश कोरिया में समझौता करने के पक्ष में केवल इसलिए हैं कि उन्हें इन दोनों देशों की समस्याओं को अपने मनोनुकूल सुलझाने का अवसर मिले। ईरान तथा मिश्र की जनता अपनी सम्पत्ति को दूसरे के पास जाना नहीं देखना चाहती। उस दशा में उनको अपने अधिकार में रखकर उस सम्पत्ति का उपभोग करने के पक्ष में देश सेना का दबाव डालना चाहते हैं। हम जानते हैं कि कोरिया के समझौते का कारण केवल यही दबाव है। नहीं श्री जवाहर लाल नेहरू का पत्र जो ता० १३-७-५० को जे० वी० स्टालिन को भेजा गया था। शान्ति स्थापित करने के अच्छे आधार को घोषित करता है। उसमें कहा गया है कि भारत का उद्देश्य युद्ध को एक क्षेत्र तक ही सीमित रखना और सुरक्षा परिषद के वर्तमान गतरोध को दूर करके उसे शान्ति पूर्ण हल को शीघ्र निकालने में सहायता देना है जिससे कि चीन की लोकशाही का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद में स्थान ग्रहण कर सके, सोवियत संघ उसमें वापिस आ सके और परिषद के भीतर अथवा उसके बाहर गैर सरकारी सम्पर्क के द्वारा सोवियत संघ अमरीका और चीन दूसरे शांति प्रिय राज्यों की सहायता और सहयोग से लड़ाई बन्द करने और कोरिया की समस्या के आखरी

हल के लिए कोई आधार निकाल सकें।

श्री नेहरू का पत्र

जे० वी० स्टालिन ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया था 'मैं आपकी शांति के लिए उठाये गये कदम का स्वागत करता हूँ। मैं आपके इस दृष्टिकोण से पूर्णतः सहमत हूँ कि कोरिया के प्रश्न का सुरक्षा परिषद द्वारा जल्दी शान्तिपूर्ण हल निकाला जाय जिससे पांच बड़े देशों के प्रतिनिधि, जिनमें चीनी लोकशाही सरकार का प्रतिनिधि भी शामिल हो, उसमें भाग ले सकें।

ये दोनों पत्र यह प्रकट कर रहे हैं कि ये लोग शान्तिपूर्ण समझौता चाहते हैं, पर इन्हीं पत्रों के विषय में यह कहा गया कि जवाहर लाल स्टालिन के चाल में आ गये और भूल कर गये। जब कोई भी ईमानदारी से पूर्ण बात कही जायेगी और यदि किसी के स्वार्थों के विरुद्ध पड़ने से ही वह भूल हो जायेगी उस दशा में दोनों सिद्धान्तों में समझौता होना कठिन है। अधिकांश लोगों की धारणा युद्ध की अनिवार्यता की ओर ही झुकती जान पड़ती है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो विश्वव्यापी विराट-संघर्ष से बचने की आशा लगाये हैं। उनका अनुमान है कि अब युयुत्सा नामक प्रवृत्ति का शासन किया जा सकता है तो सामाजिक व्यवस्था में समुचित संशोधन हो जाने पर युद्ध की अनिवार्यता नहीं बनी रह सकती। वे विश्व-मानववाद में विश्वास रखते हैं। सरलता पूर्वक इस विकट गुत्थी के सुलझाने की चेष्टा भी उनकी ओर से हो रही हैं। भारतवर्ष के अधिकांश आचार्य और राजनैतिक नेता इसी शांतिपूर्ण मार्ग से समस्या का समाधान ढूँढ़ते हैं। राजनीति और समाज व्यवस्था के अहिंसात्मक परिवर्तन में उनकी दृढ़ आस्था है। पिछले दिनों भारत में आये हुए चीनी सांस्कृतिक मंडल ने एक वक्तव्य में कहा था कि भारत और चीन सम्मिलित रूप से विश्व में शान्ति स्थापित करने का महान् अनुष्ठान सम्पन्न कर सकते हैं। रूस के विदेश मंत्री श्री विशिस्की ने पिछले वर्ष वाशिंगटन में एक प्रति-प्रतिनिधि सभा में भाषण करते हुए यह कहा था कि समाजवादी

और पूंजीवादी दोनों ही व्यवस्थायें समान भाव से नहीं रह सकतीं। पूंजीवादी को समाजवाद के लिये स्थान रिक्त करना ही पड़ेगा, परन्तु यह अनिवार्य नहीं कि एक भयंकर युद्ध के फल स्वरूप ही परिवर्त्तन सम्भव हो सके। शान्तिमय उपायों से भी मनुष्य समाजवादी व्यवस्था का निर्माण कर सकता है।

प्रश्न यह है कि क्या समाजवाद की स्थापना से युद्ध की आशा सर्वदा के लिये समाप्त हो जायेगी ? इस सम्बन्ध में विनम्र निवेदन इतना ही है कि किसी भी वस्तु में शश्वतता नहीं है। युद्ध का अभाव भी इसका अपवाद नहीं। समाजवाद की स्थापना के उपरान्त नयी समस्या उठ खड़ी होंगी जिनकी कल्पना भी आज हम नहीं कर पाते। बहुत संभव है कि मानव जब उनके समाधान में तत्पर हो तो कभी उसे युद्ध की शरण लेनी पड़े। मनुष्य के भाव तक के सांस्कृतिक विकास में कोई भी युग ऐसा नहीं गुजरा जब युद्ध न हुआ हो, और कुछ लोगों के अनुसार, आगे भी युद्ध की सम्भावना बनी ही रह सकती है। परन्तु जो मानववृत्तियों के उदात्ती करण में विश्वास रखते हैं उनके लिये सोचना स्वाभाविक है। मनुष्य किसी दिन अवश्य इस प्रवृत्ति का शमन कर लेगा। ऐसे लोगों का मार्ग कल्याण कारी है।

(प्रो० जयचन्द्र राय, एम० ए०)

भारत और पाकिस्तान

इस वैज्ञानिक युग में धर्म का राजनीति के साथ सम्बन्ध न रह कर मानव की आत्मा के साथ रह गया था। विश्व के सभी राष्ट्रों ने उपरोक्त राह पर अपने को तथा राष्ट्र को ढालना आरम्भ कर दिया क्योंकि वे गुलामी की जंजीरों से कोसों दूर स्वतन्त्रता की सुगन्धि को सूँघ रहे थे। परन्तु अंग्रेजों के पंजों में जकड़ा हुआ भारत स्वतन्त्र राह पर न चल सका। इसके बर्बर शासकों ने हिन्दुत्व और यवनत्व के बीजारोपण से भारत को वञ्चित न रखा! इसका मुख्य कारण यही था कि धार्मिक सिद्धान्तों पर चलने वाले भारत पर Divide and Rule का सिद्धान्त लागू नहीं कर सकते थे। इंग्लैण्ड की जनता के नेता क्रिप्स ने जिस का स्वागत भारत में कभी अवहेलना की दृष्टि से किया गया था, जिन्होंने विघातमक प्रवृत्ति को शक्ति देकर भारतीयों के अहित में पाकिस्तान की भावना का सूत्रपात किया। पाकिस्तान के नेता स्वर्गीय जिन्ना का विचार था कि पंजाब, बंगाल और सिन्ध में यवनों का बहुमत होने के कारण पाकिस्तान बनने में सुलभता न होगी और फिर बाहरी मुसलमानी शक्तियों के संगठन के आधार पर भारत पर आक्रमण सुगमता से हो सकेगा। परन्तु जिन्होंने अपनी कामुकता में असफल ही रहे और भारत विजय के स्वप्न स्वप्नमात्र ही रह गये। अंग्रेजों और अमेरिका की चालों से भारत न बच सका जिसके कारण उसको दो भागों में विभक्त होना पड़ा।

आज के संक्रान्ति काल में राज्य विस्तार से धर्म विस्तार की कल्पना करना मूर्खता ही है। क्योंकि आज धर्म का राजनीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है? कुछ विद्वानों का विचार है कि भारत के टुकड़े

हो जाने से इसकी उन्नति में रुकावटें आ गई हैं, परन्तु मैं इनके मत से सहमत नहीं होता। मेरे विचार से तो पाकिस्तान बन जाने के पश्चात ही भारतीय सरकार को अपने कार्यक्रम पर चलने का अवसर उचित प्रकार से प्राप्त हुआ। यदि ऐसा न हुआ होता तो भारत का हरिजनवर्ग जो कि आज हिन्दुओं का ही एक अंग है सर्वदा के लिए इससे पृथक होकर राज के प्रलोभन में आकर यवनों से मिल जाता और इस प्रकार से अल्प हिन्दुओं का नाम सर्वदा के लिए लोप हो जाता। पाकिस्तान के बन जाने से मुसलमान वर्ग की सीमा बन गई और भारत में मुसलमानों की अवस्था शोचनीय हो गई। भारतीय सरकार की सहायता को लेने वाला मुसलमान आत्मग्लानि के कारण मस्तिष्क को ऊँचा करके कभी नहीं चलता। पाकिस्तान के बन जाने से इस्लाम धर्म का बहता हुआ स्रोत प्रायः रुक सा गया है और निकट भविष्य में उस के प्रसार की कोई सम्भावना दृष्टिगोचर नहीं होती।

पाकिस्तान के बन जाने से भारत को एक सबसे बड़ी समस्या जो सामने आई वह थी खाद्य-समस्या। क्योंकि खाद्य को उपजाने वाला अधिक भाग उसके हाथ से निकल कर पाकिस्तान की ओर चला गया जिससे चावल, कपास, गेहूँ, चना और पटसन के लिए भारत को अन्य देशों की ओर ताकना पड़ रहा है। इन सभी अभावों को भारतीय सरकार शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने की चेष्टा कर रही है। कोयले के लिए पाकिस्तान को भारत की ओर निहारना पड़ता है। पाकिस्तानी नदियों का पानी भारत में होकर जाने वाली नदियों से जाता है। यदि भारतीय सरकार आज ही पाकिस्तानी भूमि को ऊसर बनाना चाहे तो वह नदियों में बांध लगाकर बना सकता है।

मुसलमान शिल्प के कामों में दक्ष थे। जिस प्रकार उनके भारत से चले जाने पर शिल्प को काफी क्षति उठानी पड़ी उसी प्रकार हिन्दू व्यापारीवर्ग के पाकिस्तान से चले आने पर वहाँ का व्यापार कम हो गया। शरणार्थियों के परिश्रम ने भारत की गिरी हुई दशा को शीघ्र ही सम्भाल लिया परन्तु पाकिस्तान अपनी आर्थिक स्थिति को ठीक प्रकार से सम्भालने में अबतक असमर्थ रहा।

१५ अगस्त १९४७ के विभाजन से दोनों देशों में रहने वाली

जनता के आपसी मतभेद अवश्य बढ़ गये हैं। अहिंसा के अवतार बापू ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो सूत्र पिरोया था वह नष्ट हो गया और आज के भारत के आदर्श के साथ जनता की आंशिक सहानुभूति मात्र ही है। इस विभाजन में जो नर-संहार हुआ है वह युग-युग तक भुलाने वाली बात नहीं। यह जो कुछ भी हो चुका है और कभी होने की सम्भावना बन जाती है वह सब सामाजिक पतन की पराकाष्ठा है। निरीह बच्चों का भाले की नोक से बेधकर आग में झोंकना, अबला नारियों पर बलात्कार करना। यह सब हिन्दू-मुस्लिम एकता के मध्य दीवार बनकर खड़ी हो गई है। दोनों वर्गों के बीच एक गहरी खाई खुद चुकी है जिसको पाकिस्तान की हिन्द-निर्वासन नीति ने उसे और भी बलवती बना डाला है।

राजनैतिक क्षेत्र में भी पाकिस्तान ने जो विदेशी नीति को लेकर टांग अड़ाई थी वह भी टूट चुकी है। जिसके फलस्वरूप अब उसे गुण्डागर्दी रूपी लकड़ी का सहारा लेकर चलना पड़ रहा है। जिन-जिन समस्याओं को लेकर वह भारत के सामने आया, उनमें उसे असफलता के सुनहरे ताज को ही पहनना पड़ा। काश्मीर-समस्या, हैदराबाद की समस्या, जूनागढ़ और भूपाल के नवाब का पतन, खाद्य समस्या आदि इन सब में सत्य के अवतार भारत की ही विजय हुई। इस विभाजन से पूर्व जिन नगरों में मुसलमानों का प्रभुत्व पूर्ण रूप से था उनमें से इसके विभाजन के उपरान्त आधा भाग भारत को मिल गया जिसके कारण सभी मुसलमानी रियासतें स्वाहा हो गई हैं। इस प्रकार से पाकिस्तान हिन्दुओं के लिए श्रेयस्कर ही हुआ है। पाकिस्तान इस समय पठानिस्तान की समस्या से घबड़ा रहा है जिसका सुलझाना उसके लिये टेढ़ी खीर है। जहाँ तक मुझे आशा है कि उसमें ज्वाला उठने वाली है जिसमें समस्त पाकिस्तान को ही भुनना पड़ेगा।

यह सत्य है कि पाकिस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जननी और अमेरिकन राजनीति का एक प्रमुख अंग है। क्योंकि उनको विश्वास था कि जो सहायता भारत नहीं कर सकता है, वे सभी पाकिस्तान के द्वारा हो सकती है? अतः उन्होंने अपने शत्रु रूस के विरुद्ध अपनी

शक्ति का संगठन करने के लिए भारत के उत्तर पश्चिम में ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जहाँ पर कि वह अपनी हवाई सेना का पूरा प्रबन्ध कर सके। इसी उद्देश्य को पाकिस्तान ने पूर्ण किया। बेचारे भोले भाले मुसलमान अंग्रेजों और अमेरीकी चालों में कुचले जा रहे हैं। पाकिस्तान आज बहुत सी समस्याओं के बीच में घिरा पड़ा है, उनको सुलझाये बिना उसके भविष्य का निर्माण नहीं हो सकता है। पाकिस्तानी नेताओं ने भोली भाली मुसलमान जातिओं को उकसा-उकसा कर अपने मनोरथों को सफल बनाया है। जिनके फलस्वरूप पाकिस्तान को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इनको इसने शीघ्र ही न हल कर लिया तो वह शीघ्र ही मृत्यु की सुखद गोद में सो जायेगा। आज भारत भी अपनी समस्याओं को सुलझाने में संलग्न है। सफलता की शक्ति भारत का हाथ पकड़े हुये है। भारत के योग्य कर्णधारों ने भारत को सुसंगठित और सुव्यवस्थित कर लिया है और खाद्य समस्या को सुचारु रूप में लाने के लिए वह अपनी समस्त केन्द्रित शक्ति को लगा रहा है। आशा है भारत शीघ्र ही इसमें सफल होगा।

(सम्पादक)

ज़मींदारी उन्मूलन

सैंकड़ों युगों से चली हुई ज़मींदारी प्रथा निरंकुशता एकतंत्रता का प्रतीक है। जिसका प्रसार भारत में ही नहीं बल्कि सारे विश्वभर में है। ज़मींदार का अपनी ज़मींदारी में वही स्थान है जो किसी राज्य में राजा का है। परन्तु परिस्थितियों ने परिवर्तन दिखाया। साधनों के सीमित होजाने से मानव समाज में संघर्ष और अराजकता का उदय हुआ। इस उदित संघर्ष ने ज़मींदारी निरंकुशता के विपरीत विद्रोह कर दिया जो कि ज़मींदारी उन्मूलन के नाम से समाज के सन्मुख आया। यवनकाल में भी ज़मींदारी प्रथा का भारत में वैसा ही प्रसार रहा और अंग्रेजी काल में भी इसकी कुछ न कुछ बढ़ोतरी ही हुई। इस प्रथा के परिणामस्वरूप भारत में ज़मींदारों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया जो ब्रिटिश सरकार का उस समय हितैषी रहा और भोग विलास के अतिरिक्त उसका कोई उद्देश्य नहीं था। ज़मींदारी की बागडोर ऐसे अत्याचारी मानवों के हाथ में रही जो कि मानवता को चन्द चाँदी के टुकड़ों के पीछे बेच चुके थे।

सरकारी पदाधिकारियों को ज़मींदारों की ओर से भेंट और डालियाँ के रूप में लम्बी-लम्बी रकमें मिलती चली गईं और उन्हें दौरे पर सुरा का नशा और यौवन की मादकता का रस चखने को मिला। पदाधिकारियों की मादकता से ज़मींदारों की निरंकुशता बढ़ चली। निर्धन किसानों का क्रन्दन होता रहा, पर उन तक आवाज़ न पहुंच सकी। क्योंकि चाँदी के मजबूत जूते ने उनके कानों को बहरा और आँखों को अन्धा कर दिया था। निस्सहाय होकर ग्रामीण जनता बर्बरता की चक्की में पिसती रही। परन्तु यह अधिक न चल सका पूंजी का आवागमन हुआ। कलाओं का जन्म हुआ, मिलें खुलीं,

मिल मज़दूरों का संगठन हुआ और विश्व की व्यापक लहर में इस सोये हुये भारत ने भी अपने हाथ फैलाये। कृषकों में चेतना आई। उन्होंने निश्चय किया कि वे पसीने की गाढ़ी कमाई से ज़मींदार समाज को नहीं खाने देंगे। विचार आते ही समाज और जनता का ढाँचा बदल गया, और एक दिन वह आया कि अंग्रेजी राज्य का सूर्य भारत से सदा के लिए लोप होगया। अब ज़मींदारों का भी बिस्तरा बंध चुका है।

आज भारत में प्रजातन्त्र राज्य है। राज्य के कर्णधार अपने परिचित नेतागण हैं। परन्तु वे भी ढाँचे को धीरे-धीरे बदल रहे हैं। परन्तु आज का वैज्ञानिक युग हममें शीघ्रता का रूप देखना चाहता है। यह तो बंधनों और बाधाओं से दूर रहना चाहता है। यह सब ज़मीदारी उन्मूलन से हो सकता है जिसके लिए समय की आवश्यकता है। आज का भारत बेकारी को पसन्द नहीं करता। वह चाहता है उसका बच्चा या बूढ़ा बिना परिश्रम के न कुछ खाये और न कुछ पहने। उसकी इच्छा है कि भूमि उसकी होनी चाहिए जो उसमें परिश्रम करे, जो अनाज उत्पन्न करे तथा केवल दूसरों के परिश्रम पर घर बैठ कर खाने के लिए भूमि का उपयोग नहीं किया जायेगा।

ज़मींदारी उन्मूलन से भारत की सम्पत्ति में उन्नति होगी। प्रत्येक कृषक अपनी भूमि को तन मन धन से श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा करेगा और समाज की जोंक जो कि उसे ही चूस चूस कर खोखला कर रही है निकाल कर बाहर फेंक देगा। इसी जोंक (शोषक वर्ग) ने विदेश में जा जा कर भारत की पसीने की कमाई को भोग विलास की सामग्रियों में फूँका है। इस प्रथा के नष्ट हो जाने से जनता का सीधा सम्बन्ध अपने राज्य के कर्णधारों से हो जायेगा। जनता में एकता की भावना और स्थिति पैदा हो जायेगी। देश की निर्धनता तुरन्त ही दूर हो जायेगी। और भारत का निर्धन वर्ग सम्पन्न हो जायेगा और मानवता के मस्तिष्क पर लगा हुआ वह अभिशाप का टीका एक न एक दिन अवश्य दूर हो जायेगा।

ज़मींदारी उन्मूलन से सैकड़ों लाभों के साथ साथ एक बड़ी हानि भी है वह यह है कि कुछ समय के लिए भारत की पूंजी कुछ ऐसे मनुष्यों पर चली जायेगी जो कि उत्पादक कार्यों में पैसे को ठीक प्रकार से न लगायेंगे। क्योंकि कृषक वर्ग अधिकतर अशिक्षित है वे तो जमा किये हुए धन को ज़मीन में गाड़ना ही जानते है। इस प्रकार से सरकार को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। आज कृषकों द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं का मूल्य बहुत ऊँचा है और जो रुपया उनके पास पहुंच गया है उसका आवागमन रुक सा गया है। जिसके कारण भारत के व्यापार में कुछ शिथिलता आ गई है। यह रुपये का रुक जाना स्थायी नहीं है। ज्यों ज्यों कृषक वर्ग में शिक्षा का प्रसार होगा त्यों त्यों परिस्थिति ठीक होती जायेगी और देश की जागृति के साथ साथ इसमें भी जागृति का संचार होगा जिससे पैसे का आवागमन समाज क्षेत्र में खुल जायेगा।

उपरोक्त सभी बातों से ज़मीदारी उन्मूलन भारत के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

काश्मीर-समस्या

भारत विभाजन नीति के अन्तर्गत भारतीय रियासतों को अधिकार दिया गया था कि वे अपने भविष्य का निर्णय स्वयं करें। इससे कुछ रियासतें तो भारत में शामिल हो गईं और कुछ ने पाकिस्तान का पल्ला पकड़ा। काश्मीर अपनी विकट परिस्थिति के कारण अपनी उलझन को न सुलझा सका। क्योंकि जन-समाज का नेता शेख्अब्दुल्ला तथा उसके साथी लगभग १ वर्ष से कारागार में ठूंस दिये गये थे और महाराजा हरीसिंह प्रधानमन्त्री श्री रामचन्द्र 'काक' के बल पर तानाशाही चला रहे थे। मुस्लिम आबादी की अधिकता के कारण यह रियासत किसी में भी इतनी बिलम्ब तक न मिल सकी थी।

पाकिस्तान का प्रथम कदम

पाकिस्तान इस देरी को सहन न कर सका और उसने आवश्यक वस्तुओं को न भेजकर अपनी क्रूरता का परिचय दे दिया। यहीं तक ही नहीं इसके साथ साथ ही सशस्त्र आक्रमण आरम्भ कर दिये। पाकिस्तानी कबाइली काश्मीर की राजधानी की ओर बढ़ने लगे। शत्रु को अपनी ओर बढ़ता देख काश्मीर महाराज ने शेख अब्दुला और उसके साथियों को कारागार से रिहा कर दिया।

भारत का सहायता देने का फैसला

शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर की समस्या को समझा और यह निश्चय किया कि इसे कबाइलियों से बचाने के लिये भारत की सहायता की आवश्यकता है। अतः शेख अब्दुल्ला की अस्थायी सरकार ने तुरन्त ही भारत में सम्मिलित होने की घोषणा करदी और सशस्त्र

सहायता की याचना की। भारत इस प्रस्ताव को ठुकरा न सका। भारत ने अपने सैनिकों को वायुयानों द्वारा काश्मीर सीमा पर भेजना आरम्भ कर दिया। भारतीय सेना ने हिम-जल की शीतल पवन से उत्पन्न होने वाले शीत की परवा न करके १९४८ के अन्त तक काश्मीर के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार जमा लिया।

काश्मीर समस्या राष्ट्र संघ में

जब भारतीय सरकार की लिखित प्रार्थना पर भी पाकिस्तान ने ध्यान नहीं दिया तो विवश होकर इस समस्या को संयुक्तराष्ट्र संघ के सम्मुख रखा गया। संघ के अध्यक्ष ने दोनों पक्षों से वार्तालाप करने के उपरान्त यह घोषणा की कि भारत और पाकिस्तान ने शांति पूर्ण समझौता करने का निर्णय कर लिया है। काश्मीर में संयुक्त राष्ट्रीय कमीशन की स्थापना एक मत से हो गई।

कमीशन की नियुक्ति

संयुक्त राष्ट्रीय कमीशन में १ सदस्य भारत की ओर से, १ पाकिस्तान की ओर से, १ भारत और पाकिस्तान दोनों की ओर से और दो सदस्य सुरक्षापरिषद की ओर से नियुक्त किये गये। भारत ने जेकोस्लोवेकिया, पाकिस्तान ने अर्जेन्टाइन और सुरक्षापरिषद ने बेलजियम तथा कोलम्बिया को नामजद कर लिया। परन्तु पांचवें सदस्य पर भारत और पाकिस्तान में मतभेद रहा। अतः सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की नामजदगी रिक्त स्थान पर कर दी।

मुख्य बातें

१. भारत पाकिस्तान व कमीशन के सहयोग से जनमत संग्रह करना।

२. पाकिस्तान द्वारा युद्ध में गये हुए सैनिकों को वापस बुलाना और उन जैसे व्यक्तियों को अपनी सीमा से नहीं गुजरने देना। इसके साथ ही पाकिस्तान उनको किसी प्रकार भी सहायता न दे सकेगा।

३. कबाइली सैनिकों के काश्मीर सीमा छोड़ने के उपरान्त भारतीय सेना काश्मीर में कम करदी जाये। वहाँ केवल शांति के लिए उतनी ही सेना रक्खी जाये जितनी आवश्यक हो।

४. जनमत संग्रह का काम 'जनमत संग्रह प्रशासक' द्वारा भारत और पाकिस्तान के पूर्ण सहयोग द्वारा करवाना।

संयुक्तराष्ट्रीय कमीशन का कार्य आरम्भ

८ जौलाई १९४८ को कमीशन करांची पहुंचा वहाँ पाकिस्तानी सरकार से बातचीत करने के उपरान्त १० जौलाई को भारत में आया। १४ अगस्त को कमीशन ने यह सुझाव दिया कि भारत और पाकिस्तान को युद्ध विराम संधि कर लेनी चाहिये।

कमीशन निराशा में

भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने निम्न बातों को स्पष्ट करा कर युद्ध विराम प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिये,

१. तथाकथित स्वतन्त्र काश्मीर सरकार को मान्यता प्रदान करने का कोई इरादा नहीं किया जा रहा है।

२. काश्मीर में भारतीय सेनाएँ इतनी संख्या में रखी जायेगी जो कि 'बाहरी' आक्रमण तथा आन्तरिक गड़बड़ी के लिए पर्याप्त हों।

३. प्रस्तावित जनमत संग्रह के कार्य में पाकिस्तान कोई भाग नहीं लेगा।

मुहम्मद जफरुल्लाखाँ ने कमीशन को यह स्पष्ट उत्तर दिया कि—

स्वतन्त्र काश्मीर सरकार को किसी भी बात के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

युद्ध विराम की आज्ञा चालू तथा युद्ध विराम संधि की शर्तें स्वीकार करने का अधिकार स्वतन्त्र काश्मीर सरकार को ही है।

स्वतन्त्र काश्मीर की सेनायें बहाल रहें और भारत की सेनाएं पूर्णतः वापस हट जायें।

उपरोक्त शर्तों को सुलझाने में कमीशन को निराशा का चोला पहनना पड़ा और वह वापस जेनेवा चला गया। और कमीशन ने यह रिपोर्ट पेश की कि पाकिस्तान ने विराम सन्धि को असम्भव बना दिया है।

संघर्ष समाप्ति की घोषणा

कमीशन के सदस्य डाक्टर अल्फर्ड लोजानो ने साहस न छोड़ा और उसके प्रयत्नों से दोनों सरकारों ने स्वेच्छा पूर्वक युद्ध विराम पर सहमति प्रदान की और ३१ दिसम्बर १९४८ तथा १ जनवरी ४९ की अर्धरात्रि को युद्ध विराम (समाप्ति) की घोषणा करदी गई। १२ मार्च को कराँची में स्थाई रेखा निश्चित करदी गई।

१७ मई १९४९ को शेख़ अब्दुल्ला ने काश्मीर को भारत में मिलने की घोषणा की। २० मई को भारतीय विधान परिषद् ने एक संकल्प स्वीकार किया और चार सीटों की पूर्ति काश्मीरी सदस्यों द्वारा पूरी करदी गई।

पंच की नियुक्ति

२१ मार्च को लेकसक्सेस से एडमिरल चेस्टर निमिन्त्र की जनमत संग्रह प्रशासक की रूप नियुक्ति की गई। 'पंच का निर्णय दोनों सरकारों पर लागू होगा।' इस बात को पाकिस्तान की सहमति के उपरांत भी भारत न मान सका। इस प्रकार पंच स्थापित करने का प्रयास विफल हुआ।

मध्यस्थ की नियुक्ति

कमीशन की रिपोर्ट पर मेकनाटन ने आपसी ढंग पर भारत पाकिस्तान से बातचीत की परन्तु निराशा ही हाथ लगी। १० मार्च को सुरक्षा परिषद् ने ब्रिटेन, नारवे, अमेरीका तथा क्यूबा द्वारा संयुक्त संकल्प को स्वीकार किया और सर ओवन डिक्सन को मध्यस्थ नियुक्त कर दिया।

डिक्सन का प्रयत्न

२८ मई को डिक्सन ने आकर दोनों सरकारों के अधिकारियों से बातचीत की और स्थिति की जाँच के लिए काश्मीर का भ्रमण किया। उनके कितने ही सुझाव रखने पर भी दोनों सरकारें एक मत न हो सकीं। इस पर २० जोलाई को दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों की बैठक हुई — पर परिणाम व्यर्थ ही निकला। कितने ही प्रयासों के उपरान्त भी दोनों देश एक मत न हो सके।

डिक्सन का कथन था कि दोनों देश काश्मीर वैली को छोड़कर शेष क्षेत्रों को अपने अपने देशों में सम्मिलित करलें और काश्मीर वैली में जनमत करलें। परन्तु इस फैसले को किसी ने भी न माना इस पर जब उनके सारे प्रयत्न बिल्कुल असफल हो गये तो २२ अगस्त १९५१ को सर ओवन डिक्सन ने मध्यस्थता के प्रयासों में असफल रहने की घोषणा करदी।

१९ सितम्बर की डिक्सन की रिपोर्ट से स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान ने अनधिकृत चेष्टा की है और इस समस्या को ठीक ढंग से सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया।

रिपोर्ट के पश्चात

जब संयुक्त राष्ट्र ने इस समस्या पर विचार करने में ढील आरम्भ करदी तो पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री स्वर्गीय नवाब जादा लियाकतअली ने इस समस्या को जनवरी में होने वाली कामन वेल्थ कान्फ्रेंस के सामने लाने का प्रयत्न किया था।

पर काश्मीर समस्या न सुलझ सकी। अब नाजीमुद्दीन खां जो कि पाकिस्तान के नये प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए हैं शान्ति के साथ भारत के सहयोग से काश्मीर समस्या को सुलझाना चाहते हैं। इस लिए उन्होंने भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू को निमन्त्रण दिया है। अब देखिये किस करवट ऊंट बैठता है।

(सम्पादक)

स्वतन्त्र भारत और हिन्दी

किसी भी देश की भाषा उस देश के साहित्य का जीवन होती है और वह साहित्य उस देश की जागृति का आधार होता है। इसके बिना देश निर्जीव होता है। अब तक जिन राष्ट्रों ने अपनी राष्ट्रीयता एवं साहित्य का पुनः उद्धार किया है वे सभी उन्नतिशील बन गये हैं। अतः भारत को भी उन्नतिशील बनने के लिए राष्ट्र भाषा का आश्रय लेना आवश्यक सा हो गया है। क्योंकि इसी के द्वार पर खड़े होकर हम अपने राष्ट्र की नींव को पक्का कर सकते हैं। आज से लगभग ४ वर्ष पूर्व सात समुद्र पार रहने वाली जाति हमारी शासक थी और हम शासित थे। उन्होंने हमारे ज्ञान, आदर्श और उन्नति की चिन्ता न कर के अपनी भाषा और सभ्यता में हमें रंग डाला। विदेशी भाषा ने हमारी भारतीयता को खोकर हमारे मस्तिष्कों पर पराधीन मनोवृत्ति की छाप डालदी थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने हमारी भाषा, संस्कृति, सभ्यता और पूर्वजों के आदर्शों के प्रति हमारे हृदयों में उदासीनता ही नहीं घृणा को जन्म दे डाला है। इस भाषा ने हमें पंगु, निकम्मा, अशक्त और संसार-संघर्ष के अयोग्य बना डाला है। इसके माध्यम के कारण आज हम भारतीय उन्हीं की दासता में रहना स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के इतने अनुकरण शील हो गये हैं कि अपने अच्छे बुरे को समझने के विवेक को भी खो बैठे हैं। इसके अनुकरण मात्र से भारतीय सभ्यता और पूर्वजों के आदर्श जिन पर हमें कभी गर्व था, पतन के गढ्ढे में जा गिरे हैं। यदि हम उनका पुनः उद्धार करना चाहते हैं तो विदेशी चोले को छोड़कर अपनी भाषा को अपनायें।

यही प्रश्न हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी को जन्म देता है। वास्तव में राष्ट्र भाषा वही होनी चाहिये जो भारत की बहुसंख्यक जनता द्वारा समझी और बोली जाती हो, सरल सुबोध हो, प्राचीनता के साथ साथ सब अन्य प्रान्तीय भाषाओं से बहन जैसा सम्बन्ध रखती हो, जिसका कोष शब्दों से भरपूर हो और देश-साहित्य जिसमें सुरक्षित हो। इस प्रश्न को हल करने के लिए कितनों ने ही हिन्दी का पक्ष लिया। कुछ ने उर्दू को इसके योग्य बताया और शेष जो रह गये उन्होंने इसके लिये हिन्दुस्तानी का नाम अलापना आरम्भ किया। हमारे राष्ट्र के अधिकांश कर्णधारों ने हिन्दुस्तानी का पक्ष लेकर हिन्दू मुस्लिम संगठन करना चाहा, परिणाम यह हुआ कि इसका घोर विरोध हुआ जिसके कारण आपसी वैमनस्य बढ़ गया। हिन्दुस्तानी भाषा के चोले में ऐसी भाषा की खिचड़ी देनी चाही, जिसको हम पानी के साथ भी नहीं सटक सकते थे।

रेडियो द्वारा अरबी फारसी को ही हिन्दुस्तानी का रूप दिया गया। यह भाषा नहीं भाषा का प्रदर्शन गृह है। जिसमें अरबी फ़ारसी जैसे पक्षियों के चित्र रखे गये हैं। उर्दू के पास अपना शब्द भण्डार ही नहीं। भारत की जनता की भाषा हिन्दी ही है और यही रहेगी।

भारत की मूल भाषा संस्कृत है। क्योंकि भारत की संस्कृति धर्म पर आश्रित है और भारतीय धर्म की भाषा संस्कृत है। इसका प्रचार भारत के कोने कोने में था। इसका भण्डार अनन्त है। इसका सहारा लेकर आज हिन्दी विश्व भर की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर रही है। इसके राष्ट्र-भाषा बन जाने से सारा उत्तरी भारत एक सूत्र में बंध जाता है। क्योंकि उत्तरी भारत-भारत की सभी भाषाओं में धर्म दर्शन सम्बन्धी शब्दावली एक है। अन्य भाषाओं उर्दू और विदेशी भाषा अंग्रेजी को ही लीजिए—ये लिखी कुछ जाती हैं और पढ़ी कुछ। दर्शन शास्त्र के अध्ययन करने से पता लगता है कि हिन्दी विदेशी भाषा से कहीं अधिक पूर्ण की है। अतः इसकी लिपि सरल और सुगम है। इसे प्रत्येक मानव चाहे किसी भी जाति से सम्बन्ध रखता हो

सरलता से समझ सकता है। इस को प्रयोग में लाने वाले लगभग २८ करोड़ भारतीय हैं।

हिंदी बहुत पुरानी भाषा है, यह लगभग १०० वर्षों से देश का भार वहन कर रही है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण स्वर्गीय राजेन्द्रलाल मिश्र लिखित 'इन्डोएरियन्स' में एक स्थान पर लिखा हुआ मिलता है। 'भारतीय भाषाओं में हिंदी का स्थान ऊंचा है और यह हिंदू जाति के सबसे अधिक सभ्य लोगों की भाषा है। यह प्राचीन होने के कारण युगों के निर्माण तथा पतन का इतिहास देख चुकी है। तुलसी कृत 'राम चरित मानस' हिंदी जनता का प्राण बन गई है। इसमें ही हमारे मानस की कितनी ही भावनाएं रक्षित हैं, और इसमें ही हमारे साहित्य का इतिहास सुरक्षित है।

हिंदी के द्वारा आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी कार्य चल सकते हैं। इसको अन्य किसी भाषा के सामने आँचल पसारने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

हम सर्वदा से शरणागतों का स्वागत करते आये हैं। दूसरों को शरण देते हैं, पर उसी सीमा तक कि वे हमारे लिए जब तक भार-स्वरूप न हों। अतिथियों को स्थान देंगे—घर वालों को बाहर निकाल कर नहीं; अतः आज हिन्दी उदार, धनी, सम्पत्तिशाली, वैभवशाली, मौलिक, सार्वभौम और संपूर्णता के नाते ही राष्ट्र भाषा के सुसज्जित आसन पर विराज सकी है। इतिहास इसका प्रत्यक्ष है कि मुस्लिम पूर्वजों में जायसी, कुतबन, मंझन, रसखान, रहीम और कबीर आदि ने इसको अपनी पुत्री के समान पाला है। इन्हीं मुस्लिम महानुभावों में इन्शाअल्लाखां जैसे हिंदी के सच्चे अनुरागी ने जन्म लिया है। वो हिंदवी की छुट और दूसरी भाषा की पुट भी अपनी भाषा में नहीं देते थे।

विश्व भर में हिंदी का प्रचार करने के लिए २५०० संस्थायें बन चुकी हैं। आज पत्र तथा पत्रिकाएं अधिकतर हिंदी ही की शरण में जा रही हैं।

भारतीय जनतन्त्र के बन जाने पर अनेक प्राँतों में राज भाषा का चोला हिंदी पहन चुकी है। भारत के नागरिकों के कठिन परिश्रम के पश्चात् भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहार लाल नेहरू तथा शिक्षा मंत्री ने इसको प्रधानता दी है। अब से लगभग १५ वर्ष के पश्चात विदेशी भाषा के स्थान पर हिंदी का पूर्ण आधिपत्य होगा।

आज स्वतन्त्र भारत की अनेकों उलझनें राष्ट्र-भाषा हिंदी के कारण सुलझ सकी हैं।

(सम्पादक)

महात्मा गांधी और उनकी देश सेवा

जब १६ वीं सदी की सांझ थी, दो अक्टूबर १८६६ को पोरबंदर के दीवान की कोठी में इस युग के क्या. युग युगों के महानतम व्यक्तित्व ने प्रथम बार अपनी पलकें खोलीं ? इस नवजात शिशु का नाम था मोहन दास कर्मचन्द गांधी।

वैभव और सम्पन्नता के शैशव में वह शिशु किशोर हुआ। जब वे अध्ययन में लगे हुए थे तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। १७ वर्ष की आयु में जब वे अध्ययन के लिए इङ्गलैंड जाने लगे उस समय वे एक पुत्र के पिता बन चुके थे।

इङ्गलैंड के विषाक्त वातावरण में भी अपने व्यक्तित्व में अछूते फूलों की सी पवित्रता रखते हुए उन्होंने वकालत की योग्यता प्राप्त कर ली। वहीं उनके जीवन का विकास हुआ। बम्बई वापस लौटने पर माता की मृत्यु का शोक समाचार सुना। फिर वे कुछ दिनों तक वकालत करते रहे, परन्तु उसमें सफल न हो सके। तभी पोरबन्दर की एक कम्पनी के वकील होकर वे दक्षिण अफ्रीका गए। वहां भारतीयों पर होता अपमान सहन न कर सके और इस पर चोटें खाईं—ईंट और पत्थरों से।

उन्होंने 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' नाम से एक युग की स्थापना की—ऐसे युग की जिनमें मनुष्यता, अन्याय और घृणा का बदला प्रेम और न्याय से लिया जाता था। इसके कुछ दिनों के उपरान्त वे भारत लौटे। घूम घूम कर उन्होंने होने वाले भारतीयों पर अत्याचारों का रूप जनता के सन्मुख खड़ा कर दिया। अंग्रेजों के विरुद्ध दक्षिणी अफ्रीका में एक बहुत बड़ा विप्लव हुआ। जिसमें गांधी जी ने सेवक बन कर कार्य

किया। जिन गोरों ने उन पर पत्थर फेंके थे। उन्हीं के घावों को उन्होंने धोया। जिन्होंने उनकी बेइज्ज़ती की थी उन्हीं की जानें बचाईं। नफ़रत और मौत के बदले में प्यार और ज़िन्दगी का वरदान देने वाले इस मानव को देखकर देवतओं की आंखों में भी आँसू भर आए होंगे।

इस पर भी गोरों के अत्याचार दिन और रात के समान बढ़ने लगे। तब गांधी जी ने फोनिक्स में एक आश्रम की स्थापना की–और 'इंडियन ओपिनियन' नामक एक समाचार पत्र निकाला। उसी के पश्चात् की कहानी संघर्षों की एक लम्बी गाथा है। 'काला कानून' बना, जिसके अनुसार हर भारतीय को अपने अंगूठे की छाप देनी होती थी। भारतीय विवाह नाजायज करार दिए गए। सारे भारतीयों पर एक मौत का सा सन्नाटा छाया हुआ था। उस समय गांधी जी की एक ही आवाज़ ने मुर्दों में जान डाल दी और वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए चल दिए दल बांधकर। उनकी जादू भरी आवाज़ ने हमें जानवरों की बजाय इंसान बना दिया और फिर हमने रगों में लाल रक्त की अधिकता महसूस की और संसार ने अचरज से देखा कि किस प्रकार से सदियों की गुलाम कौम ने करवट ली और हुँकार उठी। अन्त में आवाज़ पर विजय का सेहरा बँधा और भारतीय विवाह जायज़ करार दे दिया गया। 'काला कानून' हटा दिया गया और जनरल स्मटस को झुकना पड़ा। इसी बीच में प्रथम महायुद्ध छिड़ा और गांधी जी के कथानुसार भारतीयों ने युद्ध में सहायता की।

सन् १६१५ में गाँधी जी भारत लौटे। भारत ने बाहें फैलाकर अपने मसीहा, अपने पैगम्बर का स्वागत किया। उन्हें महात्मा कह कर पुकारा। सारे भारत का भ्रमण करके उन्होंने साबरमती को अपना साधना-स्थल चुना और वहीं अपना आश्रम स्थापित किया। वहां पर भी शांति न मिली और चम्पारन की नील की कोठियों से उठती हुई दर्द और कराह की आवाज़ ने उन्हें बेचैन कर डाला और वहां अन्दोलन द्वारा शांति स्थापित की।

थोड़े समय पश्चात् ही अहमदाबाद के मिल मजदूरों के आन्दोलन के सिलसिले में प्रथम बार ही उन्होंने अपने जीवन में

उपवास किया। १९१८ में दिल्ली में युद्ध सम्मेलन हुआ और महात्मा जी ने स्वयं रङ्गरूटों की भर्ती करने में सहायता दी, परन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उन्हें बकरी के दूध की शरण लेनी पड़ी।

इधर तो लोग रोलट बिल का विरोध कर रहे थे। उधर पंजाब की धरती खून से रंग उठी। जलियां-वाले बाग में सैंकड़ों निर्दोष गोलियों से भून दिये गये और खूरेंजी का एक भयंकर लहर ने सारे हिन्दुस्तान को डुबो दिया। लेकिन ४० करोड़ हिन्दुस्तानियों का पाप अपने सिर गांधी जी ने ले लिया। और तीन दिन तक उपवास किया। इस पर १ अगस्त १९२० को उन्होंने फिर असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया। खिलाफ़त और स्वराज्य दोनों आवाजें उठीं और विदेशी उपाधियों, स्कूलों, अदालतों और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर दिया और प्रिन्स आफ वेल्ज़ के आगमन के समय विदेशी कपड़ों की आग की रोशनी से ब्रिटेन के ताज और तख्त थर्रा उठे।

इस पर भी जनता अपने पर नियन्त्रण न रख सकी। बम्बई में गोली-कांड हुआ उसकी प्रतिक्रिया में जनता ने पुलिस का थाना जला दिया इससे गांधी जी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने पांच दिन का उपवास किया।

१० मार्च १९२२ को इन्हें ब्रिटिश सरकार का मेहमान बनना पड़ा। परन्तु शारीरिक अवस्था ठीक न होने के कारण सरकार उन्हें अधिक दिन मेहमान न बना सकी। फिर उन्होंने साइमन कमीशन का विरोध—'साइमन लौट जाओ' के नारे के साथ किया। जिससे बृटिश साम्राज्य की नींव हिल गई। फिर वे नमक कानून तोड़ने के अपराध में गिरफ्तार कर लिए गये। गांधी-इर्विन समझौते पर ही पुनः छोड़े गए। इसी कारण कितनी ही बार उन्हें अनशन करने पड़े। और कितनी ही बार सरकार का मेहमान बनना पड़ा। इसी बीच में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। भारत को बिना उसकी सलाह के युद्ध में सम्मिलित घोषित कर दिया गया।

सन् १६४१ में 'क्रिप्स प्रस्ताव' आया। परन्तु गांधी जी ने इसे 'बेकाम चेक' बता कर नामंजूर कर दिया। और उसके बाद उन्होंने 'भारत छोड़ो' की आवाज़ उठाई। ब्रिटिश राज्य जिसमें कभी सूरज डूबता ही नहीं था कांप उठा।

सन् १६४२-इसी वर्ष कांग्रेस ने भी उसी प्रस्ताव का समर्थन किया और ६ अगस्त को सभी नेता गिरफ्तार कर लिए गये। ज्वाला-मुखी के शिखर उठा लिए गये। और हिन्दुस्तान धधक उठा। उसके बाद महान अगस्त का आंदोलन हुआ जिसमें अंग्रेजों ने जी भर कर हिन्दुस्तानियों को कुचला और जिम्मा भी गांधी जी और कांग्रेस के माथे थोप दिया।

फिर उन्होंने २१ दिन का अनशन किया और सरकार ने उन्हें वहीं छोड़ दिया। इसी बीच मौत ने उनसे भाई जैसे महादेव देसाई को छीन लिया था। फरवरी में कस्तूर बा ने भी उनका साथ छोड़ दिया था। ६ मई सन् १६४४ को इन दो मौतों की पीड़ा से व्यथित गांधी जी को सरकार ने छोड़ दिया। फिर वे बम्बई गये और कायदे आज़म से भेंट की।

उसके पश्चात् कान्फ्रेंसों का एक लम्बा दौर चला। शिमला कान्फ्रेंस अभी भूली नहीं थी। १२ मई १६४६ को नई योजना आई और अंतरिम सरकार बनी, मगर १६ अगस्त के बाद बंगाल में भयंकर हत्याकांड शुरू हो गया। अपनी जीवन संध्या में इन हत्या कांडों से गांधी जी का दिल सिहर उठा। वे पैदल गांव-गांव में शांति का अलख जगाते हुए चल पड़े। परन्तु अग्नि पूर्ण रूप से धधक उठी थी, बंगाल में दबी, बिहार में फिर धधक उठी।

सन् १६४७ में वे बिहार पहुंचे वहां का दंगा शांत किया। उसके पश्चात् तो जैसे पशुता और रक्तपात ने उन्हें चैन न लेने दिया। १५ अगस्त १६४७ को जब भारत भर में आज़ादी की खुशियां मनाई जा रही थीं। उस समय गांधी जी कलकत्ते में साम्प्रदायिक दंगे शांत कराने में व्यस्त थे। वहां पर भी उन्हें उपवास करना पड़ा। कलकत्ते के ठंडे

होते ही दिल्ली धधक उठी । ८ सितम्बर को वे दिल्ली पहुँचे । कौन जानता था कि दिल्ली में जहां इतनी बादशाहतें समाप्त हुई, वहीं उस देशभक्त को भी अपनी मौत देखनी पड़ेगी ? १३ जनवरी को उन्होंने अपना अंतिम उपवास किया, सारा देश थर्रा उठा । नेताओं ने शांति स्थापना का वायदा किया । उन्होंने उपवास तोड़ा । ३० जनवरी को एक मराठे हिन्दू नाथूराम गोडसे ने तीन गोलियों से उनकी हत्या कर दी ।

भारत के आसमान का सूरज डूब चुका था, भारत की आत्मा की रोशनी बुझ चुकी थी । और आगे क्या होगा उसको सोच कर मन कांप उठता है ?

बापू सत्य के प्रतीक थे । उन्होंने ही अव्यवस्थित भारत को सुन्दर उपवन का रूप दिया था । वही वह आत्म थी जिसने चालीस करोड़ पशुओं को ठीक मार्ग पर लगाया था । वह करोड़ों में एक थे । वह एक राजनीतिक व्यक्ति थे । उनकी बुद्धि महान् थी । वह भारत के सच्चे देश सेवक थे । उनकी सेवायें भारत के प्रति महान् थीं ।

(श्री योगेश्वर चन्द्र)

भारत की वैज्ञानिक उन्नति

मनुष्य का स्वभाव उसकी उद्दण्डता का जीता जागता चित्र है। प्राचीन इतिहास बताता है कि आरम्भ में उसे शिकार पर ही अपना जीवन निर्वाह करना पड़ा। उसे जंगली व हिंसक पशु-पक्षियों का सामना करना पड़ा, किन्तु फिर भी सफल रहा। इन सब संघर्षों से पार लगाने का एक मात्र श्रेय उसकी बुद्धि को ही है।

इसी कारण उसने समस्त विश्व के प्रत्येक प्रकार के पशुओं को वश में किया और उसने मन चाहे काम लिए। उसने गायों का दूध दुहा, बैलों से हल जुतवाये और हाथी घोड़ों से सवारियों के स्थान पर कार्य लिया। यह था मानव का प्रारम्भिक युद्ध।

इसके पश्चात् मनुष्य ने प्रकृति के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और स्वयं ही मैदान में आ कूदा। उसने वन के वृक्षों को काट डाला और उनकी लकड़ियों को अनेक प्रकार से काम में लाया, नदियों पर पुल बांधे और सुगम से सुगम मार्ग निकाले। पृथ्वी के पेट को चीर कर उसमें से अनेक प्रकार की वस्तुएं निकालीं, समुद्र इत्यादि के वक्षःस्थल पर नौका बिहार किया और बड़े से बड़े नगर बसा दिये।

कहते है 'आवश्यकता ही अविष्कार की जननी है।" (Necessity is the mother of Invention) और ठीक भी है मनुष्य को आवश्यकता थी और उसने पूरा किया। पहिले मनुष्य अपने निर्दिष्ट स्थान पर कई दिवसों की कठिन यात्रा के पश्चात् घोड़ा गाड़ी या छकड़ों इत्यादि के द्वारा पहुंचता था, किन्तु आज उसी यात्रा को वह कुछ घंटों में पार कर लेता है। यह सब किस के कारण ? यह है मनुष्य की तीव्र बुद्धि कला-कौशलता। उसने भाप द्वारा चलित

एक इस प्रकार की गाड़ी को बनाया जो कि बड़ी से बड़ी, कठिन से कठिन यात्रा कुछ घंटों में ही पूरा कर देती है। यह है वाट्स साहब की बुद्धि का एक चमत्कार! उसने (मनुष्य ने) मोटर साइकिल और अन्य ऐसे यन्त्र बनाये जिसके द्वारा उसने अपनी प्रत्येक कठिनाइयों को दूर कर दिया। उसने न केवल थल पर ही विजय प्राप्त की अपितु जल व नभ में भी विजय प्राप्त कर ली। उसने बताया कि मनुष्य पशु-पक्षियों के समान आकाश में भी उड़ सकता है। उसने आकाश में उड़नेवाले उड़न खटोले की समस्या को यथार्थ रूप में उड़कर जग को यह प्रमाण दिया कि यह कहानियां जो कि उड़न खटोले से सम्बन्धित हैं और जो श्रीराम के विषय में बताई जाती हैं कहां तक सत्य हैं! जल पर उसने बड़े-बड़े जहाज़ चलाये जिसके कारण उसने एक प्रान्त के मनुष्य को दूसरे प्रान्त के मनुष्यों के सम्पर्क में आने का व्यापार को बढ़ाने का सुगम मार्ग बताया। मनुष्य ने यही नहीं किया क्या उसने इससे भी आगे बढ़ने की ठान रखी है? दिनों दिन विज्ञान अपनी प्रतिभा से उसे आगे बढ़ने में सहायता दे रहा है। उसे भविष्यत् से और भी बहुत आशाएं हैं।

मनुष्य ने प्रकृति को दबाकर एक नई वस्तु प्राप्त की, यह है विद्युत अर्थात् (बिजली) उसने पानी को झरनों का रूप दिया और ऊंचाई से गिरा कर उससे यह अनुपम शक्ति उत्पन्न की।

विद्युत शक्ति ने तो एक प्रकार का कल्पवृक्ष स्वर्ग से लाकर मृत्युलोक में उपस्थित कर दिया। एक बटन दबाया नहीं कि सारा नगर विद्युत की विशुद्ध निर्मल—ज्योत्सना में पूर्ण हो उठा।

तमसो मा ज्योतिर्गमय! की प्रार्थना कम से कम भौतिक रूप में स्वीकृत हो जाती है! इतना ही नहीं यह शक्ति आपकी चाकरानी बनकर आपके घर को परिष्कृत करती है। बटन दबाते ही आज्ञा का पालन होना आरम्भ हो जाता है। जाड़े में गरम वायु और गर्मियों में शीतल पवन का सेवन कर लीजिए! पवन देव भी आपके इच्छा-नुवर्ती बन जाते हैं। इसी शक्ति के कारण अब मनुष्य का अगला

कदम व उसका भाव था मनोरंजन। उसने रेडियो जैसी कल का निर्माण किया। जिसके द्वारा वह निज कमरे में बैठकर दूर के समाचार व अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। टेलीविजन (Television) द्वारा वह बोलने व गाने वाले का चित्र आपके सामने ला सकता है। यह है मनुष्य का अन्तिम नूतन अविष्कार। वायरलैस द्वारा उसने हजारों मील बैठे आदमी से अपना सन्बन्ध स्थापित किया। इन अविष्कारों ने मनुष्य को अजय बना दिया।

मनुष्य ने कठिन से कठिन बीमारी के ठीक करने के सुलभ से सुलभ साधन निकाले। एक्सरे और रेडीयम द्वारा चिकित्सा शास्त्र में बहुत कुछ वांछनीय परिवर्तन हो गया है। मनुष्य को अपने भीतर की बात जानने के लिए अनुभान का सहारा नहीं लेना पड़ता अपितु (Xray) एक्सरे द्वारा सब कुछ ज्ञात होता है। इन सब का श्रेय केवल एक फ्राँसीसी महिला को ही है जो कि क्यूरी के नाम से आजकल संसार में विख्यात है।

अनुवीक्षण (Microscope) यंत्र ने नाना प्रकार के कीटाणुओं को प्रकाश में लाकर चिकित्सा शास्त्र में एक हल चल सी पैदा कर दी है! इन कीटाणुओं द्वारा रोग के निदान में भी बहुत कुछ सुगमता हो गई है। इसी कारण से मनुष्य ने मनुष्य को दूसरा जन्म दिया है और उसके आरोग्य करने के विविध साधन निकाले। और इन्हीं अविष्कारों द्वारा मनुष्य जाति को संगठित कर ही तो दिया।

हवाई यातायात की उपयोगिता सभी देश समझ चुके हैं। और उसकी उन्नति सभी सम्भव उपायों से करना चाहते हैं। डाक पार्सल आवागमन आदि में ये चीज अत्याधिक सहायक सिद्ध हुई हैं। इन हवाई जहाजों के द्वारा अल्प काल में ही दूसरे देशों से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता हैं। दो घन्टों में चमन के ताजे टूटे हुए अंगूर, कन्धार के अनार व काश्मीर के सेब हमारे हाथों में आ सकते हैं।

छोटी छोटी नौकाओं से बड़े से बड़े जल यन बनाये गये हैं। समुद्र के भीतर पनडुब्बियां काम करती हैं। और समुद्री अन्तर्जगत

का भेद भी मनुष्य से अदृश्य नहीं रहा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य ने जल, थल व नभ तीनों को पदाक्रांत कर दिया ।

दूरवीक्षण (Telescope) यंत्र हमें आकाश के तारागणों की सैर करा कर विश्व की अनन्ततरता का भाव अनुभूत कराते हैं । वे ही घातक तोपों के सहकारी बनते हैं ।

प्राचीन काल के धनुष बाण व ढाल तलवार के स्थान पर मनुष्य ने नई नई प्रकार की तोपें, बन्दूक व भूमिसात् करने वाले टैंक व बड़े-बड़े लड़ाकू जहाज़ को नाम शेष करने वाली पनडुब्बियों का आविष्कार किया । इसने और कई प्रकार से अपने शत्रु को नाश करने के लिए विषैली गैस एट्म बाम्ब व हाईड्रोजन बाम्ब जैसी घातक अस्त्रों का निर्माण किया ।

मनुष्य ने बेचारे बैलों को अवकाश देने के लिए ट्रैक्टर का निर्माण किया यह एक प्रकार का हल है जो की केवल एक मनुष्य के तनिक से इशारे में कई सौ बीघे खेत को बिना किसी बैल इत्यादि की सहायता अल्प समय में जोत डालता है । यह है भारत की उन्नति की प्रथम सीढ़ी । किसान इसी के द्वारा अधिक से अधिक अन्न पैदा कर सकता है और वह भी बिना परिश्रम के ।

सारांश यह है कि अगर प्राचीन मनुष्य एक बार पुनर्जीवित होकर नवीन संसार को देखे तो भौंचक्का-सा रह जाये और यदि आज का मनुष्य प्राचीन लोक में चला जाये तो उसका जीवन दूभर हो जाये ।

[श्री मदन कुमार 'गुप्ता' बी०ई० (मैकेनिक इंजीनियर)]

नेहरू-लियाकत समझौता

सन् १९५० के आगमन के साथ ही विपत्ति और संकटों के काले-काले मेघ हमारे राष्ट्र भारत पर छा गये। विशेषकर जब पूर्वी बंगाल में अमानुषिक अत्याचारों की पुनरावृत्ति हुई। अब की बार यह आपत्ति अल्प संख्यकों के लिये मृत्यु से भी अधिक भयानक बनकर आई। मानवता के नाम पर धब्बा लगाने वाले आततायियों ने फिर से लूटमार का बाज़ार गर्म कर दिया। दिन दहाड़े स्त्रियों के अपहरण और निर्दोष अल्पसंख्कों के बध करने वाले समाचार कलेजे को हिलाने लगे। फल स्वरूप यह बर्बरता का ताण्डव दोनों देशों भारत और पाकिस्तान के लिये समस्या बनकर आ खड़ा हुआ। मुसलमानों के डर से अल्पसंख्यक हिन्दू भारत में भाग-भाग कर आने लगे और भारत के मुसलमान पाकिस्तान को जाने की तैयारी करने लगे। इस भाग दौड़, मारकाट को बचाने के लिये ही नेहरू-लियाकत सन्धि का जन्म हुआ। इसी सन्धि को भारत-पाकिस्तान समझौता अथवा दिल्ली समझौता आदि नामों से पुकारा जाता है।

दोनों देशों के प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्री लियाकत अली और श्री जवाहरलाल नेहरू के कंधों पर इस अशांति को दूर करने का भार सौंपा गया। कई दिनों तक दोनों ओर से पत्र-व्यवहार आदि से समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। पर देश में फैले हुए आतंक ने चिंगारियों से शोलों का रूप धारण कर लिया। फूट की इस अग्नि का ताप किस भारतीय और पाकिस्तानी तक न पहुँचा होगा? जब पत्रों द्वारा कोई प्रभावशाली परिणाम न निकला तो यही निश्चय हुआ कि इस संकटमयी परिस्थिति पर पूर्ण रूप से विचार करके उसको दूर करने का तात्कालिक हल ढूंढना चाहिये। अन्त में

भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान के स्वर्गीय प्रधान मंत्री लियाकत अली को निमन्त्रण द्वारा दिल्ली बुलाया। दोनों प्रधान-मंत्रियों में सात दिन तक बंगाल में फैले हुए आतंक और अन्य विषयों से सम्बन्धित वार्तालाप हुआ। इसी नेहरू-लियाकत मुलाकात से भारत-पाकिस्तान समझौते का जन्म अप्रैल १९५० को हुआ।

इस समझौते का स्वागत दोनों प्रदेशों ने हार्दिकता से किया। इस सन्धि के होने से विपत्ति के छाये हुए बादलों में आशा की किरण फूट निकलीं। जिसने निराशा के अन्धकार को अपने प्रकाश से दूर करने का प्रयत्न किया। यह समझौता "मैत्री युग का वाहक" बन कर आया। संसार के प्रमुख पत्रों में इस की प्रशंसा के पुल बांधे गये और इसको शान्ति का अग्रदूत कहकर प्रतिष्ठित स्थान दिया गया। अमरीका के प्रमुख पत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' में खुले शब्दों में यह लिखा 'भारत-पाकिस्तान समझौते के द्वारा हिन्दू-मुसलमानों के मध्य की कटुता को दूर करने के लिये एक राजनीतिज्ञता पूर्ण प्रयत्न किया गया है।" इस प्रकार सन्धि ने राष्ट्र मण्डल के दो प्रमुख सदस्य राष्ट्रों में मित्रता की डोर बांध ही दी।

अब हमें देखना है कि इस समझौते में अल्पसंख्यकों की किन-किन समस्याओं को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। समझौते के (क) भाग में यह घोषणा की गई कि अल्पसंख्यको को किसी भी प्रकार के धार्मिक भेद भाव को न रखकर नागरिकता का समान अधिकार मिलना चाहिये और उनको देश के सार्वजनिक जीवन में भाग लेने देश के शासन-प्रबन्ध और सशस्त्र-सेना में सेवा करने का समान अवसर मिलना चाहिये। इसके अतिरिक्त जीवन संस्कृति, अध्यवसाय और आराधना की स्वतंत्रता, सम्पत्ति और स्वाभिमान रक्षा के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। इन सब जनतंत्रीय अधिकारों को दोनों देशों के संविधान में स्थान मिले। समझौते के (ख) भाग में पश्चिमी बंगाल, आसाम और त्रिपुरा के निष्क्रान्तों को आने जाने की स्वतंत्रता के साथ साथ वैयक्तिक चल सम्पत्ति, व्यक्तिगत आभूषण, घरेलू

वस्तुयें और कुछ निश्चित नकदी ले जाने के अधिकार प्राप्त होने के विषय में लिखा गया है।

इन सब सुविधाओं के अतिरिक्त चुंगी कार्यालयों में अन्य सरकार के अफसर चुंगी की समस्या को हल करने के लिये नियुक्त किये जायेंगे। तथा निष्क्रान्तों को अपने घरों में लौट आने के पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे। यदि वह ३१ दिसम्बर तक लौट जायेंगे तो वह अपनी अचल सम्पत्ति को वापिस ले सकते हैं अथवा नहीं तो उनकी सम्पत्ति का स्वामित्व वहीं निहित होगा। अचल सम्पत्ति का किराया आदि वसूल करने के लिये पूरी पूरी व्यवस्था कानूनों द्वारा की जायेगी। यह स्वामित्व का अधिकार केवल साम्प्रदायिक उपद्रवों में पूर्वी बंगाल से भारत और बिहार से पूर्वी बंगाल चले जाने वालों को ही प्राप्त होगा। समझौने के (ग) भाग में अपराधियों को दण्ड देने, अपहृत स्त्रियों की पुनः प्राप्ति, बलात धर्म परिवर्तन न करने की व्यवस्था की गई है। भविष्य में ऐसे आतंकों को रोकने के लिये भी पूरी पूरी चेष्टा की गई है और जो विद्वेष उत्पन्न करने वाले समाचार फैलाये जाते है जिनसे देश की शान्ति को आघात पहुँचता है ऐसे दुष्टतापूर्ण प्रचार-कार्यों को रोका जायेगा। इन सब बातों को निभाने का भार सौंपने के लिये अल्पसंख्यकों के मंत्री तथा अन्य प्रबन्धक नियुक्त किये जायेंगे। एक कमीशन भी बनाई जायेगी जिसकी सहायता से समझौते को कार्यान्वित रूप में परिवर्तित करने का सतत प्रयत्न किया जायेगा। दोनों केन्द्रीय मंत्रियों को समस्यायें सुलझाने के लिये बैठकों में भाग लेने और अपनी संयुक्त बैठक बुलाने के पूर्ण अधिकार होंगे। दोनों में मतभेद होने पर समस्या देश के प्रधानमंत्रियों तक पहुँचाई जा सकती है। जो किसी पद्धति द्वारा निश्चय उसका करेंगे।

इस समझौते का उद्देश्य केवल दोनों देशों में रहने वाले अल्पसंख्यकों को पूर्ण स्वतंत्रता के अधिकार देकर अपनी ही सरकार पर निर्भर रहना और निष्क्रमण की सुविधा पूर्ण रूप से देना है।

इस समझौते की कई आलोचकों ने कटुता पूर्ण आलोचना

की। इसी कारण डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने केन्द्रीय सरकार के मंत्री मण्डल से त्याग-पत्र दे दिया। उनके नीति-भेद होने का प्रभाव नेहरू-सरकार पर तनिक भी न पड़ सका और वह दृढ़ता के साथ अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होती रही।

आज समझौते को लागू हुए पूरे एक वर्ष से ऊपर समय बीत चुका है। उसके प्रभाव को तो हम स्वयं देख सकते हैं। अब आगे से दशा सुधर चुकी है। लोगों का ध्यान जो लड़ाई की ओर झुका हुआ था अब शान्ति के स्वप्न देखने लगा है। बीच में जब कभी भी शान्ति को आघात पहुंचने का भय हुआ उसी समय दशा को बिना किसी उत्पात से काबू में लाया गया। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री लियाकतअली के निधन से इस समझौते को ठेस लगने से पूर्णतया बचाया गया है। और उसको सफल बनाने के प्रयत्न निरन्तर रूप से किये जा रहे हैं। पिछले वर्ष ही सम्मेलनों इत्यादि द्वारा और भी कई विकट समस्याओं को सुलझाया गया।

इस समझौते की महत्ता इसी में है कि इसने संसार के सन्मुख समस्यायें सुलझाने का एक नवीन उपचार रखा है जिसका उदाहरण पूर्व इतिहास में मिलना कठिन है। इस सन्धि की बुद्धिमता एवं दूरदर्शिता ने दो देशों को विनाश के गर्त में गिरने से बचाया है। विश्व शान्ति को स्थापित करने का यह पहला कदम इसी समझौते द्वारा उठाया गया। भविष्य में आशा की जाती है कि अन्य देश भी इस समझौते के बताये हुए पथ का सहर्ष अनुकरण करेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा जब युद्ध का नाम मिटकर संसार में केवल शान्ति का साम्राज्य होगा।

(सुश्रीसुदेशशरण'रश्मि')

अवमूल्यन : पुनर्मूल्यन

किसी भी देश के आर्थिक इतिहास में अनेकों बार उथल-पुथल होती है। इस संक्राति काल में देश के अर्थशास्त्री ही भाग्य विधाता माने जाते हैं। बिना सुदृढ़ अर्थ-व्यवस्था के कोई भी देश आज की राजनीति के चक्र में पड़कर सकुशल नहीं रह सकता। देश के इतिहास में अनेकों अवसर आते हैं जबकि उसका भाग्य-सूत्र विदेशी शक्ति के साथ बांध दिया जाता है, चाहे उसका स्पष्ट विरोध जनता द्वारा किया जाता हो। ब्रिटेन ने जब १९ सितम्बर १९४९ को पौन्ड का अवमूल्यन किया तो एक सामान्य उपभोक्ता के लिए उसकी नवीन योजना भूल-भुलइयाँ ही प्रतीत होती थीं। परन्तु समाप्त होते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की अन्तिम कड़ियों से भारत अपने को मुक्त न रख सका। आगामी तीन दिनों में भारत सहित अनेकों देशों ने किसी न किसी कारण से ब्रिटेन को इस योजना में सहयोग देना स्वीकार कर लिया। अवमूल्यन की प्रतिक्रिया को जानने से पहले हमें यह समझना आवश्यक होगा, कि किन परिस्थितियों के वशीभूत होकर अवमूल्यन किया गया? उसकी रूपरेखा क्या है? और उसका भारत के आर्थिक ढाँचे पर क्या प्रभाव पड़ा है?

अवमूल्यन क्या है?

मुद्रा अवमूल्यन की यदि सीधे सादे शब्दों में व्याख्या की जाये तो इसका अर्थ है, "किसी देश की मुद्रा के बाह्य रूप में कमी करना।" अर्थात् किसी देश की मुद्रा और अन्य देश की मुद्रा के विनिमय दर में परिवर्तन होना। इससे स्पष्ट है, कि जो देश अपनी

मुद्रा का अवमूल्यन करता है, उसे अपनी अधिक मुद्रा के बदले में दूसरे देश की कम मुद्रा स्वीकार करनी पड़ती है। उदाहरण स्वरूप भारतीय रुपये का अमरीकी डालर में अवमूल्यन किया गया है। अब भारत को एक अमरीकी डालर के विनिमय में ३०.२२५ सैन्ट की अपेक्षा केवल २१ सैन्ट ही प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में अमरीकी उपभोक्ता को भारत की वस्तुएँ ३० प्रतिशत कम मूल्य में प्राप्त होंगी। यदि अब अमरीकी उपभोक्ता भारत से १ डालर का सामान खरीदता है तो उसे ३०.२२५ सैण्ट की अपेक्षा केवल २१ सेंण्ट ही मूल्य के रूप में देने होंगे। इसके विपरीत अमरीकी वस्तुओं के मूल्य भारतीय उपभोक्ता के लिए ४४% बढ़ गये हैं। स्पष्ट शब्दों में कोई भी भारतीय उपभोक्ता यदि किसी प्रकार अमरीकी वस्तुओं से मुक्ति पा सकता है तो खरीदना पसन्द न करेगा। वह व्यापारिक लाभ उठाने के लिए अधिक से अधिक भारतीय वस्तुएं अमरीका को बेचना पसन्द करेगा।

प्रश्न उठता है, कि कोई भी देश जिसमें कि मुक्त रूप से समस्या पर विचार किया जा सकता है। किस प्रकार अपनी मुद्रा के विनिमय दर को कम करने का निर्णय करेगा। इसका उत्तर पाने के लिए हमें तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों पर विचार करना होगा। तत्कालीन ही क्यों हमें भूतकाल पर भी विहंगम परन्तु तीखी दृष्टि से देखना होगा। विश्व के आर्थिक इतिहास में पीछे की ओर अपने डग बढ़ाते हुए हमें द्वितीय महायुद्ध के खन्डहरों के बीच बरबस रुकना पड़ता है। खण्डहरों में गूँजती हुई क्रांति की आवाज़ में हमें वहाँ की जनता का पीड़ा देने वाला स्वर सुनाई देती है। हम अनुभव करते हैं कि देश का आर्थिक ढाँचा छिन्न-भिन्न हो चुका है। वहाँ की पूंजी खाद्य सामग्री और दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ युद्ध की बलिवेदी पर चढ़ाई जा चुकी हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए हम अर्थ-शास्त्रियों का सहयोग प्राप्त करते हैं। जिससे की विदेशी वस्तुएँ देश में मंगा कर उचित वितरण किया जा सके। विदेशी वस्तुओं के आयात के पश्चात् उनके मूल्य की अदायगी के लिए हमें विदेशी मुद्रा की

आवश्यकता प्रतीत होती है। विदेशी मुद्रा की बढ़ी हुई माँग के कारण स्थानीय मुद्रा के मूल्य में भारी कमी होने लगती है। और विदेशी मुद्रा की मात्रा धीरे धीरे संकुचित होने लगती है। इस मुद्रा के अभाव में वस्तुओं का उत्पादन दिन प्रतिदिन गिर रहा था। जिसका कि देश की उत्पादक शक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुद्रा स्फीति की दशा प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के समय भी इतनी भयानक न थी, जितनी कि इस बार हो गई थी। दूसरी ओर बहुत से देशों में उत्पादन बहुत बढ़ गया था। जिसके लिए कि तालिका देना आवश्यक है:—

※ १९४७ में उत्पादन

अमरीका········	+१३०%	युद्ध पूर्व उत्पादन से अधिक।
कनाडा, स्वीडन, स्विटजरलैंड	+५०%	,, ,,
आस्ट्रेलिया, लेटिन अमरीका	+२५%	,, ,,

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात समस्या को विभिन्न रूपों में उग्र हो गई। किसी क्षेत्र में वस्तुओं की अत्यन्त कमी थी। तो दूसरे में उत्पादन शक्ति चरम सीमा पर पहुँचने के लिए प्रयत्नशील थी, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जिसकी स्थापना आर्थिक सन्तुलन प्राप्त करने के लिए की थी अपने कार्य में असफल रहा। अदायगी का अन्तर दिन प्रति दिन बढ़ रहा था, परन्तु यह क्षणिक नहीं था।

अतएव अवमूल्यन के आधार को लेकर ही इस समस्या को सुलझाने की चेष्टा की गई। क्योंकि इसी का आश्रय लेकर देश के आर्थिक ढाँचे को सुदृढ़ रखा जा सकता था।

अदायगी के प्रश्न को सन्तुलन में रखकर स्थानीय आय और बढ़ती हुई माँग के कारण बेरोजगारी की समस्या विकट होजाती है। कभी कभी तो देश का आर्थिक ढाँचा असन्तुलित भी हो जाता है। जैसा कि १९२४–१९२५ में इंगलैंड में हुआ था। अतएव इस मार्ग

※ डा० बी० एन० गांगुली की पुस्तक अवमूल्यन से उद्धृत।

पर न चलने का निर्णय किया गया। वास्तव में राष्ट्रीय आय बढ़ाने और बेरोजगारी कम करने के लिये ही १९३१ व १९३३ में क्रमशः पौंड व डालर का अवमूल्यन किया गया था।

एक अन्य कारण, जिसके लिए कि अनेकों देशों को मुद्रा अवमूल्यन के लिए बाध्य होना पड़ा, वह थी डालर की कमी। यह दो प्रकार से अनुभव की जा रही थी :—

(१) देश के स्वर्ण कोष व चल विदेशी सम्पत्ति में कमी होना, और

(२) अमरीका द्वारा दूसरे देशों को कर्ज व सहायता के रूप में धन दिया जाना।

डालर की कमी १९४७ के द्वितीय भाग में अत्यधिक बढ़ गई थी। १९४८ में इस दशा में सुधार अवश्य हुआ परन्तु साथ ही साथ अमरीकी व्यापार सम्बन्ध भी समाप्त हो चले थे। निर्यात वस्तुओं की बचत में भी काफी मात्रा में कमी हो गई थी।

पाकिस्तान का रुख

ब्रिटेन प्रभृति देशों के अवमूल्यन करने पर पाकिस्तान ने पुरानी दरों पर ही रहने का निर्णय किया। पाकिस्तान का अधिकतर व्यापार भारत के साथ था। उसने अवमूल्यन न करने की दशा में अपना लाभ देखा। अतएव ब्रिटेन को सहयोग नहीं दिया गया। वह अपनी वस्तुओं का भारत से अधिक मूल्य लेना चाहता था। सीधे-सादे शब्दों में यह कहा जा सकता है, कि पाकिस्तान अपनी वस्तुओं को अधिक मूल्य पर बेचकर भारत की वस्तुओं को कम मूल्य पर खरीदना चाहता था। भारत की व्यापारिक स्थिति को देखते हुए विचार किया जाता था कि वह पाकिस्तान से अपनी शर्तें मनवा सकेगा, क्योंकि वह ही कच्चे जूट का एक मात्र खरीदार है। ऊन, कच्ची खालों इत्यादि के सम्बन्ध में भी यही विचार था। इसी कारण

पाकिस्तानी वस्तुओं के मूल्य में प्रायः १०% की कमी हो गई। परन्तु परिस्थिति व परिणाम समानान्तर न थे। कोरिया युद्ध ने स्थिति को एक दम से पलट दिया। पुनः शस्त्रीकरण योजना के कारण भी पाकिस्तानी जूट व रूई की क़ीमतें बढ़ गई। अन्त में भारत को बाध्य होकर पाकिस्तान की पुरानी दर को जिसे उसने मानने से इन्कार कर दिया था, स्वीकार करना पड़ा। भारत के इस निर्णय को मुद्रा कोष ने अपनी स्वीकृति से पक्का कर दिया। इस विनिमय दर के अनुसार पाकिस्तान के १००) रु० के विनियम में भारत को १४४) रु० देने पड़ते थे। मुक्त व्यापार में यह दर स्थाई न रह सकी और अब केवल ११२) रु० से ११५) रु० तक ही भारत को पाकिस्तानी १००) रु० के विनिमय में देने पड़ते हैं।

स्टर्लिंग व भारतीय रुपया

पौंड व रुपये का सामान्य आधार पर अवमूल्यन किया गया है। उनकी विनिमय दर इसी कारण से पहले के समान है और न ही इन देशों के व्यापार में रुपये के आन्तरिक मूल्य पर कोई प्रभाव पड़ा है। पहले की तरह १) रु० के विनिमय में १८ पैंस प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्टर्लिंग क्षेत्र में पाकिस्तान को छोड़कर, जिसने अवमूल्यन नहीं किया है, सब देशों की विनिमय दरें समान हैं।

इंगलैंड ने क्यों अवमूल्यन किया ?

इंगलैंड ने अपने पौंड का अवमूल्यन इसलिए स्वीकार किया था, कि वह डालर क्षेत्र में अपनी अदायगी के लिए उत्सुक था। आँग्ल-अमरीकी संधि जो कि इस खाई को पूरा करने के लिए स्वीकार की गई थी शीघ्र ही समाप्त हो गई। इस कारण स्वर्ण कोष से भी कुछ धन इस कार्य के लिए व्यय किया गया। भविष्य अन्धकारमय था। ब्रिटेन को अमरीका से कोई भी आर्थिक सहायता मिलने की संभावना नहीं थी। अतएव व्यापार में गहरा अन्तर था। अधिक निर्यात किये जाने पर देश के आर्थिक ढाँचे पर गम्भीर प्रति क्रिया होने की

सम्भावना थी क्योंकि इस प्रकार मूल्य में भारी कमी हो जाती, बेकारी बढ़ जाती और स्वयं राज्य का सारा ढांचा छिन्न-भिन्न हो जाता। इसके साथ ही साथ ब्रिटेन अमरीका से अपने आयातों को अधिक नहीं कर सकता था क्योंकि वह विशेषकर खाद्य वस्तुओं और प्रमुख कच्चे माल के थे। अतएव अवमूल्यन ही एक ऐसा मार्ग था जिस पर चलकर ब्रिटेन अन्न की कीमतें गिरा कर अपने देश को दिवालिया होने से बचा सकता था और साथ ही अपने निर्यात व्यापार को भी बढ़ा सकता था।

भारत ने क्यों अवमूल्यन किया ?

रुपये के अवमूल्यन का प्रमुख कारण यह था, कि भारत के अमरीकी व्यापार में काफ़ी अन्तर था। निम्न-लिखित तालिका से यह और भी स्पष्ट है:—

वस्तु व्यापार का अन्तर *

भारत की औसत

यथार्थ	निर्यात +	आयात —	(लाख रुपये)
वार्षिक	स्टर्लिंग क्षेत्र	डालर क्षेत्र	अन्य
१९३८	— २.४	+ १.७	+ ७.५
१९४५	+ ३१.९	—१९.६	—३०.९
१९४६	— ६.३	+१९.८	— २.५
१९४७	+ १३.०	—३६.४	+ ०.६
(७ मास की औसत)			
	— १२.३	—२५.८	— ९.२

१९४८ (९ मास अप्रैल से दिसम्बर तक की औसत)

* इकनॉमिस्ट (साप्ताहिक) १३ अगस्त १९४९

त्रैमासिक

१९४८ प्रथम	+२८·६	—२४·०	+१७·९
१९४८ द्वितीय	+२३·१	—२६·९	+३२·४
१९४८ तृतीय	—१०·३	—३२·६	—१५·२
१९४८ चतुर्थ	— ३·३	—१७·८	—४४·९
१९४९ प्रथम	—८३.६	—३६·४	—८०·२

ऊपर लिखे आंकड़ों से स्पष्ट है, कि १९४८ के द्वितीय त्रैमासिक के समाप्त होने के बाद भारत का आयात अन्तर तीनो क्षेत्रों से निरन्तर तेज़ी के साथ बढ़ रहा था। इसका बाह्य मुद्रा संचय पर गहरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना थी। भारत विभाजन के पश्चात् भारत के आर्थिक कोष में निरन्तर कमी हो रही थी। १९४८ के तृतीय त्रैमासिक में तथा उसके पश्चात् भारत की डालर कोष स्थिति इस प्रकार थी :—

१९४८ (जुलाई से सितम्बर)	३३२५	लाख डालर
१९४८ (अक्टूबर से दिसम्बर)	३०९९	,, ,,
१९४८ (जनवरी से मार्च)	२८५४	,, ,,
१९४९ (अप्रैल से जून)	२५०३	,, ,,

अतएव इस समस्या को हल करने एक मात्र उपाय अवमूल्यन था।

रुपये के अवमूल्यन करने का एक अन्य कारण यह भी था कि हमारा समस्त व्यापार स्टर्लिंग क्षेत्र के साथ है। यदि रुपये का अवमूल्यन न किया जाता तो उन देशों में वस्तुओंके मूल्य बढ़ जाते और इस प्रकार हमारे निर्यात व्यापार पर गहरा प्रभाव पड़ता। इससे भी अधिक अमरीकी वस्तुओं के मंगाने पर यह खाई और भी गहरी हो

जाती। अतएव भारत की अर्थनीति के सन्तुलन के लिए अवमूल्यन आवश्यक था।

अवमूल्यन का परिणाम

अवमूल्यन के पश्चात् आज तक भारत निर्यात व्यापार में विशेष उन्नति नहीं कर पाया। जूट, जूट की बनी वस्तुएं, मैंगनीज, तेल के बीज इत्यादि जो माल अमरीका को भेजे जाते हैं उसके व्यापार में उन्नति अवश्य हुई है।

वास्तव में रुपये का निम्न मूल्य हमें हमारे निर्यात बढ़ाने में सहायता नहीं दे सकता है। इसका हमारे अदायगी के अन्तर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह हमें कुछ लाभप्रद अवश्य सिद्ध हुआ है। स्वयं पाकिस्तान से हमें उसकी पुरानी विनिमय दरों को स्वीकार करने में गहरी हानि पहुँची है।

डालर क्षेत्र से किये जाने वाले आयात किसी सीमा तक कम कर दिये गये हैं, परन्तु अब भी हमें डालर क्षेत्र पर मशीन, पूंजीकृत वस्तुएं और अन्य आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहना पड़ता है। व्यापार की गति स्टर्लिंग क्षेत्र की तरफ कदापि पूर्ण रूप में नहीं की जा सकती है। हाल में ही भारत को अमरीकी अन्न देश को दुर्भिक्ष से बचाने के लिए माँगना पड़ा है। क्या पहले की अपेक्षा कुछ अधिक दाम नहीं देना पड़ा है?

आन्तरिक मूल्यों पर प्रभाव

अवमूल्यन करते समय भारत सरकार ने मूल्य, मजदूरी व लाभ न बढ़ने देने की घोषणा की थी। स्वयं श्री नेहरू ने कहा था कि "कोई भी कारण नहीं है कि अवमूल्यन से इस देश में वस्तुओं के दाम बढ़ेंगे, और इस प्रकार जीवन यापन का खर्च बढ़ जाये।" सरकार की नीति १०% मूल्य कम करने की थी, परन्तु अब भी दो कारणों से मूल्य बढ़ रहे हैं।

जनसाधारण के विचार कि अवमूल्यन से कीमतें बढ़ेंगी, इस दिशा में सहायक हुए, अतएव शीघ्र ही वस्तुओं के दाम बढ़ गये। इस लिए उन वस्तुओं के भी जो अमरीका से नहीं मंगाई जाती थीं, मूल्य बढ़ गये। ब्रिटेन में भी ऐसा हुआ।

भारत में

(१) अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण भारत सरकार की भी मूल्य कम करने की घोषणा व्यर्थ ही सिद्ध हुई।

(२) स्वयं भारत में वस्तुओं के मूल्य बढ़ गये, क्योंकि ब्रिटेन में उनके मूल्य बढ़ गये थे। उदाहरण स्वरूप आटा अमरीका से आता है, अतएव डबलरोटी इत्यादि के दाम भी ३०. प्रतिशत बढ़ गये। खाद्य की ऊँची कीमतों के कारण अन्य वस्तुओं के दाम भी बढ़ गये।

हमारे देश की आज की स्थिति यह है, कि थोक कीमतों के कोष्टक जो कि जून १९५० में निम्नस्तर पर थे, आज तक दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, स्थिति इस प्रकार है:—

जून १९५०	३९५
जून १९५१	४५६

इस तालिका से स्पष्ट है कि मूल्य दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। अर्थात जीवन-यापन के लिये हमें अधिक व्यय करना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की सहायता पाकर भी स्थिति अत्यन्त जटिल हो गई है।

डालर के ऋण पर प्रभाव

ब्याज व ऋण लौटाने का बोझ हम पर अधिक पड़ा है, क्योंकि अब हमें ४५ प्रतिशत रुपया अधिक देना पड़ेगा। अतएव अपने आर्थिक ढाँचे को सुदृढ़ करने के लिए हमें कम से कम डालर व्यय करने पड़ेंगे। अवमूल्यन से हमें अनेकों लाभ पहुँचे हैं। जिनकी हम पहले से अपेक्षा करते थे। वास्तव में अब यह समस्या पुरानी हो

चुकी है और हमें कुछ इसका उपाय ढूँढना होगा और वह है "रुपये का पुर्नमूल्यन।"

पुर्नमूल्यन

अभी हाल के कुछ महीनों में मुद्रा के पुर्नमूल्यन की अफवाह जोर पकड़ती जा रही है। संसद और अनेकों स्थानों पर विभिन्न विचार व्यक्त भी किए गये हैं। इस योजना के अनुसार पौंड की कीमत डालर के समीप लाने का विचार है। यदि इस योजना को कार्यान्वित कर दिया गया तो अवमूल्यन किए जाने वाले देशों में ठीक प्रकार से आर्थिक विकास हो सकेगा। परन्तु यह प्रश्न इतना सरल नहीं है, जितना कि सोचा जाता है। इस बात की गुत्थी केवल इस प्रकार सुलझ सकती है कि किस प्रकार स्टर्लिंग क्षेत्र अधिक से अधिक डालर कमा सकता है।

वित्त मंत्री श्री देशमुख ने इस योजना को निराधार बताया है। वह केवल जीवनयापन की वस्तुओं को सस्ता करना चाहते हैं। इसके विपरीत भूतपूर्व अर्थमंत्री श्री जानमथाई ने इस आधार पर पुर्नमूल्यन का समर्थन किया है, कि वह हमारी बाह्य आर्थिक स्थिति पर प्रभाव नहीं डालेगा। कच्चे माल की बढ़ती हुई कीमतों को इस प्रकार से रोका जा सकेगा। भारत को हानि भी कम होगी, पर केवल इस दिशा में जापान व जर्मनी की प्रतिक्रिया हो सकती है।

भारतीय रुपये का १०% पुर्नमूल्यन उसको पाकिस्तानी रुपये के स्तर पर ला सकेगा। इस प्रकार दोनों देशों के व्यापार को लाभ पहुँचेगा। पुर्नमूल्यन से आयात किये जाने वाले गेहूं का मूल्य भी बड़ी मात्रा में कम हो जायेंगे। इससे उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा और उत्पादक कीमतें घटाई जा सकेंगी।

अतएव यह निश्चित सत्य है, कि रुपये का पुर्नमूल्यन करने से आजकल की स्थिति में काफी सुधार होगा। जिससे कि देश समृद्धि की ओर बढ़ सकेगा।

प्राचीन व नवीन विनिमय दर ❀

		पुरानी दर	नवीन दर
डालर स्टर्लिंग दर	—	४·०३ डालर	— २·०८ डालर
,, भारतीय रुपया दर	—	३०·२२ सैंट	— २१ सैंट
स्टर्लिंग— ,, ,,	—	१८ पैंस	— १८ पैंस
,, — पाकिस्तानी रुपया दर	—	१८ पैंस	— २५·६ पैंस
भारतीय रुपया — ,, ,,		१०० पाकिस्तानी रुपया १०० भारतीय रुपया	१०० पाकिस्तानी रुपये–१४४ भारतीय रुपये
डालर — ,, ,,	—	३०·२२ सैंट	— ३०·२२ सैंट

पुनर्मूल्यन की समस्या एक सत्य है। ब्रिटेन इस सम्बन्ध में एक कदम उठा भी चुका है। उसने अपने यहां मुद्रा विनिमय में होने वाली सट्टेबाजी को रोका है। आशा है इस दिशा में निकट भविष्य में विशेष परिवर्तन होंगे।

(श्री जगदीश प्रसाद "रवि", एम० ए०)

❀ डा० बी० एम० गांगुली की पुस्तक "अवमूल्यन" से उद्धृत।

निश्स्त्रीकरण : शस्त्रीकरण

असीम को ससीम समझना, फिर उसको गाहने का सतत उद्योग करना मानव में प्रकृति सिद्ध सत्य है। अपनी बुद्धि तथा हृदय की शक्ति के पंख लगा कर मनुष्य उस यात्रा को पार करने के लिए, इस शरीर रूपी वायुयान का सहारा लेता है, और पथिक बन जाता है, मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को कठिन कलेजा करके सहता है। यात्रा करता हुआ जब उस अपरिचित पथ में नूतन दृश्य देखता है, तो हर्ष सागर में हिलोरें लेता हुआ, उस दृश्य को अपनी संग्रही लिपिका में नवीन खोज, या नवीन सृष्टि का अविष्कार, नामकरण संस्कार करके लिख लेता है और आगे ही बढ़ता चला जाता है, परन्तु इतना सोचने का कष्ट नहीं करता, कि जो है ही असीम, उसके पार जाना कहां हो सकता है ? अस्तु,......

उसी यात्राका अपरिचित पथिक मानव न जाने क्या क्या सोचते सोचते अपनी इस लम्बी यात्रा को किस भान्ति समाप्त करता है, उसके मन में कुछ अभिलाषा, कुछ भाव होते है, जिन के साधन में, वह कठिन परिस्थितियों को पार करने से नहीं हिचकता; सम्भवतः इसी उमंग से, कि दुनियाँ मुझे स्मरण करती रहे; इसी उमंग में झूलता हुआ स्वान्त-सुख अनुभव करता है। परन्तु, वह यह स्वप्न में भी विचार नहीं करता, कि मुझे अमर बनाने वाली, मुझे सुख पहुंचाने वाली, आनन्द-दायिनी खोज, विश्व के लिए हितकर है, अथवा अहितकर। यदि इतिहास के पृष्ठों में चित्रित मानव, कुछ क्षण ठंडे दिल से यह सोचकर विचार करने का कष्ट करता, तो सम्भवतः वह धरणी-दिवाकर की आयु प्राप्त करता ? परन्तु, सहायक कर मीठा बनने

का स्वभाव इस चंचल प्रकृति में कहां ? वह शीघ्रता का पकने वाला, तथा शीघ्रता का सड़ने वाला, और दूसरों को गलाने वाला है।

आज के प्रगति शील युग में मनुष्यों ने बड़े चाव से अपने आप को सभ्य कहना, तथा जग की प्राकृतिक शक्तियों का विजेता कहलवाना आरम्भ कर दिया है, और गर्व से छाती फुलाये तना खड़ा है। परन्तु समझ में नहीं आता यह जग विजेता-निर्माता ईश्वर रातमें, दिन में जागता सोता, चौंक क्यों रहा है ? जल-स्थल तथा नभ का वश करने वाला, इस जीवन से ऊब सा क्यों गया है, वैज्ञानिक-पण्डित, आज सहमा हुआ, विक्षिप्त सा, व्याकुल सा अधीर सा, क्यों तड़प रहा है ? शान्ति तथा सुखप्रद साधनों का स्वामी यह मानव आज शान्ति और सुख से क्यों दूर पड़ा कराह रहा है, आज इस रावण के पास क्या उड़न-खटोला नहीं ? आज क्या मृत्यु को इसने अपने पलंग से बान्धा हुआ नहीं है; आज इस का सोया हुआ भाई कुम्भकर्ण क्या जाग नहीं पड़ा है ? आज यह मानव अपनी प्रति-छाया से ही क्यों डर रहा है ? इसी लिए कि इसने बड़े परिश्रम से जिस यात्रा का पता लगाकर पार जाना था, उसी पर अपने हाथ से ही कांटे बिखेर चुका है ? इस यात्रा की खोज का श्रेय प्राप्त करने वाला मानव इसीलिए कराह रहा है, क्योंकि यहाँ उसका पता पहले ही किसी दूसरी शक्ति ने लगाकर उसका श्रेय प्राप्त कर लिया है। परन्तु इस ओर का मानव जब जल भुनकर दूसरी खोज का आविष्कार करने पर तुला, उस पार के यात्री ने तीसरी राह निकाल कर आवाज़ लगा दी है, तभी तो अशान्ति से, दुख:से, जलन तथा भय से, बिचारा आज का दयनीय मानव अशान्ति की वैतरणी में बह रहा है। वह मृग मरीचिका के समान बाहर शान्ति को खोज खोज कर थक कर चूर हुआ हांप रहा है, परन्तु शान्ति बाहर कहाँ ? स्वयं शान्ति के साधनों, तथा प्रलय, के साधनों से खचाखच भरा होने के कारण, सावन के अन्धे के समान, सब को वैसे ही भरपूर देख रहा है। इसी लिए नाक भौं सिकोड़ता, मुख मरोड़ता, दान्तों से होठों को तोड़ता, बकेले सिगरेट के समान अन्दर ही अन्दर सुलगता आ रहा है। इसी लिए, (अशान्तस्य कुतः सुखम) सुख कहां ?

आज से लगभग पांच हजार साल पहले भी किसी समय मानव ने प्रकृति मर्यादा का उल्लंघन करके सभ्य होने का परिचय दिया था, और अपने आपको विजेता बहादुर-बलवान बताने के लिए धनुर बाण ताने, कुरुक्षेत्र सुशोभित किया था। परिणाम हिम-उपल के समान, प्रत्यक्ष ही है, अर्थात स्वयं भी गल गये और अपने साथियों को भी ले डूबे ? सम्बन्धी वर्ग बेचारे शवों को ढूंढते मर गये, परन्तु सब व्यर्थ ! उन सभ्य पुरुषों की सभ्यता का परिणाम भारत पांच हजार वर्ष से सह रहा है, और उन के कर्तव्यों से इतना दबा हुआ है, कि आज तक भी कमर सीधी नहीं हो रही है।

आज का मानव पहले से ही कहीं अधिक सभ्य बन चुका है, इस लिए इस सभ्यता का प्रभाव अथवा परिणाम भी लगभग अधिक ही मिल रहा है, और मिलेगा ? प्रथम बार तो केवल भारत ही आगे सीना तान कर खड़ा हुआ था, इस लिए जगद्गुरु कुछ देर के लिए रहा, और जगत् शिष्य पांच हजार वर्ष। अब क्योंकि लगभग सारा विश्व भौं चढ़ाये, नथने फुलाये, भर्राये ध्वनि में गुर्राये, अपने को सभ्य सुन कर मन्द हँसी हंस रहा है, इस लिए आज की इस सभ्यता का प्रभाव भी लगभग सब को बराबर बंटेगा ? तथा ऐसा कि न तो अब का तथा न अनादिकाल से चला आ रहा मानव इतिहास ही न बचने पायेगा ? अपितु कामायनी का 'मनु' भी सम्भवतः नहीं बचेगा ? बेचारे परमात्मा को भी नया मनु संसार चलाने के लिए, बनाना पड़ेगा ? आज की सभ्यता तथा नवीन अविष्कारों के निर्माता शासक वर्ग ही बचेंगे।

'आत्मानं-स्वजनं-राष्ट्रं समस्तं घातयिष्यति !'

अर्थात्—अपना-अपने बन्धु वर्ग का तथा समस्त राष्ट्र की लुटिया डुबो देगा ? यह अत्युक्ति नहीं, कटु सत्य है।

बीसवीं शताब्दी में विज्ञान की प्रगति ने जिस उथल पुथल को जन्म दिया है, उससे कौन सा प्रदेश ऐसा है, जिसके निवासियों में चैन हो, जहां की जनता सुख की नींद से सोती हो, असीम की यात्रा में आगे बढ़ने में शान्ति नहीं अशान्ति होगी, पग पग पर कांटे होंगे,

यह जानता हुआ भी आज का राही संसार शस्त्रीकरण कर रहा है। प्रश्न उठाये जा रहे हैं, शस्त्रीकरण बन्द किया जाये। परन्तु चूहों की घंटी के बिल्कुल समान मरा हुआ जर्मनी, तथा जापान, फिर थप-थपाया जा रहा है, फिर शस्त्रों से सजाया जा रहा है।

चढ़ जा बेटा शूली, रब भला करेगा ?

जहां कहीं से पुकार होती है, कि भयंकर शस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाया जाये, इनका निर्माण सीमित किया जाये, इनका युद्ध में प्रयोग वैधानिक रीति से बन्द किया जाये, उस देश को सब पागल ठहरा रहे हैं, उसकी सुनता कौन ? यदि जनता जनार्दन सन्धि कराने की युद्ध विराम की तथा सब को ख़ुशहाल देखने की बात कहता है, तो उसे अकुलीन, अहीर, काला मानव आदि उपाधियाँ दी जाती हैं। पग २ पर कांटे बिखरे पड़े हैं, और अधिक से अधिक बिखेरता ही चला जा रहा है, नवीन शस्त्रास्त्रों का निर्माण ज़ोरों से जारी है प्रत्येक देश, देश की गृहव्यवस्था से उदासीन है, परन्तु नवीन २ शस्त्रीकरण, सैन्य संग्रह के लिये कटिबद्ध है, और अधिक से अधिक व्यय कर रहा है। इन मन को कम्पा देने वाले भयंकर परिणामदः शस्त्रों का दुरुपयोग क्या रङ्ग लायेगा, यह कुछ तो मनुष्य समझ भी रहा है, और कुछ से अपरिचित भी है, परन्तु यह तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है, कि आज का सभ्य संसार कुलांगार बनकर कुछ कुछ युवावस्था में प्रवेश कर रहा है, यह जैसे ही पूर्ण युवा बनेगा, और जैसे ही कोई इसे कुछ कह बैठेगा, यह अपनी सभ्यता का दृश्य दिखाये बिना नहीं रह सकेगा ? और सहस्रों वर्षों की विधि को, साहित्य को, कला कौशल को, शस्यश्यामला धरित्री को, मिट्टी में मिला देगा, श्मशान बना देगा ? गगन चुम्बी अट्टालिकाओं को धूल में मिला देगा ? न मानव बचेगा, न यह विज्ञान ! न हवाई जहाज़, न शस्त्रागार ना विकसित सभ्यता, न श्यामल उद्यान ?

क्या यह सच नहीं, कि शस्त्र वृद्धि मानवता का ह्रास करती है ? क्या यह सच नहीं, कि एक परमाणु बम्ब करोड़ों का नामोनिशा

तक मिटा देता है ? क्या जापान की कमर तोड़कर रख देने वाली कोई और शक्ति थी ? फिर शस्त्रीकरण अथवा निशस्त्रीकरण का प्रश्न कैसा ? क्या अभी मानव के बुद्धि कपाट नहीं खुले ? कहाँ रुकेगा ? आखिर कब बस करेगा ?

निशस्त्रीकरण-शस्त्रीकरण कैसा ? क्यों इसकी ओर से तटस्थता नहीं, होती नज़र आ रही ? अरे मानव ! यदि तू नहीं बस करेगा तो तेरा यह विज्ञान, तुझ से स्वयं बस करेगा ? फिर कुछ करता अवश्य यह मैल धुला हुआ रहेगा तथा शान्ति का साम्राज्य भी अवश्य आयेगा।

इससे यह भी नहीं समझ लेना चाहिए, कि मानव कुछ विकास ही न करे ? वह अपने हाथ पावों को हिलाकर, अपने मस्तिष्क का परिचय ही न दे ! वह अकर्मण्य बन कर उद्योग न करे, आदि ? परन्तु, वह विकास करे और खूब करे लेकिन उस किकास की ओर बढ़े, जिसमें समष्टिगत लाभ हो। सब को सुख का सांस लेने में निडरता हो, यही नहीं, कि वह वस्तुका निर्माण भी कर रहा हो,और उस से स्वयं ही डर रहा हो, ऐसी वस्तुओं का नहीं,कि सर्व प्रथम या निर्माण काल में (भस्मासुर तथा शंकर बाबा की तरह) जन्म-दाता को ही मुक्ति पथका दर्शन करा दे ?

आज का विज्ञान सचमुच युग-परिवर्तन करने वाला, तथा युगान्तकारी है, वह शंकर थोड़ा तथा प्रलयंकर अधिक है, शस्त्रीकरण की हिंसक भावना प्रगति के अन्तिम द्वार पर पहुंच चुकी है। जिस भी देश पर इस डायन का आक्रमण हुआ, अथवा हो रहा है, तथा आगे भी होगा, वह प्रदेश चेतन-हीन ही नहीं, अपितु जड़-हीन भी हो चुका है, हो रहा है, तथा हो जायेगा। संसार अकिंचन रह जायेगा, और नाम ही शेष होगा ! इस प्रकार वर्तमान विज्ञान जिस प्रगति से धड़ा धड़ परोन्मूलन की प्रवृत्ति से दिन दूनी रात

चौगुनी उन्नति कर रहा है, वह उतनी अवनति में स्वयं तथा बड़े बड़े राष्ट्रों को ले जायेगा साथ ही यदि इसका निशस्त्रीकरण करने के लिए ठोस कदम उठाया गया, तो———

न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।
न रहेंगे हाड़ न रहेगा मांस भी ।
न रहेगा मुल्ला न मुसलमानी।
कर साफ देगें सब को विज्ञानी॥

(श्री देवदत्त शर्मा, शास्त्री, प्रभाकर)

हमारी खाद्य समस्या

भारत में अपना शासनाधिकार जमाने से पूर्व अंग्रेज़ इसे "सोने की चिड़िया" कहते थे। किन्तु आज वह "सोने की चिड़िया" एक स्वप्न की वस्तु बन गई है। इसका कारण यह है कि हमारा देश एक कृषि-प्रधान देश है। इसी कारण हमारी धरती सदा सोना उगलती रही थी, परन्तु आज न जाने क्यों भारत की इस शस्यश्यामला भूमि का वह सोना उगलने वाला गुण लुप्त हो गया। आज भारत भूखा है—कृषि प्रधान भारत भूखा है, आज भारत वासी भूखे है। हाँ भूखे ही हैं। नपा तुला ६ आऊंस एक दिन में खाने के लिए मिलता है और वह भी शहरों में—उन शहरों में जिन्हें आप उंगलियों पर गिन लें। स्थिति की भयंकरता ग्रामों में है-नगरों में नहीं! कुछ भी सही शहरों में अनाज की उपलब्धि (Supply) नियमित है, किन्तु ग्रामों की स्थिति ऐसी नहीं है! वहां न नपा तुला ६ आउन्स राशन में मिलता है और न ही वर्ष भर नियमित रूप से उनके खेतों में पैदा होता हैं। इस तरह हमारा, आप का, शहरों में रहने वाले इन कहे जाने वाले सभ्य और सुसंस्कृत मनुष्यों का पेट भरने-वाले-अन्नदाता-किसान आज भूखे हैं और इसी प्रकार वर्तमान रूप में विषम खाद्य समस्या हमारे सन्मुख आती है।

कुछ व्यक्तियों का कथन है कि खाद्य समस्या अपने इस नग्न रूप में असत्य का बाना पहने है। इसका कारण वे बताते हैं कि शहर में तो नागरिकों को राशन द्वारा और ब्लैक मार्केट द्वारा अन्न उपलब्ध है ही, ग्रामीण भी अपना वर्ष भर का स्टॉक रखते हैं—इस प्रकार खाद्य की कमी न शहरों में है, न गांवों में और सम्पूर्ण समस्या का चित्रीकरण कृत्रिम है- अधार हीन है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों

के बढ़ते हुए अन्न आयात के आंकड़े देखने से विदित होता है कि खाद्य की दिन-प्रति दिन बढ़ती हुई तंगी के कारण ही हमारे खाद्य-आयात दिन प्रति दिन बढ़ते जा रहे हैं।

इन समस्त विरोधाभासों के विरुद्ध भी प्रत्येक मननशील और गम्भीर विद्यार्थी यह जानता है कि खाद्य समस्या का अस्तित्व वास्तविक है– कोई कपोल कल्पित चित्र नहीं। पाश्चात्य और पूर्वीय दोनों विद्वान एक मत से स्वीकार करते हैं कि पिछली कितनी ही शताब्दियों से हमारी खाद्य समस्या बिगड़ी हुई है, किन्तु उस समय वह इतनी महसूस न होती थी। क्योंकि एक तो आबादी अधिक घनी नहीं थी और दूसरे आये दिन इतने युद्ध होते रहते थे कि हज़ारों लाखों व्यक्ति मर जाते थे और इस प्रकार खाद्य-वस्तुओं कि मांग और उपलब्धि में एक अप्रत्यक्ष सन्तुलन स्थापित हो जाता था। परन्तु अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् राजनैतिक अवस्था बदल गई, आन्तरिक युद्ध प्रायः समाप्त हो गये और शान्ति तथा विलास का एक ऐसा साम्राज्य स्थापित हो गया जिसके फलस्वरूप दिन प्रति दिन भारत की जनसंख्या बढ़ती गई। पिछली जनगणनाओं की रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि भारत की जन संख्या पिछले वर्षों में दुगुनी से भी अधिक बढ़ गई है, जब कि खाद्य उत्पादन जनसंख्या बढ़ने की गति के अनुपात का आधा भी नहीं बढ़ा।

गत दो महायुद्धों ने भारत की खाद्य समस्या को बिगाड़ने में और भी योग दिया। महायुद्धों के दौरान में आयात बन्द रहे और गृह-उत्पादन का अधिकाँश भाग सेना की मांग पूरी करने के लिए देना पड़ा और जो बचा वह नागरिक-उपभोग के लिए पर्याप्त न था।

१९४३ का बंगालका भयंकर अकाल इस युद्ध-जनित खाद्याभाव का ज्वलंत उदाहरण है। इस अकाल में अनुमानतः १५ लाख व्यक्ति काल-कलवित हो गये और जो शेष बचे वे भी अर्द्ध-मृत थे।

खाद्य समस्या को सबसे बड़ा धक्का भारत-विभाजन से लगा।

राजनैतिक दृष्टि से चाहे विभाजन भारतीय स्वतंत्रता का फल लाया, किंतु आर्थिक और समाजिक रूप से यह भारत के लिए हानि-कारक ही नहीं अस्वास्थय कर ही रहा है।

योजना आयोग के शब्दों में वर्तमान खाद्य संकट का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है। "The food problem has existed for about two decades. The separation of Burma reduced internal supplies of food-grains by 1·3 million tons, the Partition in 1947 by a further ·77 million tons. The lesson of the Bengal famine and even more, of recent events is that India's food problem is not a temporary disequilibrium between supply and demand; it is a menifestation of the continually growing pressure of population on food supply."*

अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान समय में ४० लाख टन अधिक खाद्यान्नों की आवश्यकता है। योजना आयोग ने अनुमान लगाया है कि वर्तमान समय में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धि १३·६७ औंस है और इसी आधार पर १९५६ में उपभोग स्थिर रखने के लिये वर्तमान खाद्य उपलब्धि से ७० लाख टन अधिक खाद्यान्नों की आवश्यकता होगी और यदि प्रति व्यक्ति उपलब्धि की औसत बढ़ाई जाये तो और भी अधिक आवश्यकता होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खाद्यावस्था दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही है। प्रति एकड़ खाद्य उत्पादन दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है:—

---

*The First Five Year Plan:—A Draft Outline. भाग ३, अध्याय १, पृष्ठ ६७

प्रति एकड़ उपज (पौंड)

	१९१७–१८	१९१९–२०	१९२४–२५	१९२९–३०	१९३४–३५	१९४७–४८	१९४८–४९
चावल	९९४	९०३	८५५	८६५	८२६	७८४	७६१
गेहूँ	६२६	७५७	६२५	७४१	६३२	६५१	६२४
गन्ना	२,६९७	२,५३४	२,२५२	२,४५३	३,३०८	३,४९९	३,३३६
रूई	६४	९९	९१	८१	८२	७७	६७
जूट	१,११३	९५३	१,१४८	१,२८४	१,३२३	१,०४०	१,०५८

इस प्रति एकड़ उत्पादन की तुलना दूसरे देशों से करने पर हमें पता चलता है कि दूसरे देश इस क्षेत्र में हमसे बढ़े चढ़े हैं, जैसा निम्न तालिका द्वारा दिखाया गया हैः—

	गेहूं	चावल	मक्का	गन्ना	रुई
मिश्र	१,९१८	२,९९८	१,८९१	७०,३०२	५३९
जर्मनी	२,०१७	——	२,८२८	——	——
इटली	१,३८३	४,५६८	२,०७९	——	१७०
जापान	१,७१३	३,४४४	१,३९२	४७,५३५	१९६
जावा	—	—	—	११३,५७०	—
चीन	९८९	२,४३३	१,२८४	—	२०४
भारत	६६०	१,२६०	८०३	३४,९८८	८९

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत का प्रति एकड़ उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है, जब कि कितने ही देश क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत से बहुत छोटे हैं।

इस प्रकार जहां खाद्य-आयात के आंकड़े बढ़ रहे हैं वहां खाद्य वसूली के दिन प्रति दिन घट से रहे हैं। निम्न तालिका स्पष्टीकरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है :—

(००० टन)

वर्ग	आयात[1]	आयात[2]	वसूली[1]	वसूली[2]
१९४४	——	६४९	——	——
१९४५	——	८५०	——	——
१९४६	——	२,२५०	——	——
१९४७	२,३६९	२,३३०	४,२११	——
१९४८	२,८३६	२,८४०	२,६६३	——
१९४९	३,६१९	३,७००	४,६१०	——
१९५० [3]	२,१६५	——	४,६३४	——
१९४५—४७	——	——	——	४१५१
१९४६—४८	——	——	——	४२३६
१९४७—४९	——	——	——	२५९९

अनुमान लगाया गया है कि इन आयात का मूल्य चुकाने के लिये १९४९-५० में १२२.६६ करोड़ रुपये तथा १९५०-५१ में १०६.७ करोड़ रुपये देने पड़े। स्पष्ट है कि ये आयात हमें बहुत महंगे पड़ रहे हैं और हमारे राष्ट्रीय साधनों पर एक बोझ ही नहीं, इस बात के भी प्रमाण हैं कि खाद्यावस्था बहुत जटिल होती जा रही है। हाल ही में लिया गया अमरीकी-खाद्य-ऋण इस बात का ताज़ा और प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उत्पादन में कमी[4] और अन्य प्राकृतिक आपत्तियोंके अतिरिक्त खाद्याभाव के निम्न पहलू और हैं:—

(१) साधारण वर्षों में हमें अनुमानतः ३० लाख टन अन्न का

[1] आंकड़े The First Five Year Plan. A Draft Outline से उद्धृत।

[2] आंकड़े डा० सी० एन० वकील लिखित "Economic Consequences of Divided India" से उद्धृत।

[3] अनुमानित आंकड़े।

[4] जैसा खाद्य उत्पादन के निम्न कोष्ठकों (Index) से स्पष्ट है:—

(आधार १९३६—१९३९ = १००)

१९३९—४०	१९४१—४२	१९४३—४४	१९४५—४६	१९४७—४८
९९	९५	१०६	९४	१००

१९४०—४१	१९४२—४३	१९४४—४५	१९४६—४७	१९४८—४९
९८	१०२	१०१	९६	९४

आयात करना पड़ता है और अन्य आपत्तिकालीन समय में अधिक की आवश्यकता पड़ती है ।

(२) गत वर्षों में अनुपजाऊ और बेकार ज़मीन की तादाद बढ़ती जा रही है ! अनुमान है कि करीब एक करोड़ भूमि अनुपजाऊ बनाई जा चुकी है। बैल, कृषि के औज़ारों तथा श्रमिकों को प्राप्त करने में भी कठिनाइयां पड़ रही है।

(३) हालांकि कृषि के अन्तर्गत भूमि में कोई कमी नहीं आई है और पिछले १२ वर्षों से १६७० लाख भूमि ही जोती जाती रही है किन्तु उत्पादन ४६० लाख टन से ४२० लाख टन तक गिर गया है। इसका कारण खाद तथा अच्छे बीजों की कमी है।

इस प्रकार खाद्यावस्था में बराबर भीषणता छाई जा रही है ! सरकार ने इसे सुधारने के लिए बहुत प्रयत्न किये। 'अधिक उपजाओ आन्दोलन' इस दिशा में पहला कदम था। सरकारी अधिकारियों की बार-बार की अपील का भी कोई विशेष परिणाम न निकला। "अधिक उगाओ आन्दोलन" के फलस्वरूप खाद्य उत्पादन में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

अन्न वसूली की योजना भी अधिक तो सफलता प्राप्त नहीं कर सकी पर जैसा कि पीछे दी गई तालिका से स्पष्ट है अन्न वसूली के परिमाण में उन्नति हुई है। इस प्रगति को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

खाद्य मन्त्री श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुन्शी की "वृक्ष लगाओ" योजना केवल वर्षा और छाया के लिए ही अच्छी है, खाद्य-समस्या का इससे कोई हल नहीं निकलता। यदि इसे एक "मूर्खतापूर्ण योजना" कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

विदेशों से खाद्य-ऋण लेने में भारत सरकार को अवश्य सफलता मिली है। अभी हाल में ही अमरीका से २० लाख टन का ऋण लिया गया है। रूस से भी ५ लाख टन अन्न का व्यापारिक

समझौता सम्पन्न हो चुका है और चीन तथा दूसरे अन्य देशों से भी खाद्यान्न प्राप्त करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं! लेकिन यह कदम स्थायी नहीं और न ही खाद्य समस्या का इससे कोई स्थायी हल निकल सकता है।

"एक सप्ताह में एक दिन व्रत करो" और "एक समय खाओ" अपीलों से भी कोई क्रियात्मक फल नहीं निकलता, क्योंकि साधारण जनता का नैतिक और सामाजिक स्तर इतना ऊंचा नहीं है कि वह इन अपीलों का ध्यान दे और इन का पालन करे। इस प्रकार ये अपीलें केवल "कागजी अपीलें" (Blue Print) मात्र रह जाती हैं।

थोड़ी हद तक सरकार का केवल एक ही प्रयत्न सफल हुआ है और वह है, "अधिक उगाओ प्रतियोगता।" हाल ही में दक्षिण तथा उत्तर प्रदेश के तीन कृषकों को अखिल भारतीय फसल उत्पादन प्रतियोगिता में पुरस्कृत किया गया है, जिन्होंने उत्पादन के नये रिकार्ड स्थापित किये हैं:—

(१) सेलम ज़िले के थट्टमपट्टी ग्राम के एक व्यक्ति ने एक एकड़ में १२००० पौंड धान उत्पन्न किया है और इस प्रकार विश्व भर के रिकार्ड को तोड़ा है।

(२) हापुड़ के एक दूसरे व्यक्ति ने एक एकड़ में ७२३ मन आलू पैदा किया है,

तथा (३) हापुड़ के ही एक दूसरे व्यक्ति ने एक एकड़ में ५६ मन गेहूं पैदा किया है।

साधारणतः यह तीनों फसलें औसतन एक एकड़ में क्रमशः ६०७ पौंड १८० मन तथा १.५ मन होती हैं।

ऐसी प्रतियोगितायें अवश्य ही खाद्य-उत्पादन को बढ़ाने में सहायता देते हैं, क्योंकि इस प्रकार की प्रतियोगिता में अनेकों व्यक्ति भाग लेते हैं और इस प्रकार एक ओर जहां उत्पादन बढ़ता है, वहाँ दूसरी ओर अन्य लोग इन व्यक्तियों के अनुभवों से लाभ

उठाकर अपना उत्पादन भी बढ़ाते हैं।

इस अन्तिम उपाय के अतिरिक्त सरकार की समस्त योजनायें असफल ही रही हैं। इसका कारण है सरकारी अफ़सरों की अकर्मण्यता, बेईमानी तथा उनमें फैला हुआ भ्रष्टाचार। इस कारण अनेकों सुप्रयत्न भी असफल हो जाते है। गत दो वर्षों में आई प्राकृतिक आपत्तियों ने भी इस असफलता में पूर्ण योग दिया और नागरिकों की असहयोगपूर्ण मनोवृत्ति तो कटे पर नमक का कार्य करती है। इस प्रकार अधिकतर सरकार को निराशा का मुंह ही ताकना पड़ा है।

आज आवश्यकता इस बात कि है कि हमें खाद्य के मामले में आत्मनिर्भर बनना चाहिए। बिना इस स्वात्म-निर्भरता के हमारे ही देश की क्या, किसी भी देश की आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती। खाद्य और कृषि समस्याओं के सुलझते ही हमारी अन्य आर्थिक समस्यायें अधिक सरलता और सहजता से सुलझाई जा सकेंगी।

कुछ प्रयत्न इस दिशा में और भी करने पड़ेंगे। हालांकि योजना आयोग ने १९५६ तक पूर्ण करने के लिए निम्न लक्ष्य रखे हैं :—※

(आंकड़े ००० में)

खाद्यान्न (टन)	...	...	७,२००
जूट (४०० पौंड की गाठें)	...	...	२,०९०
रुई (३९२ पौंड की गाठें)	...	...	१,२००
तेलों के बीज (टन)	...	...	३७५
चीनी (गुड़, टन)	...	...	६९०

किंतु ये लक्ष्य जब ही प्राप्त किए जा सकते हैं, जब हम सब इस कार्य में सरकार को सहयोग दें। "भूमसेना" के निर्माण द्वारा कृषकों को शिक्षा देनेमें सहायता दी जा सकती है और जैसी श्री जवाहर लाल नेहरू की भी इच्छा है, शिक्षित वर्ग को स्वयमेव ही खेतों पर कुछ समय तक कार्य करना चाहिए, या ऐसा करने तक उन्हें डिग्रियां न दी जायें। आयातों का भरोसा हमें अधिक से अधिक

※ The First Five Year Plan, A Draft Outline, भाग २, पृष्ठ ४५.

छोड़ कर, स्वयं उत्पादन करके ही खाना चाहिए और यही हमारा नारा भी हो।

किसी सीमा तक योजना आयोग की रिपोर्ट में दिए गए सुझाव देश के लिए बहुत अच्छे हैं और उन्हें मानने में ही हमारा कल्याण भी है।

राष्ट्र की इस समस्या को सुलझाने में प्रत्येक देशवासी को योग देना ही उनका परम धर्म और कर्तव्य है।*

(श्री कुमार 'नीरस')

---

* समस्त अन्य आंकड़े साप्ताहिक "Eastern Economist" की त्रैमासिक पत्रिका "Records & Statistics" के विभिन्न अंकों से लिएगये हैं।

मार्शल योजना

युद्ध का परिणाम क्या होता है, इस चिरंतन सत्य पर कुछ विशेष प्रकाश डालना व्यर्थ होगा। युद्ध एक ऐसा पथ है जिस पर मानव को चलने के लिये विवश किया जाता है। न जाने क्यों इस लक्ष्य पर पहुंचने के लिये उसके चरण शीघ्रता से बढ़ते हैं। युद्ध बन्द होते ही वह अपना सब कुछ भुलाकर अन्त तक पहुंचने का प्रयत्न करता है; भले ही इसमें उसका अन्त ही निहित हो। प्राचीन युद्धों और उससे होने वाली क्षति का इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ समर्थन करता है, परन्तु आगे बढ़ने वाले मानव समाज के लिये भूतकाल का कोई महत्व नहीं। पीछे मुड़कर तो मानों मानव ने देखना सीखा ही नहीं है। आखिर देखे भी क्यों? वह तो प्रलय काल से पहले ही अपने लक्ष्य पर पहुंचना चाहता है। युद्ध के कारण उत्पन्न हुई अराजकता उसके आगे बढ़ने के दृढ़ निश्चय को समाप्त नहीं कर सकती। इसे मानव समाज का भाग्य या विधि का विधान कुछ भी कह लीजिये निर्णय एक ही होगा। जैसे ही युद्ध की चिनगारियाँ खण्डहरों में उठने वाली चीत्कारों के साथ समाप्त हो जाती हैं वह अपने आप को भुलाने की चेष्टा करता है। विधवाओं के मर्मस्थल से निकली हुई कसक, बच्चों के आँसुओं में सुप्त पिता व भाई का प्यार सब समय के साथ समाप्त होजाते हैं। वही बालक जो अपने पिता व भाई के मरने के कारण युद्ध से घृणा करने लगा था अपनी माता के आशीर्वाद से उत्साहित होकर युद्ध के मार्ग की ओर बढ़ता है। प्रेयसि का प्यार उसे एक नवीन उत्साह देता है, कि वह मानवता के विनाश में सहयोग दे।

यद्यपि मानव युद्ध से ऊबा नहीं है, तब भी वह उससे उत्पन्न [illegible]

पर कि युद्ध के कारण महान धन, जन की हानि हुई थी। पूर्ण रूप में देश के आर्थिक व सामाजिक तन्त्र की बिखरती हुई कड़ियां जोड़ने में संलग्न हैं। कृषि योग्य भूमि, यातायात के साधन सब में मानव निर्माण के लिए प्रयत्नशील है। मशीनों और यन्त्रों में पुनः जीवन संचार करने की चेष्टा की जा रही है। व्यापारिक तन्त्र व अन्य आवश्यक वस्तुओं का विकास भी पीछे नहीं रहा है। युद्ध - काल में पूंजीगत हानि को पूरा करने के लिये देश के आयात बढ़ाने की चेष्टा की जा रही है। आयातों का मूल्य चुकाने के लिये आय के साधन बढ़ाने की चेष्टा हो रही है। अनेकों राष्ट्रीय मुद्राओं के अवमूल्यन स्थिति में सुधार के लिये किये गये हैं परन्तु मुद्रा-प्रसार ने स्थिति को विषम कर दिया है अतएव देश के संचित स्वर्ण कोष और विदेशी सिक्यूरिटीज को आयातों का मूल्य अदा करने के लिये, प्रयुक्त किया गया है।

दिवालिया होने का निजी अनुभव सब को होना इतना ही कठिन है जितना कि परमात्मा के दर्शन। दिवाला निकल जाने के पश्चात् अपना धन वसूल करना इतना ही कठिन है जितना कि बिना अध्ययन के परीक्षा में उत्तीर्ण होना। दिवालिया मनुष्य हो या उसका समूह (देश) सबके लिये अभाव का विषय बन जाता है। इसी प्रकार दिवालिया देशों के पास आयात की गई वस्तुओं के मूल्य चुकाने के लिये भी धन नहीं था। संयुक्त राज्य अमरीका की स्थिति भी कुछ स्पष्ट नहीं थी, क्योंकि वह अन्य देशों से आयात तो करना चाहता था परन्तु परेशान था अपनी मुसीबत से नहीं, उनकी मुसीबत से। प्रश्न उठता है आखिर किस प्रकार ? उत्तर बिलकुल स्पष्ट है कि उन देशों पर अमरीका द्वारा दी गई वस्तुओं का मूल्य चुकाने के लिये धन नहीं था। शंका उठ सकती है कि जब दोनों दल (Parties) माल लेना चाहते थे तो अदायगी सहल थी। परन्तु इसमें भी एक गुत्थी है कि अमरीकी आयात किसी देश विशेष के लिये निर्यात की वस्तुओं की अपेक्षा कम ही होते थे।

यदि समस्या इतने तक ही सीमित रहती तो परिणाम भी

गम्भीर न होता परन्तु सरकारों को विदेशी मुद्रायें भी कठिनता से प्राप्त होती हैं। विदेशी कोषों में सट्टेबाजी इत्यादि करके समस्या को विषम स्वरूप दे दिया गया है। अभी चन्द दिन हुए ब्रिटेन ने इस दिशा में कड़ा कदम उठाया है। उसने डालर-स्टर्लिंग विनिमय दर के अन्तर को घटाने के लिये प्रगतिशील व्यापारिक प्रणाली को अपनाया है।

अमरीका युद्ध स्थल से दूर होने के कारण उसकी विभीषिकाओं से अछूता ही रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अन्य देशों की औद्योगिक समस्या के साथ साथ खाद्य समस्या को भी सुलझाने में सहायता देगा। नेता बनने की इच्छा बड़ी प्रबल होती है, अमरीका अपने इस लोभ को संवरण न कर पाया है। इसे उसकी सदाशयता अथवा मूर्खता कुछ भी कहकर पुकारा जाये। अपने धन को सहायता के रूप में वह अन्य देशों को दे रहा है। धन देने का एक निहित स्वार्थ भी है। वह यह कि साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव ने उसकी नींद में बाधा डाल दी है। अभी हाल में अमरीका के एक बैंकर ने इस दिशा में स्पष्ट चेतावनी दी थी कि यदि अमरीका इसी प्रकार स्थानीय कर दाताओं पर निरन्तर बोझ डालकर धन को विदेशी सहायता के लिये प्रयुक्त करता रहा तो वह दिन दूर नहीं जबकि करदाता उसकी कर प्रणाली को समाप्त करने में सहयोग दें। निम्नांकित खाद्य तालिका से स्थिति और भी स्पष्ट हो जायेगी:—

* विभिन्न देशों में खाद्य निर्यात के आंकड़े

	१९३४-३८	१९४७-४८
सुदूर पूर्व	१८ प्रतिशत	४ प्रतिशत
योरोप (रूस के अतिरिक्त)	३० ,,	१३ ,,
अमरीका और कनाडा	१८ ,,	४६ ,,
लैटिन अमरीका	२२ ,,	२४ ,,
आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड	१० ,,	११ ,,
अफ्रीका व समीप पूर्व	११ ,,	२ ,,

* डा० बी० एन० गांगुली की पुस्तक अवमूल्यन (Devaluation) से उद्धृत।

* औद्योगिक उत्पादन १९४७

समस्त संसार	युद्ध पूर्व स्तर से २५ % अधिक
अमरीका	युद्ध पूर्व स्तर से १७० % अधिक
शेष संसार	युद्ध पूर्व स्तर पर ही

अमरीका ने अपनी सीमायें इतनी विस्तृत करली हैं कि विश्व का एक बड़ा भाग (साम्यवादी रूस को छोड़कर) उसके द्वारा दी जाने वाली वस्तुओं पर निर्भर है। आस्ट्रेलिया, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड इत्यादि देश भी जिन्होंने युद्ध काल में काफी उन्नति की थी 'डालर साम्राज्य' के अन्तर्गत आ गये हैं। डालर साम्राज्य का अन्य रूप डालर संक्रमण है।

१९४७ का उत्तरार्द्ध डालर संक्रमण का सबसे नाजुक समय था। भय था कि व्यापारिक चक्रों की गतिविधि के कारण अर्थ व्यवस्था समाप्त हो जायेगी परन्तु स्थिति में कुछ सुधार हुआ। सुधार क्या? अमरीका की निर्यात बचत स्थिति ही डगमगा गई।

(सुविधा के लिये १९३७ के वर्ष को प्रारम्भिक माना गया है।)

* निर्यात

१९३७ = १००

१९४७ द्वितीय चतुर्मास	२६३ प्रतिशत
१९३८ पूर्वार्द्ध	२०३ ,,
१९४८ तृतीय चतुर्मास	१८३ ,,

आयात

१९४७ पूर्वार्द्ध	९६ प्रतिशत
१९४८ ,,	१०६ ,,

निर्यात बचत (दस लाख डालरों में)

१९४७ तृतीय चतुर्मास	२०६१
१९४८ ,, ,,	११६५

* डा० बी० एन० गांगुली की पुस्तक अवमूल्यन से उद्धृत।

इसलिये ऐसा प्रतीत होता था कि भविष्य अन्धकारमय है और भयानक आर्थिक संकट संयुक्त राज्य अमरीका में सदल-बल प्रवेश करना चाहता है। इस समस्या के सुलझाने के लिये केवल एक ही मार्ग शेष था कि युद्ध से क्षत विक्षत हुए देशों में निर्माण कार्य प्रारम्भ किया जाये। जिससे कि उन्हें कुछ समय पश्चात् बाह्य सहायता की आवश्यकता प्रतीत न हो।

मार्शल योजना का जन्म

अमरीका इस आर्थिक संकट को अधिक नहीं पनपने देना चाहता था क्योंकि उसके साथ साम्यवाद के विकास का भी भय था। इस आशंका को ध्यान में रखते हुए भूतपूर्व अमरीकी राज्य मन्त्री श्री जार्ज सी० मार्शल ने ५ जून १९४७ को जन साधारण का ध्यान इस समस्या की गम्भीरता की तरफ आकृष्ट किया। उन्होंने समस्त यूरोपीय देशों का साम्यवादी प्रभुत्व को रोकने में सहायता देने के लिये आह्वान किया। रूस पर स्पष्ट रूप से अमरीका अपना भय प्रकट नहीं करना चाहता था। अतएव उसको भी पैरिस सम्मेलन में ब्रिटेन फ्रांस प्रभृति देशों के साथ बुलाया गया। अमरीका का 'कूटनीतिक मज़ाक' स्थाई न रह सका और रूस ने इस सम्मेलन के मध्य में ही बहिष्कार कर दिया। कामिन्फार्म के अन्तर्गत् अन्य यूरोपीय देशों ने भी रूस को इस बहिष्कार में सहयोग दिया। यूरोपीय आर्थिक सहयोग समिति के निर्माण के पश्चात् इस संस्था (O. E. E. C.) को पूर्ण रूप में स्थापित कर दिया गया।

योजना का क्रियात्मक रूप

यह योजना डालरों को विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त करने का एक मार्ग है। अनुमान है कि ३० जून १९५१ तक यह योजना १२ खरब डालर उपलब्ध करेगी। यूरोपीय पुर्ननिर्माण कार्यक्रम में लगाये जाने वाले धन का अनुपातिक भार इस प्रकार होगा:—

अमरीका— २५ प्रतिशत।

विभिन्न यूरोपीय देश— ७५ प्रतिशत।

आर्थिक सहयोग व्यवस्था (E. C. A.) के कार्य संचालन के लिये यूरोपीय देशों के करों के १ प्रतिशत का तिहाई भाग अर्थात् '००३६ प्रतिशत ही राज्य को देना होगा। कार्यक्रम (पुर्ननिर्माण कार्य) के संचालन के लिये एकत्र किये गये धन की स्वामिनी अमरीकी कांग्रेस होगी। आर्थिक सहयोग व्यवस्था के समस्त महत्वपूर्ण फैसले वाशिंगटन में होते हैं। यह व्यवस्था डालर की खरीदारी के लिये ऋण-दात्री संस्था (Credit Agency) का कार्य भी करती है। इस योजना के अन्तर्गत् दो प्रधान कार्यालय हैं, एक वाशिंगटन में दूसरा पैरिस में। इसकी शाखायें विभिन्न देशों में हैं जैसा कि १७३ पृष्ठ पर दी गई तालिका से स्पष्ट है।

इस योजना के अन्तर्गत् प्रत्येक सदस्य देशों के प्रस्ताव यूरोपीय आर्थिक सहयोग संस्था को भेजे जाते हैं। यह संस्था समस्त प्रभावित देशों के लिये सम्पूर्ण योजना के साथ साथ भागों में भी योजना का विभाजन करती है। यदि फ्रांस निवासी कोई व्यक्ति एक ट्रैक्टर क्रय करना चाहता है तो उसे उसका मूल्य अपने देश की सरकार को देना होगा। स्थानीय सरकार इसकी सूचना आर्थिक सहयोग संस्था को देगी। यह संस्था खरीदार के लिये डालरों का प्रबन्ध करके उन्हें अमरीका निर्माता को भुगतान में दे देगी। परन्तु फ्रांस की सरकार को ट्रैक्टर का मूल्य अपनी मुद्रा के एक विशेष कोष में जिसे 'सहायक-कोष' (Counterpart Fund) का नाम दिया गया है, उसमें संचित करना पड़ेगा।

मार्शल योजना का लाभ उठाने वाले प्रत्येक देश को इस कोष की समस्त आय का ५ प्रतिशत आर्थिक सहयोग संस्था को देना होगा। यह रकम इस संस्था का पारिश्रमिक होगी। कोष का शेष ९५ प्रतिशत आन्तरिक अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिये प्रयुक्त किया जायेगा। इस धन को विभिन्न देश भिन्न-भिन्न उपयोग में लाते हैं—

नारवे— मुद्रास्फीति रोकने के लिये।

ब्रिटेन— " " "

यूनान— गुरिल्ला युद्ध से पीड़ित विस्थापितों को बसाने के लिये,

मार्शल योजना से प्रभावित देश

- आर्थिक सहयोग व्यवस्था (वाशिंगटन) [Economic Co-operation Administration (Washington)]
  - आर्थिक सहयोग व्यवस्था (पैरिस) [Economic Co-operation Administration (Paris)]
    - आस्ट्रेलिया
    - बेल्जियम, लक्ज़मबर्ग
    - डेनमार्क
    - फ्रांस
    - जर्मनी का संघीय गणतन्त्र
    - यूनान
    - आइसलैंड
    - आयरलैंड
    - इटली
    - नीदरलैंड
    - नार्वे
    - पुर्तगाल
    - स्वीडन
    - ट्रीस्ट
    - टर्की
    - ब्रिटेन
    - स्विटज़रलैंड

तथा भूमि सुधार इत्यादि रचनात्मक कार्यों में।

इटली— जंगल बनाने तथा बंजर भूमि को कृषि योग्य भूमि परिणत करने के काम में लाया जाता है।

इस धन को प्रयोग में लाने से पहले आर्थिक सहयोग की व्यवस्था करने वाली संस्था की आज्ञा लेना आवश्यक है। अमरीका यदि किसी योजना को व्यर्थ समझे तो अपने निषेधाधिकार का भी प्रयोग कर सकता है।

योजना के उद्देश्य

मार्शल योजना को प्रारम्भ करने के आधारभूत सिद्धान्त यह हैं:—

(१) डालर की कमी को पूरा कर अन्तर्राष्ट्रीय संक्रामक अव्यवस्था को दूर करना।

(२) अमरीकी माल का प्रवाह मार्शल योजना से लाभ उठाने वाले देशों में जारी रखना।

(३) अमरीका स्थानीय बेकारी को दूर करने के लिये भी अमरीकी माल बाहर के देशों में अधिक से अधिक बेचना चाहता है। इस प्रकार अमरीकी उत्पादकों व शेयर होल्डरों को काफी लाभ होता है।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सुलभ बनाना और मुद्रा विनियम की कठिनाई दूर करना। चुंगी की दर कम करके अमरीकी माल को कम कीमत पर उपभोक्ताओं (विदेशी) के लिये उपलब्ध करना।

(५) विभिन्न समझौतों और योजनाओं के द्वारा व्यक्तिगत पूँजी को उद्योगों में लगाने के लिये प्रोत्साहन देना।

(६) मुद्रा स्फीति को कम करके रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाना।

(७) स्वास्थ्य, मकान, कृषि, उद्योग, यातायात, शक्ति सम्बन्धी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक समस्याओं को सुलझाना।

अन्त में

मार्शल योजना का अध्ययन करने वाले प्रत्येक मननशील व्यक्ति को, यदि वह मस्तिष्क का संतुलन स्थाई रख सका है तो, अनुभव होगा कि यह योजना युद्ध से पीड़ित राष्ट्रों को फिर से युद्ध के लिये उद्यत करने के लिये बनाई गई है। इसमें अमरीकी स्वार्थों की ही प्रमुखता है। मार्शल योजना को यदि 'आर्थिक साम्राज्यवाद' (Economic Imperialism) की रूप रेखा कह कर पुकारा जाय तो अधिक उचित होगा। इस योजना का समर्थन इसी रूप में करने वाले कहते हैं कि बिना उस देश (जिसको सहायता दी जा रही है) की सहायता के यह कार्य असंभव है। अतएव इसे आर्थिक साम्राज्यवाद की योजना कहना उचित न होगा। उनके कथन को केवल इतने ही अंश में स्वीकार करने में आपत्ति किसी को न होगी, परन्तु इस की तह तक पहुँचने से पहले ही ज्ञात हो जायेगा कि युद्ध पीड़ित राष्ट्र की जनता को जीवन-यापन सामग्री की आवश्यकता होती है फिर चाहे उसका स्रोत कहीं भी हो। अमरीकी समर्थकों का यह कथन कि अमरीका अपने देश की भांति ही इन युद्ध पीड़ित राष्ट्रों की उन्नति चाहता है, हमें तो सत्य की अवहेलना मात्र ही प्रतीत होता है। अमरीकी सीनेट में दिये गये एक प्रमुख सीनेटर के भाषण से (जिसको पत्रों में प्रकाशित होने से रोका गया था, परन्तु फिर भी प्रकाशित हो ही गया) स्थिति भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है। उक्त सीनेटर का कथन है, 'हम धन दे सकते हैं। तोपों का चारा बनने के लिये अपने सिपाही नहीं।" ('We can supply gold but not army as fodder for cannons')

(श्री जगदीश प्रसाद 'रवि', एम० ए०)

नैपाल में परिवर्तन

भारत की उत्तरी सीमा पर होने वाली घटनाओं में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। तिब्बत के धार्मिक प्रदेश में साम्यवादी चीन की सेनायें प्रवेश कर चुकी हैं। नैपाल के प्रमुख शासक ने प्रधान मंत्री को जो कि राणा परिवार से सम्बन्धित हैं—अपना पद छोड़ने के लिये विवश किया है। शताब्दियों तक बाह्य हस्तक्षेप से सुरक्षित रहने वाला नैपाल जिस पर ब्रिटिश सरकार भी अधिकार न करसकी थी, आज आन्तरिक विद्रोह के कारण संसार के लिये एक पहेली बन गया है। पिछड़ी हुई जनता ने वहां पर अपने एक शासक वर्ग के प्रति विद्रोह कर दिया है, जिसको कि समस्त देशों में आश्चर्य के साथ देखा जा रहा है। तिब्बत, कोरिया और हिन्दचीन के समान नैपाल आज की राजनीति के लिये एक कसौटी है। नैपाल में हो रही घटनाओं के समझने के लिये हमें इसके प्राचीन इतिहास को देखना होगा, क्योंकि इस प्राचीनतम राज्य के विद्रोह की जड़ में जनता की भावना है, जो कि परिस्थितियों पर निर्भर रहती है।

धार्मिक प्रधानता

नैपाल में हिन्दू व बौद्ध धर्म प्रचिलित हैं। धर्म के नाम पर जनता का शोषण किया जाता है। राज्य का एक वर्ग विशेष ही शक्ति सम्पन्न है। प्राय १७७० ई० में यहाँ पर ईसाई प्रचारकों पर पाबन्दी लगा दी गई थी, क्योंकि उनके आगमन के पश्चात ही ईस्ट इन्डिया कम्पनी की सेनाओं ने नैपाल पर आक्रमण किया था। १८१६ में अंग्रेजों ने लड़ाई का क्षेत्र जो कि मलेरिया का स्थान है, गोरखों से छीन लिया, किन्तु १८५७ के विद्रोह में गोरखों द्वारा सहायता करने पर उन्हें वापस दे दिया गया। गत दो महायुद्धों में भी गोरखों ने ब्रिटिश सरकार की सहायता की है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से आज तक भारत सरकार नैपाल के साथ अच्छे सम्बन्ध

बनाये हुए है। आज भी ब्रिटिश सेना में गोरखों की संख्या प्रायः १० हज़ार है जो कि सिंगापुर और मलाया में जनता का विद्रोह दबाने के लिये प्रयुक्त किए जा रहे हैं। काश्मीर में भी आक्रांताओं को भगाने के लिये गोरखा सैनिक निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रायः २० वर्षों तक सेना में कार्य करने के पश्चात पुराने सैनिकों के स्थान पर नये भरती किये जाते हैं। इन सैनिकों को वीरता के कारण अनेकों बार विक्टोरिया क्रास ब्रिटिश शासकों ने प्रदान किया था। भारत सरकार द्वारा भी इन वीर सैनिकों को परमवीर-चक्र इत्यादि से विभूषित किया जा चुका है। गोरखे जब कभी सेना से देश लौटते हैं, तो उन्हें प्रचलित हिन्दूधर्म के अनुसार समुद्री यात्रा करने का प्रायश्चित करना पड़ता है। नैपाल राज्य का प्रत्येक नागरिक सैनिक होता है, वैसे नियमित सेना की संख्या प्रायः ४५ हज़ार है जो कि प्राचीन व नवीन सब प्रकार के अस्त्र प्रयोग करती है।

शिक्षा का अभाव

राज्य में शिक्षा व आवागमन के साधनों का अभाव है। राज्य में सामन्त शाही का बोल बाला है तथा इसी कारण जनता का शोषण किया जाता है। राज्य में कुल २२ हाई स्कूल तथा एक कन्या पाठशाला है। विश्व-विद्यालय की शिक्षा का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। राज्य में उच्च शिक्षा अंग्रेजी द्वारा दी जायगी। हस्त कौशल व दस्तकारी की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया जायेगा। यातायात व आवागमन के साधन प्रायः नहीं के बराबर हैं। सड़कें न होने के कारण समान कुलियों द्वारा ढोया जाता है।

स्थानीय राजनीति

महाराज त्रिभुवन ही सर्व प्रथम ऐसे शासक हैं, जिन्होंने कि इस शताब्दि में प्रधान मन्त्री के प्रति विद्रोह किया है। और उनके चंगुल से निकल कर भारत में शरण ली थी। नैपाल के दो शासक परिवारों में राणा परिवार अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता था। भूतपूर्व प्रधान मन्त्री व सेनापति महाराज मोहन शमशेर जंग बहादुर राणा सर्वोच्च प्रतिभा शाली व्यक्ति माने जाते थे। १६२२ में अंग्रेजों द्वारा उन्हें हिज़-हाईनेस की उपाधि दी गई थी।

महाराजा त्रिभुवन

राजा त्रिभुवन ने किन घटनाओं के वशीभूत होकर महलों का परित्याग किया था इसके लिए हमें प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करना होगा। इनका राज्य तिलक ६ वर्ष की अवस्था में सन् १९०८ में किया गया था। शिक्षा का भार राणा परिवार पर छोड़ दिया गया था। अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए एक बंगाली शिक्षक की नियुक्ति की गई, परन्तु सुधार विरोधी राणा परिवार ने एक छोटी सी घटना के कारण उस शिक्षक को निकाल दिया। इन बंगाली महोदय ने राजा को एक पुस्तक ब्रिटेन के वैधानिक सुधारों के विषय में दी थी। इसी कारण यह घटना घटी। इसके पश्चात यह निर्णय किया गया कि हिन्दू राज्य में शासक को केवल संस्कृत ही पढ़नी चाहिए।

जनता के आन्दोलन के कारण जो कि प्रजा परिषद् द्वारा चलाया गया था। राजा के साथ काफी पूछताछ की गई। जिसका कि सेना ने विरोध किया था। इस आन्दोलन के सम्बन्ध में सैकड़ों कार्यकर्ता कैद कर लिए गए और कुछ को फाँसी देकर लाशें राजपथ पर लटका दी गई थीं, जिससे की जनता में भय का संचार हो। राजा द्वारा एक बार कैदियों को जो कि मजदूरों का कार्य करते थे, ६ पैसे प्रति दिन के स्थान पर ५ रुपये प्रति दिन भत्ता देने पर यह नियम बना दिया गया कि बिना प्रधान मन्त्री की स्वीकृति के कोई बिल नहीं बनाया जा सकेगा।

न्याय व नीति के सिद्धान्तानुसार राजा महाशक्तिशाली माना जाता है। उसने दो बार प्रधान मंत्रियों को पद से हटा भी दिया है। प्रथम बार १९०१ में महाराजा त्रिभुवन के पूर्वज द्वारा और एक बार स्वयं १९३१ में महाराज द्वारा तत्कालीन प्रधान मन्त्री रुद्र शमशेर जंग राणा को हटा दिया था। इन सब अधिकारों के होते हुए भी राजा प्रधान मन्त्री का कैदी मात्र ही होता था।

राजनैतिक सुधार

नैपाल में आज मध्य-युगीन सामन्तशाही का अन्त होने जा रहा है। स्वतन्त्रता जनता को पूर्ण रूप में प्राप्त

नहीं हुई है। प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में एक बार भू० पू० प्रधान मन्त्री महाराज शमशेर मोहन ने कहा था, कि "मैं दौड़ पसन्द नहीं करता हूं। प्रजातन्त्र पूर्वी सभ्यता के लिए विदेशी है, इस के लाभ समझने के लिए जनता को समय लगेगा।"

विचार धाराओं के विरोध होने के कारण प्रजा का पक्ष लेनेवाले राजा भारत भाग आये थे। जनता से अत्याचारों से क्षुब्ध होकर राजा को अध्यक्ष मानकर एक समानान्तर सरकार स्थापित करली थी। जनता के विद्रोह में राणा परिवार के अनेकों सदस्यों द्वारा सहयोग दिया गया। राजा त्रिभुवन के स्थान पर उनके ३ वर्षीय पौत्र ज्ञानेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव का राजा घोषित कर दिया गया था। अन्त में भारत सरकार के प्रयत्नों से प्रधान मन्त्री व राजा त्रिभुवन में संधि हो गई। इसके अनुसार नैपाल में एक अन्तरिम मन्त्री - मण्डल बनाने की घोषणा की गई। राजा के नैपाल लौटने के पश्चात् स्थानीय अराजकता को भी दबा दिया गया। राज्य के कांग्रेसी दल जिसके अध्यक्ष मातृकाप्रसाद कोइराला को भी मन्त्री मण्डल में ले लिया गया।

महाराज के राज्य में वापस चले जाने के पश्चात् भी राणा परिवार के प्रति जनता की विद्रोह भावना मिटी नहीं। स्वयं राणा परिवार के अनेकों सदस्यों ने प्रधान मन्त्री का विरोध किया। नैपाल में निहत्थी जनता पर गोलियां चलाई गईं। यह राणाशाही की जनता के लिए अन्तिम सौगात थी। महाराज को बाध्य हो कर राणा शासन को समाप्त करना पड़ा। प्रधानमन्त्री पद से हटते ही पुराने प्रधान मन्त्री बम्बई चले गए हैं और वहीं पर रहने का निश्चय कर लिया है। इस प्रकार उनके अन्तिम स्वप्न भी स्वप्नवत् हो गये हैं।

आज नैपाल उन्नति के पथ पर दौड़ रहा है। राणा परिवार जिसका कि देश की राजनीति में १०२ वर्ष तक प्रभाव रहा था, जनता की मांग के सामने झुक गया है। नवीन मन्त्रीमंडल बनने के पश्चात आशा की जाती है कि जनता की भावनाओं को उचितस्थान दिया जायेगा। अन्यथा किसी समय भी विस्फोट के रूप में वहां की राजनीति भड़क सकती है, क्योंकि जनता की भावना को शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य भी न सहन कर सका था। परिणाम भविष्य के गर्भ में निहित है।

(श्री नीरस योगी)

प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों पर एक दृष्टि।

भारत

शासन प्रणाली—भारत संघ का शासन निम्न प्रकार से हो रहा है।

(क) राष्ट्र का प्रधान।

(ख) राजकीय परिषद्।

(ग) लोकसभा।

राष्ट्र का प्रधान—यह भारतीय संघ का सर्वोच्च शासक है। यह संसद के भवनों द्वारा तथा राज्यों की धारा सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा चुना जाता है। इसकी अवधि ५ वर्ष की होती है। एक ही व्यक्ति का चुनाव दो बार से अधिक नहीं होता। आज कल हमारे राष्ट्रपति (प्रधान) डा० राजेन्द्रप्रसाद हैं।

राष्ट्र के प्रधान को संकट-कालीन अधिकार प्राप्त हैं। वैधानिक शासन के टूट जाने की दशा में सब अधिकार प्रधान को प्राप्त हो जाते है। शासक की बागडोर मन्त्री मंडल के द्वारा होती है और इसके नेताको प्रधान मन्त्री कहते हैं। इसका चुनाव राष्ट्रके प्रधान के द्वारा सम्पन्न होता है। राष्ट्र के प्रधान की इच्छा तक ही मन्त्री मंडल कार्य कर सकता। कानून सम्बन्धी परामर्श देने के प्रधान को एक ऐटोर्नी जनरल तथा आर्थिक हिसाब किताब सम्बन्धी परामर्श

देने के लिए एक ऐडिटर जनरल नियुक्त करने का अधिकार है। राजकीय परिषद् का सभापतित्व करने के लिए तथा प्रधान के कार्य में सहयोग देने के लिए एक उपप्रधान होता है।

राजकीय परिषद्—इस में २५० सदस्य होते है, जिनमें से १५ की नियुक्ति राष्ट्र के प्रधान के द्वारा होती है और शेष निर्वाचित। यह कभी भी भंग नहीं होती है। परन्तु दो दो वर्ष की अवधि बीतने पर इसके एक तिहाई सदस्य अपने स्थान को रिक्त करते रहते हैं।

लोकसभा—इसमें ५०० सदस्य होते है, जिनका निर्वाचन मतदाताओं के द्वारा होता है। इसमें २१ वर्ष का प्रत्येक नर नारी मत देने का अधिकारी होता है। इसकी अवधि ५ वर्ष की होती है। प्रत्येक ५ वर्ष के उपरान्त इसका नया चुनाव होता है। इस के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष इसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। बजट भी इसी गृह में प्रस्तुत होते हैं।

चीन

शासन व्यवस्था—जनता के विद्रोह ने चांगकाई शेक के प्रभुत्व को कुचल कर अकटूबर १६४६ को साम्यवादी नई सरकार की शासन की घोषणा की। अनेक राष्ट्रों ने इस सरकार को मान्यता प्रदान की है। भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने ३१-१२-४६ को चीन को मान्यता प्रदान करते हुए निम्न शब्द कहे—"चीन की सरकार मजबूत है। हम चाहें या न चाहें, पसंद करें या न करें, इसका ढांचा हमारे जैसा हो या न हो, हमें उसे मान्यता देनी ही पड़ेगी। हमें इसके साथ सम्बन्ध स्थापित करने ही होंगे।" चीन की आधुनिक शासन व्यवस्था प्रजातन्त्रात्मक है। इस में चीन को रिपब्लिक घोषित किया गया है।

यह साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, नौकरशाही आदि के विरुद्ध

रह कर चीन की स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्रवाद, शान्ति और एकता के लिये कार्य करती रहेगी। चीन की शासनसत्ता जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में है जिनका निर्वाचन मतदाताओं के द्वारा होता है। यहां पर १८ वर्षीय नर-नारी को मत देने के समान अधिकार हैं।

चीन के विधान के मौलिक अधिकारों में स्त्री पुरुष के अधिकारों की समानता को स्वीकार किया गया है। नारी भी कार्य के करने का मनुष्य के समान ही वेतन पा सकती है। प्रसूता अवस्था में नारी को पूर्ण अवकाश दिया जायेगा और सरकारी अस्पताल से अनेक प्रकार की सुविधायें दी जायेंगी।

मजदूरों के लिये—ये लोग सप्ताह में ४८ घंटे और दिन में ८ घंटे ही काम करेंगे। जीवन-निर्वाह के लिये कम से कम वेतन का आयोजन किया गया है। इस सरकार ने चीन राज्य के प्राचीन फूट के साधनों को मिटा कर उनको समान अधिकार दे दिये हैं। और विदेशी स्वार्थपन को बिल्कुल समाप्त कर दिया है। जनता के संरक्षण को स्वीकार करने के उपरान्त ही विदेशी पूंजी जनता में लगी रह सकती है, अन्यथा नहीं।

इस साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत संस्कृति और शिक्षा पद्धति को भी ऊंचा उठाने की योजना बनाई गई है। इस सरकार के प्रधान श्री माओ हैं। नवम्बर के अधिवेशन में इन्होंने कहा था—'हमारी क्रांति को विश्व की जनता का समर्थन प्राप्त है और समस्त विश्व में हमारे मित्र हैं।"

श्री माओ ने २२ नवम्बर १९४९ को एक विशेष आज्ञा के द्वारा पेकिंग में १२०० वेश्याओं के वेश्यालयों को बन्द करके उनको आजीविका के अन्य सुविधापूर्ण प्रबन्ध कर दिये हैं। इतने पर भी संयुक्त राष्ट्र अमेरीका इस सरकार को मान्यता देने के लिये तनिक भी उद्यत नहीं है।

रूस

शासन प्रणाली—यूनियन आफ सोशलिस्ट रिपब्लिक स्टेट्स

में ११ स्वतन्त्र राज्य हैं। प्रत्येक राज्य अपनी इच्छानुसार यूनियन से पृथक हो सकता है। इस की शासन प्रणाली निम्न प्रकार है :—

१. सुप्रीम कौंसिल　　　　२. व्यवस्थापिका सभा।

(क) कौन्सिल आफ यूनियन। (ख) कौन्सिल आफ नेशनैलिटीज़।

कौन्सिल आफ यूनियन का चुनाव नागरिक करते हैं। कौन्सिल ऑफ नेशनैलिटीज़ में राज्यों की सुप्रीम कौंसिलों के प्रतिनिधि उपस्थित होते हैं। इन दोनों के द्वारा एक बड़ी कौंसिल का निर्वाचन होता है। सुप्रीम कौंसिल के अधिकार असीमित होते हैं। उसके द्वारा नियुक्त किये गये मंत्री मंडल पर शासन की बागडोर रहती है। यह अपने अधिकारों के द्वारा युद्ध करने और मंत्री मंडल के निश्चयों को रद्द कर सकती है। इसके सदस्यों में प्रधान, उपप्रधान, प्रधान मंत्री और इनके अतिरिक्त ३१ और सदस्य होते हैं।

रूस की शासन व्यवस्था साम्यवादी सिद्धान्तों से अनुप्राणित है। साम्यवाद की शाखायें और उपशाखायें रूस के प्रत्येक ज़िले, तहसील और गाँव में विद्यमान हैं। यहाँ की कार्य कारिणी पांच मंत्रियों के द्वारा चलती है। इसका नेता प्रधान मंत्री होता है जिसके हाथ में राष्ट्र की सारी शक्ति होती है। साम्यवादी दल ही यहां के प्रत्येक सरकारी विभाग का निरीक्षण करता है। आजकल रूस की बागडोर अन्ततोगत्वा साम्यवादी दल के प्रधान मंत्री के हाथ में है। जिसका नाम स्टालिन है। यही रूस का सर्वे सर्वा है।

वास्तव में रूस की शासन-व्यवस्था १९१७ के उपरान्त ही कार्य रूप में आई है। इससे पूर्व जार के शासन काल में श्रमिकों को अनेक प्रकार की यातनाओं के द्वारा कुचला जाता था। इस पूंजीपतियों के शासन काल में जनता स्वतन्त्रता के साथ कोई भी कार्य नहीं कर सकती थी। साम्यवादी क्रांति ने इस दशा को पूर्णतया पलट दिया। नई शासन व्यवस्था के अनुसार रूस की जनता स्वतन्त्र है। पूंजीपति का श्रमिक के ऊपर कोई दबाव नहीं रह गया है। १८ वर्षीय प्रत्येक

नर नारी मत देने का अधिकारी है। और २३ वर्षीय प्रत्येक नर नारी सर्वोच्च सोवियट का प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकारी है। आधुनिक शासन में जनता में निर्वाचन के लिये बड़ा उत्साह उत्पन्न कर दिया है।

१९३७ और १९४६ के निर्वाचन में ९६.०८ प्रतिशत तथा ९९.०७ प्रतिशत क्रमशः मतदाताओं ने भाग लिया। यहां का प्रत्येक प्रतिनिधि लेनिन के आदर्शों का अनुकरण करने की शपथ ग्रहण करता है।

रूस में ३ करोड़ ४० लाख छात्र १०० से अधिक भाषाओं में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सन् १९४९ में रूस की सरकार ने शिक्षा के ऊपर ६० अरब ८० करोड़ रूबल व्यय किये थे। आजकल शिक्षा केन्द्रों की संख्या लगभग ८०० के है।

रूस की साम्यवादी सरकार ने स्त्री और पुरुष को एक समान अधिकार दे रखे हैं। प्रत्येक नर नारी की आजीविका व धन्धे का प्रश्न भी सरकार के द्वारा ही हल किया जाता है। इस समय रूस की नारियां निम्न संख्या में निम्नकार्यों में भाग ले रही हैं।

नारियों की संख्या	कार्य का उल्लेख।
२½ लाख	इन्जीनियरिंग और मिस्त्री के कार्यों में
३५ हजार	अनुसन्धान कार्य में।
९½ लाख	सामूहिक कृषि कार्य में।
१५ हजार	कृषि कार्य के निरीक्षण में।
१ लाख २० हजार	सैनिक कार्य में।
६०	स्पेवियर रूस की 'हीरो' बन चुकी हैं।
२७७	सर्वोच्च सोवियट की सदस्या।
५लाख ५६ हजार	स्थानीय सोवियटों की सदस्या।
अनगिनत संख्या में	डाक्टर, वकील प्रोफेसर, जज और वायुयान चालकों का कार्य कर रही है

रूस की इस सफलता ने अब अन्य देशों का ध्यान भी अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है।

फ्रान्स

शासन प्रणाली:—फ्रांस की प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली का आरम्भ १८७० में हुआ जिस की व्यवस्था निम्न लिखित ढंग से की गई है:—

१—प्रतिनिधि सभा:—(क) चैम्बर आफ डेपुटीज़ (ख) सीनेट

२—राष्ट्रपति

१—क) चैम्बर आफ डेपुटीज़ में कुल ६१८ सदस्य होते हैं जिन में से प्रत्येक सदस्य की आयु २५ वर्ष से कम न होनी चाहिये। इस सभा का चुनाव हर चार वर्ष के पश्चात होता है। इस सभा के सदस्यों का वार्षिक वेतन ३२ हज़ार फ्रैंक और रेलवे के पास होते हैं। यह सभा सीनेट से मिलकर राष्ट्रपति का चुनाव करती है।

(ख) सीनेट सभा में कुल ३१५ सदस्य होते हैं। यह आवश्यक है कि सदस्य ४० वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो। सदस्यों का वेतन चैम्बर आफ डेपुटीज़ के सदस्यों के सामान ही होता है। इस सभा का चुनाव ६ वर्ष के लिए होता है और परोक्ष रूप से किया जाता है।

२—राष्ट्रपति के अधिकार सीमित होते हैं। प्रत्येक कार्य उसको सीनेट की सम्मति के अनुकूल करना पड़ता है। उसको किसी भी देश से सन्धि करने का तो अधिकार है पर युद्ध करने का नहीं। उसका वार्षिक वेतन कुल ३६ लाख फ्रैंक होता है, राष्ट्रपति को प्रति ७ वर्ष के पश्चात निर्वाचित किया जाता है।

मन्त्री मण्डल:—देश की शासन व्यवस्था की बागडोर मन्त्री मण्डल के हाथ में ही रहती है। बहुमत से जो नेता चुना जाता है उसे ही राष्ट्रपति अपना प्रधान मन्त्री मानता है। यही प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति की स्वीकृति से अन्य मन्त्रियों को निर्वाचित करता है। प्रत्येक

मन्त्री पर उसके विभाग का भार सौंपा जाता है, जिसका उत्तरदायी वह ही होता है।

ग्रेट ब्रिटेन

शासन प्रणाली:—ब्रिटेन की शासन व्यवस्था पार्लियामेंट और राजा के द्वारा इस प्रकार से होती है:—

१—राजा

२—हाउस आफ कामन्ज़ अथवा लोक सभा } पार्लियामेंट
३—हाउस आफ लार्डज़ अथवा राजकीय-सदन }

१—राजा वंश परम्परा से गद्दी पर बैठता आता है, उसके सर्वाधिकार सीमित होते हैं। वह पार्लियामेंट की सम्मति के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता, वह पार्लियामेंट की इच्छा का विरोध नहीं कर सकता। उसका पार्लियामेंट के साथ सहमत होना आवश्यक है। राजा को प्रोटैस्टैंट मतानुयायी होना चाहिए। जनता द्वारा निर्वाचित नेता को राजा प्रधान मन्त्री मानता है, इसी के द्वारा अन्य मन्त्रियों का चुनाव होता है। राजा का वार्षिक वेतन एक लाख दस हज़ार पौंड और अन्य कर्मचारियों को ३ लाख पौंड मिलता है।

२—लोक सभा— इसमें कुछ ६३५ सदस्य होते हैं। जिनका चुनाव मतदाताओं के द्वारा होता है। २१ वर्ष का प्रत्येक नर नारी मत देने का अधिकारी है। लगभग ७०००० जन संख्या के ऊपर एक प्रतिनिधि होता है। यहां का वार्षिक बजट इसी गृह में स्वीकृत होता है। इसके अधिकार राजकीय सदन से अधिक होते हैं। लोकसभा के द्वारा स्वीकृत बिल स्वीकृत समझा जाता है। इसके प्रत्येक सदस्य को ६०० पौंड वार्षिक वेतन मिलता है। सदस्यों का चुनाव प्रत्येक पांच वर्ष में होता है।

राजकीय-सदन:—यह ७८० धनी और प्रतिष्ठित लोगों की संस्था है। इनका निर्वाचन राजा द्वारा किया जाता है, इनका अधिकारों की अपेक्षा सम्मान काफी होता है।

मन्त्री मण्डलः—ग्रेट-ब्रिटेन के शासन का सारा भार मन्त्री मण्डल पर होता है। बहुमत का नेता प्रधान मन्त्री इस मण्डल के सदस्यों का निर्वाचन करता है और राजा के द्वारा इस मंत्री मण्डल की स्वीकृति होती है। तीन मन्त्रियों का निर्वाचन राजकीय सदन से और शेष का लोक सभा से होता है। प्रधान मन्त्री का वार्षिक वेतन १० सहस्त्र पौंड होता है। यहां के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल हैं। राजा के अधिकारों के सीमित होने से इस शासन प्रणाली को प्रजातन्त्र कहा जाता है।

अमेरिका

शासन व्यवस्थाः—४६ स्वतन्त्र राज्यों का संघ अमेरिका राज्य के मामलों में पूर्णतया स्वतन्त्र है। इसने आन्दोलन के द्वारा ही १७८२ में ब्रिटेन से स्वतन्त्रता प्राप्त की है। अमेरिका की शासन व्यवस्था निम्न प्रकार है:—

१. प्रधान।

२. कांग्रेस।

(क) सैनेट (ख) प्रतिनिधि-सभा

प्रधान—इसका निर्वाचन चार वर्ष के लिये किया जाता है। इसकी आयु ३५ वर्ष से कम होनी चाहिये, और अमेरिका का निवासी होना चाहिये। इसकी मृत्यु तथा त्याग पत्र देने पर सारे कार्य का भार उप प्रधान के कन्धे पर आ जाता है। इन दोनों का चुनाव राज्यों के प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। प्रधान को एक वर्ष में राज्य की ओर एक लाख डालर होता है। और उप प्रधान को १५ हजार डालर मिलता है। यही सैनेट का भी प्रधान होता है।

यहां के प्रधान का अधिकार बहुत होता है; और उसकी शक्ति विश्व में बहुत मानी जाती है। वह कांग्रेस के प्रस्ताव को पुनर्विचार के लिये लौटा दिया जा सकता है। यदि वह सदस्यों के दो तिहाई भागों

के द्वारा स्वीकृत हो तो, प्रधान भी स्वीकार लिया जाता है।

सीनेट की बिना सम्मति से ये विदेशों से संधि नहीं कर सकते है। सीनेट की अनुमति से मंत्री मंडल के १० सदस्यों की नियुक्ति भी प्रधान के द्वारा ही होती है। प्रत्येक मंत्री का वार्षिक वेतन १५ हजार डालर होता है। आज कल संयुक्त राष्ट्र के प्रधान श्री ट्रूमैन हैं।

सीनेट—इस में प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि लिये जाते हैं जो कि वहां की जनता द्वारा सीधे चुने जाते हैं। इनका निर्वाचन ६ वर्ष तक के लिये होता है। इसकी आयु ३० वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक सदस्य का वार्षिक वेतन १० सहस्त्र डालर होता है।

प्रतिनिधि गृह—इसके सदस्यों का निर्वाचन दो वर्ष के लिये किया जाता है। इसके अभियोगों की अपील सीनेट में सुनी जाती हैं।

अमेरिका में शासक वर्ग, कांग्रेस और उच्च न्यायालय के अधिकार पृथक्-पृथक् है।

आस्ट्रेलिया

शासन प्रणाली—इनकी प्रणाली १९१९ के आस्ट्रेलिया एक्ट के अन्तर्गत है। यह दूसरा राज्य है जिसने की फैडरल विधान को स्वीकार किया है। कैनेडा और आस्ट्रेलिया के विधानों में कुछ पारस्परिक अन्तर है। आस्ट्रेलिया की अवशिष्ट शक्ति की बागडोर रियासतों के हाथ में है और प्रमुख शक्ति संघ के आधीन है जो कि अमेरिकन विधान की रूप रेखा को लिये हुए हैं। आस्ट्रेलिया की रियासतों का सीधा सम्बन्ध ब्रिटेन से है। जिसके कारण उनका सब से बड़ा एजेन्ट लन्दन में है। रियासतों के प्रमुखों का चुनाव लन्दन के राजा के द्वारा होता है। आस्ट्रेलिया के विधानदाताओं पर फैडरल सरकार किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगा सकती है। केवल राजा ही उनके साथ इच्छानुसार ही व्यवहार कर सकता है। आस्ट्रेलिया की रियासतें स्वतन्त्रता पूर्वक किसी भी विधान को अपना सकती

है और अपने सदस्यों को निर्वाचित कर सीनेट में प्रवेश करा सकती हैं, जिनका चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। यहां की हाईकोर्ट की अपीलें प्रीवीं कौंसिल लन्दन में जा सकती है।

ऐक्जीक्यूटिव के प्रमुख सदस्यों का निर्वाचन राजा के द्वारा किया जाता है। यहां की रियासतें अपनी सारी शक्तियों को संयुक्त राष्ट्र मंडल को दे सकती हैं। यहां का विधान समयानुसार अदला-बदला भी जा सकता है। परन्तु विधान के बदलने का संयुक्त राष्ट्र मंडल के अधिक सदस्यों की रायों के द्वारा होना चाहिये। इसके उपरान्त उनको मतदाताओं और रियासतों पर अंतिम निर्णय के लिये भेजा जाता है। रियासतों की परिधि में बांधने के लिये और लोक-सभा के सदस्यों को कम करने के लिये अधिक रायों की आवश्यकता है।

कार्य कारिणी (Executive)

राजा अपनी शक्तियों का प्रयोग कभी भी नहीं करता है। औपनिवेशिक सरकार के आदेशानुसार राजा के द्वारा नियुक्त किया हुआ गवर्नर जनरल ही वैधानिक शासक माना जाता है? इसकी कौंसिल में प्रधान मंत्री तथा मंत्री होते हैं। सारा प्रबन्ध कैबिनेट के द्वारा किया जाता है। इनको पार्लियामेन्ट का सदस्य बनना आवश्यक है। इनको कार्य करने उपरान्त उसकी सूचना पार्लियामेन्ट को देनी पड़ती है।

धारा सभा—इसके अन्तर्गत एक सदन और एक राजा होता है।

(अ) सीनेट (ब) प्रतिनिधि सभा

सीनेट—इसमें प्रत्येक रियासत के ६ सदस्य होते हैं। इसके सदस्यों की कुल संख्या ३६ होती है। यहां के प्रत्येक सदस्य का चुनाव ६ वर्ष के लिये होता है। परन्तु इसके आधे सदस्यों का निर्वाचन ३ वर्ष में ही हो जाता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन सदस्यों द्वारा होता है।

प्रतिनिधि सभा और सीनेट की शक्तियाँ एकसी होती हैं। मुद्रा प्रस्तावों में इनका कोई हस्तक्षेप नहीं हो सकता है। और कभी हस्तक्षेप होने पर वह प्रस्ताव दोनों सदनों के सन्मुख रखा जाता है।

प्रतिनिधि सभा—इसके ७५ सदस्य होते हैं। जिनका निर्वाचन रियासतों की जनसंख्या के अनुसार होता है। तमाम जन व्यस्क नर-नारियों में बंटे होते हैं। आस्ट्रेलिया-एशिया, एशिया, अफरीका, प्रशान्त द्वीप और ब्रिटिश हिन्दुस्तानियों को मतदान का अधिकार नहीं है। गवर्नर जनरल के समाप्त न करने पर इसकी कार्य परिधि ३ वर्ष तक रहती हैं। और यह मंत्री मंडल को खतम कर सकता है।

न्याय विभाग— इसमें हाईकोर्ट सब से बड़ी होती है जिसके एक प्रधान जज और पांच अन्य जज गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किये हुए होते है। सयुक्त राष्ट्र और रियासतो के मध्य होने वाली संधियों में इसका हाथ होता है। और हाईकोर्ट तमाम कचहरियों की अपीलें सुनती है। विधान सम्बन्धी कोई भी अपील हाईकोट से प्रीवि कौंसिल में नहीं जा सकती है।

रियासतें—रियासतों की एक्जीक्यूटिव सरकार का निर्वाचन राजा और एक्जी० कौं० नियुक्त गवर्नर द्वारा होता है। रियासतों का सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार के साथ सीधा होता है।

(सम्पादक)

आज का भारत : जनता : शासक

हजारों वर्षों की परतन्त्रता की बेड़ियों को हमने बेशक काट लिया है, परन्तु सामयिक समस्याओं की उलझनों ने हमारा पल्ला नहीं छोड़ा है। आज भारत का प्रत्येक नागरिक इन समस्याओं के चौराहे पर खड़ा हुआ सोच रहा है कि वे किधर को बढ़े और किस प्रकार चिरकाल के उपरान्त पाई हुई स्वतंत्रता को चिरस्थायी रखने में सहयोग दें? आज सात समुद्र पार वाली पाश्चात्य जाति ऊपर से भले ही भारतीय स्वतन्त्रता के समर्थक बनने का दावा करती हो, परन्तु वस्तुतः वह अब भी उसके घोर विरोधी व शत्रु हैं।

कुछ मुस्लिम राष्ट्रों व पश्चिमी राष्ट्रों का तो यह अनुमान है कि यदि भारत की स्वतन्त्रता कुछ वर्ष तक और रही तो विश्व में से हमारा प्रभुत्व बिल्कुल ही समाप्त हो जायेगा। एशिया शीघ्राति-शीघ्र ही भारत के नेतृत्व में संयुक्त अमेरीका और यूरोप को सहज ही पीछे ढकेल देगा। अतः यह दोनों राष्ट्र भारत की भविष्यरूपी ओढ़नी को छीनने के लिए तैयार बैठे हैं। और भारत पर संकट पड़ने पर सहायता करने के बजाय ये उसका गला घोंट सकते हैं, पाकिस्तान हो या कबाइली, या अन्य भारत के शत्रु, ये सारे के सारे तो उपरोक्त राष्ट्रों की कठपुतलियां हैं। किसी ने सत्य कहा है, बछड़ा खूंटे के बल पर ही कूदता है, उसी प्रकार से ये दोनों राष्ट्र पाकिस्तान के कंधों पर बन्दूकें रख हमारे ऊपर गालियों की बौछारें कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि पाकिस्तान इतना हमारा शत्रु नहीं है जितना कि गले पर छुरी फेरने वाले ये हैं। क्योंकि पाकिस्तान चाहे कितनी मुसलिम संगठन के साथ भारत पर आक्रमण करे परन्तु भारत को अभिभूत करने का सामर्थ उसमें नहीं है। उपरोक्त राष्ट्र

किस प्रकार हमें पुनः परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ना चाहते हैं इसका स्पष्टीकरण तो सुरक्षापरिषद् में काश्मीर के प्रश्न पर उन राष्ट्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इन दोनों शत्रु राष्ट्रों ने आततायी पाकिस्तान को एवं रक्षक भारत को एक साथ ही बैठने के लिए निमन्त्रित ही नहीं किया, बल्कि भारत को दोषी सिद्ध करने के लिये जूनागढ़ और भारत में यवन वध के सम्बन्ध में विचार करने के लिये विवश किया।

इतना जानते हुए भी कि पाकिस्तान में हिन्दुओं के जन-धन हानि की अपेक्षा भारत में मुसलमानों की हानि कम हुई है। आज का मुसलमान अपने २ उच्च पदों पर पहले के समान ही प्रतिष्ठित है परन्तु आज का हिन्दू नवयुवक दो रोटी के टुकड़ों के पीछे अपने कंकाल को लिए दौड़ रहा है। गवर्नर और केन्द्रीय मन्त्री मंडल में भी दो दो महत्व पूर्ण पदों पर मुसलमान प्रतिष्ठित हैं। यह कहने में भी अतियुक्ति न होगी कि मुसलमानों ने भारत में अपनी योग्यता व जनसंख्या से कहीं अधिक अधिकार व स्थान प्राप्त कर सके हैं। भारत के भावी कर्णधार भूख के मारे बिलखते २ क्षुधा देवी की गोद में सोजाते हैं, और इन आस्तीन के सांपों के बच्चे रोजाना दूध-मलाइयों खा खा कर भारत की नीवों को खोखला करने की योजना बनाते हैं। इसपर भी आज कामुकता के पुजारी और पाप के पुतले ये राष्ट्र पाकिस्तान को तो पुचकार रहे हैं, प्रोत्साहन दे रहे हैं– और अहिंसा के अवतार भारत को दोषी ठहरा कर उसके दोषों की पड़ताल कराने के लिए कमीशन बैठाना चाहते हैं। ये है भारत के मित्र ! आस्तीन के सांप।

आज भारत का प्रत्येक नागरिक इस बात से परिचित हो चुका है कि उसके दुश्मन यह पाश्चात्य वाले ही हैं। क्यों कि हमारी स्वतन्त्रता ने इन की सत्ता को डांवाडोल कर दिया है। और हमारे गौरव को विनष्ट करने के लिए ही पाकिस्तान की सृष्टि की गई थी। आज हमें विश्व में पद दलित करने के लिए ये अनेक प्रयत्न करते हैं, और बात-बात पर हमें ही दबाने की चेष्टा करते हैं।

पाकिस्तान रूपी कुत्ता इन पाखण्डी राष्ट्रों का कितना ही मांस खाकर हमें बदनाम करने की चेष्टा करें। परन्तु हमें उनके विरुद्ध सोच-समझ कर पग उठाने चाहिए। क्योंकि शेष राष्ट्र रूपी भेड़िये किसी न किसी रूप में धर्मपरायण गऊ भारत को खाना चाहेंगे। मुसलमानों को भारत से निकाल देने पर मुस्लिम राष्ट्रों को समाप्त कर देने में ही भारत की स्वतन्त्रता नहीं रह सकती या हिन्दू राज्य नहीं हो सकता है, बल्कि इस सक्रान्तिकाल की परिस्थितियों में हमें सहिष्णुता से काम लेना चाहिये। भारत में किसी प्रकार की भी अशान्ति नहीं होने देनी चाहिए। भारतीय मुसलमानों की उछल-कूद या छेड़-छाड़ तो अपनी सरकार की तनिक सी दृढ़ता से ही लोप हो सकती है। अतः भारतीय जनता को इन परिस्थितियों का अवलोकन करके ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिस से कि अशान्ति का विस्तार हो।

किन्तु जनता ही शान्त और सहन न करे बल्कि भारतीय सरकार भी अपने को दृढ़ और निर्भीक बना ले, इसके बिना काम नहीं चल सकता। आज सामयिक समस्याओं के चौराहे पर ढीला - ढाला खड़ा होना अपने पेट में छुरा भुंकवाना है।

आज भी भारत के बहुत से मलेच्छ हमारी राष्ट्र भाषा को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं और वे भारतीय रेडियो स्टेशन से इसके उच्चारण को सुनने में भी अपना अपमान समझते हैं। ये लोग भारत के घोर शत्रु हैं। अवसर आने पर ये हम भारतीयों के सीने पर सवार होने को तैयार हैं। ऐसी अवस्था में भारतीय सरकार को चाहिए कि वह तुरन्त ही हिन्दुस्तानी प्रेमिका को त्याग कर अपना सम्पूर्ण कार्य रूपी कंठहार हिन्दी नवयौवना को पहनावें। परन्तु अभी तक शिक्षा विभाग तथा अन्य कितने ही विभागों में पाश्चात्य भाषा और उर्दू का बोल बाला है। इन्हीं सब अवस्थाओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि हिन्दी से नफ़रत करने वाले मुसलमान कभी भी राष्ट्र के हितैषी नहीं हो सकते। यदि ये आपद काल में सहायक बने तो हमें इनकी उर्दू ही नहीं बल्कि अरबी को भी अपनाने में कोई संकोच नहीं। अतः हमारा निवेदन है कि भारतीय सरकार हिन्दी के विरोधी

तत्वों को अपने यहां से हटा कर सम्पूर्ण कार्यों में कोई स्थान है। जिसके प्रताप से उसकी सन्तानें हृष्ट-पुष्ट होकर उसका आपद् काल में भी सहयोग दे सकें। यदि ऐसा न हुआ तो जनता का क्षोभ दिन दुगना और रात चौगुना बढ़ता ही जायेगा और फिर नेताओं और भारत के प्रमुख पत्र एवं पत्रिकाओं के लाख प्रयत्नों से भी परिस्थिति सम्भलने के लिए असह्य हो जायेगी।

आज भारत व उसके निकट सम्बन्धी देशों में पाकिस्तान के गुप्तचर भरे पड़े हैं। ये लोग साम्यवादियों के साथ सहयोग कर के या स्वतन्त्र रूप में भारत व उसकी सरकार का सर्वनाश करने पर आरूढ़ हैं। जैसा कि पिछले दिनों की एक सरकारी विज्ञप्ति से स्पष्ट है कि पाकिस्तान के समर्थक सरकार की गोपनीय से गोपनीय खबरों को भी तत्काल पाकिस्तान पहुँचा देते हैं। मुस्लिम लीग के रंग में रंगे हुए अनेक मुसलमान कांग्रेस का बाना पहने हुए समय की राह देख रहे हैं। अतः इससे पूर्व कि ये घातक हमारे ऊपर पड़ें हमें ही इन्हें कुचल देना चाहिए। हमारी सरकार को पाकिस्तान के साथ भी नीति नहीं बदलनी चाहिए। पुरुषार्थियों की समस्याओं की ओर भी शीघ्र ही सरकार को ध्यान देना चाहिए। अन्यथा भारतीय हृदयों का बढ़ता हुआ असन्तोष एक दिन विनाशक रूप ग्रहण कर सकता है।

हमारी सरकार को चाहिए कि वह अपने शत्रुओं के जाल से बचने के लिए फूँक फूँक कर कदम रखे। शीघ्रता में ऐसे अप्रिय कार्यों को नहीं कर बैठना चाहिए, जिस से कि जनता रूष्ट हो जाये। धार्मिक रीतियों में कुछ परिवर्तन का सहसा निर्णय कर लेना ही हानि-कारक है। इन विषयों पर से धर्म शास्त्रों के बिना राय से कदम नहीं बढ़ाना चाहिए।

परन्तु आज इस स्वतन्त्र भारत में कुछ कांग्रेसी अधिकार मदिरा का प्याला पीकर और स्वयं को राष्ट्र का सर्वशक्ति मान प्रतिनिधि समझकर धार्मिकादि विषयों में हस्तक्षेप की अनधिकार चेष्टा द्वारा कांग्रेस की लोक प्रियता को घटा रहे हैं। जिसके कारण उन्हें

असेम्बली के चुनाव के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है। यदि ये पहले से ही लोकप्रिय रहते तो उन्हें इस समय जनता के द्वार झाँकने न पड़ते और जनता स्वयं ही अपने हितैषियों के कार्यों को कंधे पर चढ़ा कर करती। आज कांग्रेसियों को सभी प्रकार की अवाँछनीयता को दूर करके लोकप्रिय बनना चाहिए। इस कटुसत्य को हमारे प्रधान मन्त्री श्री. नेहरू जी भी एकाधिक बार स्वीकार कर चुके हैं। आज हम भय से त्रस्त हैं, कि कहीं शासन-यन्त्र के कलपुर्जों की यही चालढाल रही तो वे राष्ट्र के साथ अपना भी पतन कर लेंगे।

अतः, अन्त में कुछ न कहते हुए हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि यदि हमारे राष्ट्र की सरकार अपने को सुदृढ़ बनाये रखना चाहती है तो उसे सच्ची राष्ट्रीयता का चोला पहनकर क्षेत्र में आना होगा और विनाशक मुस्लिम लीगी मनोवृत्तियों को रखने वाले मुसलमानों का देश से निकालना होगा। उसे जन मत के साथ साथ चलना होगा यदि वर्तमान सरकार ने उपरोक्त कमियों को न छोड़ा और अन्य कोई सरकार आगई तो देश पुनः परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा जायेगा।

(सम्पादक)

राजनीति का केन्द्र कोरिया

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व संसार की राजनीति का प्रधान केन्द्र योरुप तक ही सीमित था, किन्तु महायुद्ध के पश्चात् आज की राजनीति का एक केन्द्र एशिया भी बन गया है। कोरिया के गृहयुद्ध का आधार भी दक्षिणी पूर्वी एशिया में अमेरिका तथा रूस की राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा ही है। आज से लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व सहसा विभाजित कोरिया में गृहयुद्ध की अग्नि अकस्मात ही प्रज्वलित हो गई। यह भयानक विस्फोट भी उस समय हुआ, जब कि कुछ राजनैतिक क्षेत्रों में विश्व युद्ध के मूलभूत कारणों को ही समाप्त कर डालने के लिये विविध शान्ति योजनायें बनाईं जा रही थीं।

२५ जून सन १९५० को रूस प्रभावित उत्तरी कोरिया ने अमेरिका से सहायता प्राप्त कर दक्षिणी कोरिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और शीघ्र ही कुछ सीमावर्ती प्रदेशों को अधिकारगत कर लिया। कोरिया युद्ध के प्रारम्भ से लेकर अभी हाल तक की युद्ध स्थिति को देखते हुये यह स्पष्टप्रायः हो गया है कि उत्तरी कोरिया की सेनायें प्रारम्भ से ही रूस के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्राओं, टैंकों आदि से सुसज्जित रहीं। अमेरिका भी प्रारम्भ में तो प्रकट रूप से युद्ध स्थल पर नहीं आया। किन्तु बाद की उसकी सैनिक गतिविधियों से यह स्पष्ट हो गया था दक्षिणी-कोरिया तथा संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं के रूप में जो भी प्रमुख शक्ति काम करती रही, वह वस्तुतः अमेरिका की ही थी। अभी गत कुछ दिनों के घटनाचक्र को छोड़कर लगभग डेढ़ साल से कोरिया की भूमि पर युद्ध की ज्वाला प्रज्वलित रही। इस बीच अनेकानेक शान्ति-वार्तायें प्रारम्भ हुईं और असफल सिद्ध हुईं। दोनों पक्षों के प्रतिनिधि न मालूम कितनी बार शान्ति स्थापना के लिये एकत्रित हुये। किन्तु

अन्त में उन्हें असफलता का ही मुँह देखना पड़ा। अभी भी पानमुन-जोन में शान्तिवार्ता चल रही है। किन्तु अब भी कोई न कोई गतिरोध उपस्थित हो जाने पर अन्तिम सफलता संदिग्ध है। अब हमें यह देखना है ये किस प्रकार कोरिया की घरेलू-समस्या में राजनीतिज्ञ तीसरे महायुद्ध के विनाशकारी बीज देखने लगे हैं ?

कोरिया युद्ध की पृष्ठ भूमि

पिछले दो महायुद्धों के अनुभवों ने संसार को बता दिया है कि किस प्रकार एक युद्ध के समाप्त होने पर दूसरे युद्ध के लिये पष्ठभूमि तैयार होने लगती है।

विजेता राष्ट्र अपने मित्र बल को निरन्तर बढ़ाते रहते हैं, अपने निजी स्वार्थों के कारण शान्ति समझौते करते हैं। किन्तु इन सब समझौतों तथा राजनैतिक दाँवपेंच का अन्तिम परिणाम हमारे समक्ष स्पष्टतया गुटबन्दी हो जाता है। आज की राजनीति की मुख्याधार यही है कि एक ओर रूस आर्थिक राजनैतिक विषमता से पीड़ित विजित राष्ट्रों की जनता के असन्तोष से लाभ उठाकर अपने प्रभावक्षेत्र को बढ़ा रहा है तो दूसरी ओर अमेरिका की मार्शल योजना भी अपने प्रभावक्षेत्र को बढ़ाने की आकांक्षा का ही परिणाम हैं। कोरिया के युद्ध का वास्तविक कारण इन प्रमुख दो राष्ट्रों की साम्राज्यशाही महत्त्वाकांक्षी ही मूल रूप से हैं।

प्रथम महायुद्ध में जर्मनी तथा द्वितीय में जापान तथा जर्मनी दोनों ही योरुप की साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध थे। स्वभावतः ही एशिया के पराधीन राष्ट्रों की सहानुभूति जापान तथा जर्मनी के साथ बढ़ गई। सुभाषचन्द्र बोस का जापान से मिलकर आजाद हिन्द सेना का निर्माण तथा उसकी सैन्य सहायता से भारत को स्वतंत्र कराने की योजना इसी मनोवृत्ति का परिणाम था किन्तु जो जापान-रूस-जापान युद्ध के बाद साम्राज्यवादी शक्तियों का घोर विरोधी होने के कारण एशिया की जनता का आशाकेन्द्र बन गया था। वही अपनी बाद की आक्रामक नीति के कारण एक आततायी राष्ट्र के रूप में गिना जाने

लगा। फलतः जापान ने सन् १६१० में कोरिया तथा मंचूरिया पर अपना अधिकार कर लिया। केवल यही नहीं, वह बाद में समस्त एशिया को ही अपने पैरों तले रौंदने का स्वप्न देखने लगा। १६१० में कोरिया पर पूर्णतयः अधिकार करने के पश्चात जापान ने कोरिया की जनशक्ति तथा खनिज पदार्थ का मनमाना उपयोग किया और कोरिया से ५०००० व्यक्ति जापान में कार्य करने के लिये भरती कर लिये गये। उसी समय कोरिया के कुछ निर्वासित व्यक्तियों ने चीन में अपनी स्वतंत्र सरकार की स्थापना की। तथा १६४३ के सम्मेलन में ब्रिटेन, चीन तथा अमेरिका ने मिलकर निश्चय किया कि जापान को पराजित करने के पश्चात् कोरिया को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जायेगी। किन्तु १६४५ के द्वितीय मास्को सम्मेलन मे उन्होंने अपना यह निश्चय बदल दिया और यह निश्चय किया कि कोरिया को चार महान शक्तियों के संरक्षण में रखा जायेगा।

जापान की पराजय पर रूस ने कोरिया में अपनी सेनाओं के आगे बढ़े होने के कारण ३८वीं अक्षांश रेखा के उत्तर में जापानियों का आत्मसमर्पण स्वीकार किया जब कि दक्षिण में आत्मसमर्पण स्वीकार करने वाले अमेरिकन थे। तदुपरांत कोरिया दो भागों में बंट गया और एकता के प्रयत्नों के असफल होने पर उत्तर मे रूस के प्रभाव में और दक्षिण मे अमेरीका के प्रभाव मे अलग अलग सरकारें स्थापित हो गई। यह आशा की जाती थी कि निकट भविष्य में ही दक्षिणी कोरिया-पूर्णतया साधन सम्पन्न हो जायेगा। दक्षिणी कोरिया की जनसंख्या समस्त कोरिया की जनसंख्या की दो-तिहाई है और उसे जनबल की एक बहुत बड़ी सुविधा प्राप्त है। रूस अधिकृत-उत्तरी कोरिया अल्प जनसंख्या तथा खाद्याभाव के कारण सामयिक दृष्टि से दक्षिणी कोरिया की अपेक्षा निर्बल है। किन्तु उत्तरी कोरिया को रूस का पूर्ण सहयोग प्राप्त होने के कारण दोनों पक्षों की शक्ति का अनुमान तुलनात्मक दृष्टि कोण से लगाना असम्भव है।

युद्ध के तात्कालिक कारण

सन् १६४६ में दक्षिण कोरिया को स्वशासन देकर अमेरिकन

सेनायें कोरिया से चली गई थीं। किन्तु उत्तर से आये शरणार्थियों के साथ ५००० कम्युनिस्ट भी दक्षिणी कोरिया में घुस आये और इसी समय से उत्तरी तथा दक्षिणी कोरिया में तनातनी बढ़ रही थी। दोनों प्रदेश चिरकाल से अपनी आन्तरिक सुरक्षा के बारे में संदेह-शील थे। दक्षिणी कोरिया की राजधानी सीओल से केवल ३८ मील पर ही सीमान्त होने के कारण कभी कभी सीमावर्ती झगड़े हो जाते थे। संयुक्त राष्ट्र संघ ने कोरिया के प्रश्न पर एक कमीशन भी नियत किया था। पर उसे कोई सफलता नहीं मिली। दोनों प्रदेशों को संयुक्त करने की योजना लेकर उत्तरी कोरिया के तीन गुप्तचरों का दक्षिणी कोरिया में प्रवेश संघर्ष का प्रधान कारण माना जाता है। दक्षिणी कोरिया के अधिकारों ने उन तीन गुप्तचरों को बन्दी बना लिया। उत्तरी कोरिया ने अपने गुप्तचरों की मुक्ति की मांग की तथा वहां की केन्द्रीय समिति ने कोरिया के दोनों प्रदेशों को संयुक्त करने के लिए राष्ट्रवादी आन्दोलन करने की योजना बनाई। साथ ही उन्होंने दक्षिणी कोरिया के प्रेज़ीडेन्ट सिंगमैनरी पर अमेरिकन पूंजीपतियों से मिलकर गृहयुद्ध का आरोप लगाया और साथ ही युद्ध की घोषणा कर दी।

वर्तमान स्थिति

युद्ध छिड़ जाने के पश्चात् संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं द्वारा सीधा हस्तक्षेप करने के पश्चात् भी दोनों कोरिया में चिरकाल तक युद्ध बन्दी की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकी। अभी कायसोंग में हुई शान्ति वार्ता काफी सफल सिद्ध हुई थी। क्यों कि इसके कारण दोनों पक्षों ने युद्ध बन्दी आदेश प्रसारित कर दिये थे। किन्तु कुछ समय पश्चात् ही स्थिति पुनः बिगड़ गई। और युद्ध बन्दी के दो तीन दिन पश्चात् ही उत्तरी कोरिया के आकाश पर ४० अमेरीकी सेबर जेट विमानों की १५० साम्यवादी विमानों से डटकर लड़ाई हुई। जिस में पांच साम्यवादी जेट विमानों को गिरा दिया। अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ा लेने के कारण उत्तरी कोरिया ने मित्रराष्ट्रीय हवाई प्रभुत्व को भी चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया था। अभी कुछ दिनों से पानमुनजौन

में पुनः संधि-वार्ता प्रारम्भ हो गई है। जिसको अन्तिम निर्णय के लिए सं० रा० संघ ने २७ दिसम्बर १९५१ अन्तिम तिथि निर्धारित की है। किन्तु नित्य प्रति दोनों पक्षों की ओर से कोई न कोई नवीन समस्या उठाये जाने के कारण आशा है कि सं० रा० संघ अपनी अन्तिम तिथि बढ़ा देगा।

वर्तमान स्थिति को देखते हुए अभी यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों पक्षों में कुछ समझौता हो जाने के पश्चात् तृतीय विश्व युद्ध की आशंका टल जायेगी।

(श्री सुरेश चन्द जी)

मध्यपूर्व की समस्या

मध्यपूर्व का प्रदेश आज महान शस्त्रागार के रूप में परिवर्तित हो गया है। जिसमें आग की एक छोटी सी चिनगारी भी विनाश का कारण बन सकती है। इन आग की लपटों से मध्यपूर्व ही नहीं तमाम सभ्य देशों के दैनिक जीवन में उथल पुथल मच जाने की सम्भावना है। मध्यपूर्व का क्षेत्र एक भौगोलिक इकाई न रहकर एक राज नैतिक प्रश्न बन गया है। इस प्रदेश के समस्त देशों का इतिहास प्रायः समान है। मिश्र इस प्रदेश में इस लिए सम्मिलित किया गया है कि इस के कारण ही उसका अस्तित्व है। टर्की, जो कि युद्ध में तटस्थ रहने के कारण इससे अलग कर दिया गया था, भौगोलिक व ऐतिहासिक कारणों से सम्बन्धित है। सूडान मिश्र का अविभाज्य अंग है इस कारण इस क्षेत्र से उसका भाग्य सूत्र बंधा हुआ है। इन प्रदेशों के अतिरिक्त जोर्डन, सीरिया, लेबनान अदन, कातर, कुवेत, साऊदी-अरब, फिलस्तीन और ईराक इत्यादि इस क्षेत्र के महत्व पूर्ण राज्य हैं। इन सब राज्य का सम्मिलित क्षेत्रफल ३,७३१,००० वर्ग मील है।

साधन व महत्व पूर्ण स्थिति

मध्यपूर्व की अधिकांश जनता के जीवन निर्वाह का साधन कृषि है। केवल ५ प्रतिशत भूमि में ही खेती की जाती है। इस भू-प्रदेश का क्षेत्रफल भारत से प्रायः दुगना है, परन्तु जन संख्या प्रायः ७ करोड़ ही है। अर्थात् भारत की जनसंख्या का जिसमें पाकिस्तान भी सम्मिलित है, छठा भाग ही इस भू-प्रदेश में निवास करता है। कहीं कहीं तो प्राय. जनशून्य स्थान हैं। इस के विपरीत अनेकों स्थानों पर जनसंख्या काफी घनी है। नील घाटी में सबसे अधिक मनुष्य

निवास करते हैं क्योंकि यह भाग अत्यन्त उपजाऊ है।

यूरोप व एशिया के मध्य का क्षेत्र होने के कारण यहां पर सैदव ही धन प्रचुर मात्रा में जनता को उसकी सेवाओं के रूप में प्राप्त होता रहा है। परन्तु आज स्थिति भिन्न है। तेल के प्राप्त होने से पहले मध्यपूर्व का देश अत्यन्त पिछड़ी दशा में था। तेल के कारण ही आज इस भू-प्रदेश पर अमरीका, रूस और ब्रिटेन की आंखे लगी हुई हैं। इसी स्वार्थ से वशीभूत होकर ब्रिटेन आज ईरान व मिश्र छोड़ने में हिचकता है। वह ईरान की चेतावनी पर अपनी अकड़ दिखाने में असमर्थ रहा है। इसी तेल की राजनीतिक के कारण अमरीका अपने मित्र ब्रिटेन के साथ विश्वासघात कर रहा है। ब्रिटेन के अनेकों योग्य सहायक जिनमें ट्रांसजोर्डन के शाह अब-दुल्ला, ईरान के प्रधान-मन्त्री अली रजमारा व मिश्र के योग्यतम प्रधान-मन्त्री नहसपाशा इत्यादि तेल की राजनीति के शिकार हो चुके हैं। जब घर में आग लगती है तो पड़ोसी हाथ सेकने अवश्य आ जाते हैं। रूस भी इस भू-प्रदेश के समीप होने के कारण उथल पुथल से लाभ उठाकर तेल-कूपों को अपने वश में करना चाहता है।

यूरोप के विकास काल से लेकर आज तक मध्य पूर्व का प्रदेश शक्ति प्रदर्शन का केन्द्र रहा है। यह क्षेत्र तीन महाद्वीपों के मध्य एक पुल का कार्य करता है। भूतकाल के सैनिक नेताओं ने मध्यपूर्व की स्थिति से लाभ उठाकर विश्व विजय के स्वप्न देखे हैं। चंगेज़खाँ, सिकन्दर महान, नैपोलियन व हिटलर सभी इस प्रदेश का सैनिक महत्व जानते थे। १७९८ में नैपोलियन ने मिश्र पर आक्रमण किया। ब्रिटेन ने तत्काल ही उसे नील नदी के युद्ध में पराजित किया। तब से लेकर आज तक मध्यपूर्व की सुरक्षा ब्रिटिश सैनिकों का ध्येय रहा है। इस प्रदेश की सीमा को अक्षुण्ण रखना उनके लिए आवश्यक सा हो गया है। १९३७ में प्रो० सेटन वाटसन ने लिखा था:—

"गत् १०० वर्षों में ११ बार से कम नहीं हमें निकट पूर्व (मध्य पूर्व) की उलझन में पड़ना पड़ा है। इबेरियन व इटली के क्षेत्र, जर्मनी व हेन्सबर्ग के प्रदेशों की समस्या कभी भी इतनी गम्भीर नहीं रही

है। ब्रिटेन की वैदेशिक नीति में टर्की व उसके भूतपूर्व साम्राज्य के लिए स्थान सुरक्षित है।"

अणुबम व हवाई सेना भी इस प्रदेश के महत्व को कम नहीं कर सकी है, अपितु इसके विपरीत संयुक्तराष्ट्र अमरीका की राजनैतिक शक्ति के विकास के कारण इस प्रदेश की सुरक्षा को गम्भीर रूप में उलझाया जा रहा है। टर्की व ग्रीस को इसी कारण अटलांटिक (उत्तरी) सन्धि में सम्मिलित किया गया है। रूस की उन्नति हवाई सेना के कारण इस क्षेत्र में आक्रमण का भय बढ़ गया है। इस भू प्रदेश से काकेशस (रूस) के तेल क्षेत्रों में सफलता पूर्वक विनाश के दृश्य उपस्थित किये जा सकते हैं। ब्रिटेन के लिए स्वेज का सामरिक महत्व एक मुख्य आकर्षण की वस्तु नहीं रह गया है। क्यों कि वहां पर भी हवाई मार्ग से सफलतापूर्वक आक्रमण किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रदेश बड़ी शक्तियों के लिए सिरदर्द का कारण बन गया है।

इतिहास व राजनीति

मध्यपूर्व आज पूर्व-पश्चिम का मिलनकूल बन गया है। देश पर अनेकों बार बाह्य शक्तियों द्वारा आक्रमण किये गये। अनेक छोटे-बड़े राज्य स्थापित किये गये। न जाने कितनी बार इन प्रदेशों की एकता का प्रयत्न किया गया, परन्तु सब व्यर्थ। आज भी वहां आपसी मतभेद, दलीय राजनीति व निजी स्वार्थों का बोलबाला है। केवल कुछ बातों में ही यहाँ समानता पाई जाती है। वह है, राज्य का धर्म व वहां की पिछड़ी दशा। अरब विजय के पश्चात् देश का धर्म प्रायः मुस्लिम हो गया है। केवल टर्की के शासन काल में ही देश राजनैतिक इकाई के रूप में परिवर्तित हो सका था। ओटोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् देश में अनेक छोटे छोटे राज्य बन गये थे। इन राज्यों में आपसी मित्रता व सहयोग का अभाव है। मुस्लिम भाई-चारे के नाम पर भी इन देशों के नागरिक एक साथ कदम बढ़ाने में असमर्थ रहे हैं। १६ वीं शताब्दि में टर्की के साम्राज्य के पतन होने के पश्चात् यह भू-प्रदेश विदेशियों की क्रीड़ा भूमि बन गया है।

टर्की के पतन काल में भी अब्दुल हमीद व कमाल पाशा ने इस प्रदेश को एक इकाई में परिवर्तित करने की चेष्टा की। इस के लिए जर्मनी के महान् सम्राट विल्हैम कैसर का भी सहयोग प्राप्त किया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ।

टर्की का ऋण

१६ वीं शताब्दि के अन्त में टर्की का साम्राज्य अपने अन्तिम क्षण गिन रहा था। देश की आर्थिक स्थिति भी स्थिर न थी। स्थानीय उन्नति के लिए खलीफा (सुल्तान) ने ऋण लेना शुरू किया। सबसे प्रथम फ्रांस वालों ने सुल्तान को सहयोग दिया। सुल्तान ने इस समय एक राजनैतिक भूल की। उसने विदेशियों को व्यापार इत्यादि में अनेकों छूट प्रदान कीं। विदेशियों ने अपने डाकखाने भी खोल लिए थे। १८८१ में टर्की के ऋण को नियन्त्रण करने के लिए एक कमैटी बनाई गई। उस कमैटी में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की, इटली व हंगरी थे। १६१४ में टर्की का राष्ट्रीय ऋण २०० लाख पौंड था। इस ऋण पर राज्य की कुल आय की १/३ भाग ब्याज के रूप में दिया जाता था। इसी ऋण के कारण टर्की साम्राज्य समाप्त हो गया और अनेकों छोटे छोटे राज्य बन गये।

ईरान की खाड़ी

इस प्रदेश की सुरक्षा में ईरान की खाड़ी का विशेष महत्व है। आज भी इस खाड़ी के कारण ब्रिटेन ईरान के तेल क्षेत्रों में संगठित मोर्चा तैयार कर रहा है। एक ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने प्रायः तीन शताब्दि पूर्व ईरान की खाड़ी के सम्बन्ध में कहा था कि, 'हमें अपने प्रत्येक साधन की सीमा तक इस जल-प्रदेश की रक्षा करनी होगी।'

टर्की अपने साम्राज्य की समाप्ति से प्रसन्न नहीं था। उसने उसे जीवित रखने के लिए अनेक प्रयत्न किए, परन्तु सब व्यर्थ। अरब राज्यों में विद्रोह फैला अन्त में छोटे छोटे राज्य और बन गये। टर्की का साम्राज्य समाप्त करने में ब्रिटेन इत्यादि ने भी अरबों

की सहायता की। आज भी अरब राज्य अपने मतभेदों को समाप्त नहीं कर सके हैं। शाह अब्दुल्ला समेत १२ राजनैतिक हत्यायें आन्तरिक विस्फोट का स्पष्ट उदाहरण हैं।

युद्ध काल में ब्रिटेन, अमेरिका, रूस व फ्राँस इत्यादि ने मिलकर जर्मनी के विरुद्ध एक संगठित मोर्चा कायम किया। युद्ध में जर्मनी की पराजय अवश्य हुई, परन्तु मित्र राष्ट्र भी संगठित न रह सके। अभी शान्ति-सन्धि पर किए गये हस्ताक्षरों की स्याही सूखी भी नहीं थी कि तीसरे महायुद्ध की सम्भावना की जाने लगी। आज कल की राजनीति, मिश्र की चुनौती, ब्रिटेन के मित्रों की हत्या, उत्तर की ओर से रूस का भय और देश का आर्थिक पतन ब्रिटेन व अमरीका के सिरदर्द का कारण बन गये हैं। आज आंग्ल-अमरीकी दल को कच्चे माल की अत्यन्त कमी महसूस हो रही है। इस आपत्ति-काल में ईरान भी अपना तेल ब्रिटेन को देने से इन्कार कर रहा है। ब्रिटेन को तेल उद्योग में लगी पूंजी के डूबने का इतना भय नहीं सता रहा है। जितना कि उसे तेल न मिलने के कारण आगामी युद्ध में पराजय का भय है। आगामी युद्ध निर्णायक होगा, कौन जानता है कि वह अन्तिम ही हो। ब्रिटेन ने ईरान के इस अधिकार की वैधता को सुरक्षा परिषद् में चुनौती दी है। रूस इस समय ईरान सरकार की सहायता कर रहा है। उसने (रूसने) इस बात की माँग का प्रतिपादन किया है कि सुरक्षा परिषद् को इस प्रश्न पर विचार करने का अधिकार नहीं है। रूस को इस झगड़े में ईरान से कुछ छूट मिल जाने की सम्भावना है।

आर्थिक विकास

इस भू-प्रदेश का आर्थिक विकास सीमित दशा में हुआ है। देश में कोई उद्योग संगठित नहीं है। कृषि पर निर्भर रहने वाली जनता की स्थिति और भी दयनीय है। केवल कुछ ही खनिज पदार्थ इस प्रदेशमें पाये जाते हैं। तेल ही ऐसा उद्योग है जिसपर गर्व किया जा सकता है, परन्तु इसी कारण ही बड़ी बड़ी शक्तियां इस को अपने अन्तर्गत् लाना चाहती हैं। यह निश्चित है कि यदि निकट

भविष्य में मध्यपूर्व का आर्थिक उद्धार नहीं किया गया तो वहाँ पर साम्यवाद का प्रसार हो जायेगा। अतएव इस दशा में आंग्ल-अमरीकी दल के समस्त स्वार्थ इस भू-प्रदेश में समाप्त हो जायेंगे।

अभी हाल में रूस के भय के कारण इस प्रदेश की सुरक्षा की योजना बनाई गई है। मिश्र, ईरान प्रभृति देश अनेकों कारणों से इस सुरक्षा योजना का विरोध कर रहे हैं। उनका कथन है कि यह योजना इस प्रदेश को आथिक साम्राज्यवाद (Economic Imborialism) के अन्तर्गत रखने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अतएव यह निश्चित सत्य है कि यह प्रदेश निकट भविष्य में ही किसी न किसी ओर गम्भीर क़दम उठायेगा। परिणाम भविष्य के गर्भ में निहित है।

रस योगी)

नशेबन्दी पर विचार

भारतीय संविधान के नियामक सिद्धान्तों के सत्रहवें अनुच्छेद में यह कहा गया है कि "राज्य लोगों का पुष्टि की सतह तथा जीवन के मानदण्ड को बढ़ा कर सार्वजनिक स्वास्थ्य के उन्नयन को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में समझेगा और राज्य विशेषकर इस बात की चेष्टा करेगा कि दवाई के अलावा अन्य उद्देश्यों से नशीले पानीयों तथा नशे के द्रव्यों को बन्द करें, क्योंकि ये स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।"

इस प्रकार भारतीय गणराज्य के संविधान के निर्माताओं ने यह उचित समझा कि मद्य ही नहीं सब तरह के नशा पैदा करने वाले द्रव्यों के प्रयोग को बन्द कर दिया जाय। इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि संविधान के नियामक इसके लिये किसी सिद्धांत में कथित नैतिक कारण पर ज़ोर न देकर भी भौतिक कारण यानी स्वास्थ्य हानि पर ही ज़ोर दिया गया है। इसी लीक का अनुसरण कर यह कहा जा सकता है कि नशे की चीजों का निषेध न केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी आवश्यक है। अवश्य, स्वास्थ्य हानि भी किसी रूप में आर्थिक हानि है। यदि और भी गहराई में जाया जाय तो यह ज्ञात हो कि हमारे ऐसे देश में जहां खाद्य की इतनी कमी है, वहां खाद्य द्रव्यों से जैसे गन्ने का रस, जो, चावल से शराब बना कर उन्हें नष्ट करना उचित न होगा। जिस खाद्य को दस बीस आदमी खा सकते हैं, उससे एक व्यक्ति के लिये शराब बने और उससे उसका भी पेट न भरे, यह आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हानिकारक है।

इस सम्बन्ध में तो सभी सहमत हैं कि जितने भी नशे के द्रव्य हैं उनका सेवन स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। कोई यह कह

सकता है कि थोड़ी मात्रा में इनका सेवन कभी-कभी किसी-किसी व्यक्ति के क्षेत्र में हितकर पाया जाता है, सो इसकी तो बात ही नहीं है क्योंकि उस प्रकार का सेवन तो औषध सेवन के पर्याय में आ गया। संविधान में औषधि के रूप में सेवन का तो मान ही लिया गया। यहां तो केवल किसी नशीले द्रव्य का नशे के रूप में सेवन के संबंध में ही आलोचना हो रही है। प्रत्येक नशा करने वाले में, यह केवल शराबी तक ही सीमित नहीं है, यह प्रवृत्ति होती है कि वह नशे के द्रव्य की मात्रा बढ़ाता जाय, और फिर बढ़ाते बढ़ाते उसके सेवन की कोई सीमा ही नहीं रह जाती। पाश्चात्य देशों में तो एलकोहलवाद को एक भयंकर रोग के रूप में मान लिया गया है। इस तरह से अफीम, गांजा, चरस, कोकेन इत्यादि जिस भी चीज का कोई नशा कर ले, वह एक रोग के रूप में ही हो जाता है। इस कारण हमारे संविधान के नियामक सिद्धान्तों में नशों के विरुद्ध निषेध के प्रयोग की जो व्यवस्था की गई है उसकी उत्तमता में किसी सही दिमाग व्यक्ति को संदेह नहीं हो सकता।

कुछ लोग इस सम्बन्ध में जो आपत्तियां उठाते हैं, वे कई क्षेत्रों में बड़े अजीब होते हैं, पर कुछ आपत्तियाँ ऐसी हैं जिन पर विशेषज्ञ-गण भी एक मत नहीं हो पाये हैं। हम पहले मादक द्रव्य निषेध के सम्बन्ध में ऐसी आपत्तियों का उल्लेख करेंगे, जो तर्क की कसौटी पर बिल्कुल नहीं ठहरते हैं।

एक तर्क तो यह दिया जाता है कि प्राचीन भारत में विशेषकर वैदिक युग में लोग सोम रस का पान करते थे। पर उस युग में इस प्रकार के पेय शायद उतने नशीले और उग्र नहीं होते होंगे, जितने वे आज वैज्ञानिक उन्नति के कारण हो चुके हैं। वैदिक युग की बात छोड़ दी जाय तो मौर्य काल में मद्य नियन्त्रण था, इसका पता कौटिल्य से लगता है। बाद के युगों में बराबर मद्य पान सामाजिक रूप से हेय समझा गया है। तांत्रिकों के अतिरिक्त सभी धर्म मतों में नशीले द्रव्यों का सेवन बुरी दृष्टि से देखा जाता था। प्राचीन काल के जितने भी बड़े लोग हुये हैं, उनके जीवनों के सम्बन्ध में बहुत बारीकी के

ज्ञान प्राप्त होने पर भी यह कहीं नहीं मिलता कि उनमें से कोई नशेबाज था। स्मरण रहे कि प्राचीन वीरों की गाथाएं पुराणों में लिखी गई हैं, उसमें कृष्ण और अर्जुन ऐसे व्यक्ति का बार बार विवाह आदि करना तो खुलमखुल्ला दिखाया गया है, इस कारण ऐसा समझने का कोई कारण नहीं कि मादक द्रव्य सेवन सम्बन्धी उनके जीवन के भाग को छिपा दिया गया है और वास्तविक रूप से वे कुछ और थे। हमारे उद्देश्य के लिये इतनी बात मानने की भी जरूरत नहीं, यहाँ तक कि इन व्यक्तियों की ऐतिहासिकता को भी स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी इन वर्णनों से इतना ज्ञात होता है कि जब भी ये पुस्तकें रचित हुई हों, यहां तक कि जब तक उनका अन्तिम संस्करण तैयार हुआ हो, तब तक नशा पीना खाना अच्छे लोगों, बल्कि शरीफों का काम नहीं समझा जाता था। इस्लाम के आगमन ने इस प्रवृत्ति को सैद्धांतिक रूप से दृढ़ किया, यद्यपि बड़े आदमी याने धनीगण शायद पहले से ही इन दुर्व्यसनों के शिकार हो चुके थे, और विधि निषेधों के बावजूद यह दुर्व्यसन उनमें बढ़ता ही गया। थी भी वह पतनकालीन सभ्यता, इस कारण हमें इसमें आश्चर्य नहीं है।

अंग्रेज लोग अपने साथ जो सभ्यता लाये, उसमें अफीम आदि तो बहुत बुरा समझा जाता था, पर शराब नहीं। इसका परिणाम जो हुआ वह हमारे सामने है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मादक द्रव्यों को अपनी आय का एक मुख्य साधन बनाया। इन गोरे साम्राज्य-वादियों की क्या नीति थी इस सम्बन्ध में चीन के तीन अफीम युद्धों को स्मरण किया जा सकता है, जो इस बात की पोल खोल देते हैं कि किस प्रकार श्वेत जाति के लोग दूसरी जातियों को सभ्य बनाने चले थे। बढ़ते बढ़ते सरकार की यह आय २५ करोड़ के लगभग पहुँच गई।

जो कुछ भी हो कथित ऐतिहासिक आपत्ति तो अर्थ हीन है। वैयक्तिक अधिकार की बात को भी इस संबन्ध में लाना कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि व्यक्ति को अधिकार तभी तक ही जब तक वह उसका दुरुपयोग न करे। अब वह आपत्ति आती है जिसमें यह कहा जाता है कि फिर तो राज्य एक स्कूल शिक्षक बन गया जो कि हर

बात में यह कहने का दावा करता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। वे कहते है यह नागरिक का अधिकार है कि वह जो चाहे खाय या पीये, इसमें राज्य को बीच में पड़ने की आवश्यकता नहीं। ऐसे लोगों का कहना है कि उन लोगों की बात कुछ तो समझ में आती है, जो यह कहते हैं कि बीड़ी से लेकर सभी नशों पर रोक होनी चाहिए, पर उन लोगों की बात समझ में नहीं आती जो इसमें यह कहते हैं कि ये नशे तो मामूली हैं इन्हें चलने देना चाहिए, और ये नशे भयंकर हैं इन्हें रोकना चाहिए। उनका पूछना है कि भयंकरता की परिभाषा क्या है ? क्योंकि प्रत्येक नशे की वस्तु की मात्रा बढ़ाने पर वह भयंकर हो सकता है। अब यह कौन तय करेगा कि "चेन स्मोकिंग" (लगातार धूम्रपान) ज्यादा खराब है या नित्य नियम से सन्ध्या समय दो पेग चढ़ा जाना ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि नशे के द्रव्यों का, नशे की चीज के रूप में सेवन को सभी लोग बुरा मानते हैं, रहा यह की क्या नशा है और क्या नहीं, इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों की और यदि उन में मतैक्य न हो सका तो अन्त तक जनता अर्थात जनता के प्रतिनिधियों की राय लेनी पड़ेगी।

जहां तक समझा बुझा कर, जनमत पैदा कर लोगों को नशे से रोकने की बात है, वहाँ तक सभी सहमत हैं। पहले इस रूप में जो कुछ भी किया जा सकता है सब करना पड़ेगा। यह तो एक मानी हुई बात है कि बहुत से लोग पलायनवाद के रूप में नशों को अपनाते हैं। मनोरंजक के साधन उपलब्ध न होने के कारण तथा आम तौर से विफलता और मनोभंग के कारण भी लोग नशों की ओर झुकते हैं। सामाजिक वातावरण को उन्नत कर, मनोरंजन के साधनों को सुलभ कर, देखा देखी पीने और नशा करने की प्रवृत्ति को जनमत को सजग कर हमें इस बुराई से संग्राम करना पड़ेगा। जो लोग पक्के नशेबाज हो चुके हैं, उन्हें यह अनुभव करना पड़ेगा कि वे चाहे कितने भी धनी हों, तथा उनमें कितनी भी प्रतिभा हो, उनमें यह रोग बुरा है। और उस हद तक उन्हें बुरा समझा जायेगा अक्सर ऐसा कहा जाता है और विश्वास भी किया जाता है कि गरीब लोग ही नशे ज्यादा करते हैं। स्वाभाविक रूप से गरीबों की संख्या बहुत

अधिक है, इस कारण उनमें नशेबाजों की संख्या भी अधिक होगी, पर जो लाखों रुपयों की मंहगी विदेशी शरावें आती हैं, उन्हें धनी लोग ही पाते हैं। यह ताज्जुब है कि संविधान के नशेबन्दी से सम्बद्ध नियामक सिद्धांत को कार्यान्वित करने की ओर पहला कदम यह क्यों नहीं उठाया गया कि विदेशों से आनेवाली सारी शराबें बन्द कर दी जाय। क्लबों, नाचघरों और रेस्टारेन्टों में धनी तथा मध्यवर्ग के लोग ही शराब पीते हैं और मेरा ऐसा विचार है कि उन्हीं के कारण मादक द्रव्य निषेध में सबसे अधिक बाधा पड़ती है बात यह है कि वे ही जनमत का निर्माण करते हैं।

मेरा ऐसा विचार है कि सम्पूर्ण रूप से मादक द्रव्य विक्रय बन्द करने के पहले सार्वजनिक स्थानों में मादक द्रव्यों का सेवन बन्द होना चाहिए। देश में कहीं कहीं सिनेमा घरों और बसों में भी बीड़ी पीना बन्द कर दिया गया है, मैं इसे उचित समझता हूं। नशे के सम्बन्ध में शायद सबसे बड़ी बात यह है कि बहुत से लोग देखा देखी ही शुरू करते हैं। फिर वे आदत के शिकार हो जाते हैं इसे रोकने के लिए सबसे उपयुक्त बात यह होगी कि सार्वजनिक स्थानों में सब नशे निषिद्ध, केवल कानूनी दृष्टि से ही नहीं बल्कि शिष्टा-चार के नाते भी निषिद्ध कर देना पड़ेगा। पर ऐसी सारी बातें एक तरीके से ही हो सकती हैं। जिस देश में अभी तक खुल्लमखुल्ला वेश्यावृत्ति करना अथवा वेश्यागमन करना कानून द्वारा निषिद्ध नहीं है, वहाँ केवल सम्पूर्ण शराब बन्दी करना हास्यास्पद होगी। सामा-जिक सुधार की एक आधार भूत योजना होनी चाहिए, तभी ये सारे काम हो सकेंगे। पल्लवग्राहिता से नहीं काम बनता है और न इस क्षेत्र में काम बनेगा।

अमेरिका में पूर्ण शराब बन्दी की असफलता से हमें एक बात यह तो सीखनी ही है कि हम शराब बन्दी के उद्देश्य को लेकर चाहें कुछ भी हो करें, हमारा उपाय अथवा साधन इस प्रकार नहीं होना चाहिए कि उससे उल्टा अपराधियों को फायदा हो, चोरी से शराब बने, और इसकी कमाइ से अपराधियों को इतने पैसे मिले जाँय कि

वे अन्य अपराधों को भी संगठित करें। इस सम्बन्ध में अवश्य अमेरिका और भारत की परिस्थितियों में भिन्नता है। पाश्चात्य देशों में शराब पीना आम लोगों में मज्जागत हो चुका है, पर यहां ऐसा नहीं। पर साथ ही यहां के लोग कम नशेबाज हैं, ऐसा कोई दावा नहीं कर सकता। यहाँ उतना आम तौर से शराब तो नहीं पी जाती, पर भंग आदि कई नशों का यहां आमतौर से प्रचार है जिनका पाश्चात्य देशों में विशेष प्रचार नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि नशों को हर प्रकार से बन्द करने की कोशिश करनी चाहिए। पर जैसा कि मैं बता चुका यह कोशिश इस रूप में हो कि किसी भी हालत में लकीर की फकीरी के कारण उद्देश्य को आँच न आने पावे। जहाँ लक्ष्य से उपाय में अधिक जोर दिया जाता है, वहां ऐसे खतरे की संभावना है।

(श्री मन्मथनाथ गुप्त)

भारत में बेकारी की समस्या

राष्ट्र का कल्याण बहुत हद तक रोजगार का उच्च तथा स्थिर स्तर कायम रखने पर ही निर्भर रहता है। ऐसे समाज में जहां लोगों को काफ़ी बड़ी तायदाद में बेकार रहना पड़ता हो; रहन-सहन के अच्छे स्तर को कायम नहीं किया जा सकता। स्वयं बेकारी का देश की आम आर्थिक हलचलों से घनिष्ट सम्बन्ध है।

रोजगार कृषि के विभिन्न विभागों में, निर्माण करने वाले उद्योग में अथवा नौकरियों के वितरण में उत्पादक उपकरणों के संचालन पर निर्भर रहता है।

यहां पर यह आवश्यक मालूम पड़ता है कि विभिन्न किस्म की बेकारियों का परस्पर भेद बताया जाय। एक बेकारी तो वह है जिसे संघर्ष-मूलक (Frictional) बेकारी कहते हैं। जो एक नौकरी से दूसरी नौकरी पर तबादला करने में होने वाले छोटे छोटे विलम्बों से पैदा होती है। दूसरी बेकारी वह है जिसे रचना-मूलक (Structural) बेकारी कहते हैं, जिसके निम्नलिखित कारण हैं—वर्तमान उद्योगों का ह्रास होने के कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में होने वाले कम या ज्यादे स्थायी परिवर्तन, नई औद्योगिक प्रणाली का प्रारम्भ जिससे कि बड़ी संख्या में श्रमिकों का प्रतिस्थापन आवश्यक हो जाता है, या ऐसी वस्तुओं के उत्पादन को बन्द करना जिनकी कि अब बिलकुल माँग न होती हो। अन्तिम है, समय-समय पर आने वाले बेकारी की स्थिति जो कि किसी निश्चित अवधि के अन्त में व्यापारिक हलचलों के कारण आती हैं।

किंतु अविकसित देशों में विशाल परिमाण में फैली हुई बेकारी का उपरोक्त किसी भी श्रेणी के आधीन वर्गीकरण नहीं किया जा

सकता। ऐसे देशों में बेकारी का कारण वहां के प्राकृतिक साधनों को समुचित रूप से उपयोग में न लाना तथा वहां की अर्थ-व्यवस्था को पूरी तरह से विकसित न करना है। वहां की सबसे अधिक गम्भीर समस्या मशीनों व उपकरणों की कमी तथा उसके कारण आने वाली वस्तुओं को काफी तायदाद में उत्पादन करने की अयोग्यता है। औद्योगिक-ज्ञान तथा संगठन के अभाव से यह समस्या और भी भयंकर हो गई है। कृषि-प्रधान देशों में बेकारी विशाल आकार में अर्ध-बेकारी का रूप भी धारण कर लेती है।

भारत की समस्या ऊपर कही गई उन कमियों से संबन्ध रखती है जो कि अविकसित देशों की खासियतें कही जाती हैं। यद्यपि संघर्ष-मूलक कारण तथा रचना-मूलक कुप्रबन्ध भी कुछ हद तक बेकारी के बायस कहे जा सकते हैं, किंतु इनकी तुलना में वे बिल्कुल अर्थहीन सिद्ध होते हैं। भारत काम दिलाने के कार्य को विशाल परिमाण में तभी उन्नत किया जा सकता है जब कि उसके साधनों का विकास हो, बड़ी संख्या में उद्यमों तथा कारखानों की स्थापना हो और परिवहन, संचार-साधन तथा सामाजिक-सेवाओं का विस्तार हो। औद्योगिक रूप से अत्यधिक उन्नत पश्चिम के देशों में जहाँ काम दिलाने का स्तर पहले ही ऊँचे शिखर पर पहुँच गया है, अब वहां यह समस्या है कि किस प्रकार इस स्तर को कायम तथा स्थिर रखा जाय। किंतु भारत जैसे देशों में अब जो काम करना है, वह यह है कि रोज़गार को मौजूदा अधोगति से ऊपर उठाया जाय।

युद्ध के समय रोज़गार भारत में बहुत ऊंचे स्तर पर पहूँच गया था। जैसे युद्ध समाप्त हुआ बहुत से लोगों को जो कि युद्ध-कालीन उद्योग तथा फ़ौज में लगे थे, अलग कर दिया गया। इस प्रकार युद्ध के तुरन्त बाद ही लोग बहुत बड़ी संख्या में बेकार हो गये। १५ लाख भूतपूर्व सेवा-नियुक्त व्यक्ति तथा युद्ध-कालीन श्रमिक जिनकी संख्या २० लाख से ३० लाख तक आंकी जाती है, नौकरी से बाहर कर दिए गए। केन्द्रीय सरकार के आधीनस्थ विभागों ने १९४५ में सितम्बर से दिसम्बर तक १२ प्रतिशत की छटनी की। युद्ध के बाद की अपनी आर्थिक व्यवस्था को शान्ति-कालीन आवश्यकताओं के

साथ संगत करने के लिए देश को समय मिलने से पहले ही १६४७ में पाकिस्तान से उत्थापित व्यक्तियों का विशाल परिमाण में भारत आने के कारण बेकारी तथा पुनः संस्थापन की जटिल समस्याएँ उसके सामने खड़ी हो गईं। बाद के दो वर्षों में लगभग ५० लाख व्यक्ति भारत आए। इसके अतिरिक्त कठिन आर्थिक स्थिति के कारण सरकार को अपने स्टाफ की छटनी करने के लिए मजबूर होना पड़ा। कपड़ा-उद्योग जैसे कुछ उद्योगों ने भी कच्चे माल की कमी, परिवहन की कठिनाई तथा तैयार माल के उठाने में देरी होने के कारण अपने यहाँ से लोगों की छटनी की। इन विरुद्ध कारणों के बावजूद भी देश की आर्थिक व्यवस्था ने यह सिद्ध कर दिखाया कि वह फिर से अपनी पूर्वावस्था में आ सकती है और काम दिलाने का कार्य कम या ज्यादा रूप में ज्यों का त्यों बना रहा।

भारत में रोजगार की आज जो स्थिति है उसके प्रधान स्वरूपों का अब हम यहाँ पर संक्षिप्त वर्णन कर सकते हैं। अभी यहाँ काफी तायदाद में बेकारी है, क्योंकि काम करने की क्षमता रखने वाली सारी जन-संख्या को इस्तेमाल कर सकने वाली आर्थिक व्यवस्था अभी पूरी तरह से विकसित नहीं हुई। यही मुख्य समस्या है। यद्यपि देश में फैली हुई बेकारी के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह दस साल पहले की बेकारी से कहीं अधिक है, फिर भी देहाती इलाकों से लोगों का धीरे-धीरे शहरों की ओर प्रस्थान करने के कारण बेकारी की समस्या तीव्र रूप में आगे आ गई है। शहरों के अन्दर स्थित काम दिलाऊ दफ्तरों में दर्ज किये गये नौकरी ढूंढने वालों की संख्या उपरोक्त हलचल के कारण यथार्थ में बढ़ती ही जा रही है। जब तक देहाती इलाकों को समुचित रूप से उन्नत नहीं किया जाता और वहाँ शहरी केन्द्रों की कुछ संभावनाओं एवं नौकरी प्राप्त करने के सुअवसरों को उपलब्ध नहीं किया जाता तब तक इस हलचल को रोकना बड़ा कठिन होगा।

भारत में जनशक्ति से सम्बन्धित अन्य समस्यायें एक तो श्रम का व्यावसायिक कुवितरण है और दूसरी अकुशल श्रमिकों तथा

वेतन-भोगी एवं विशेष लाभ वाले व्यवसायों से तालुक रखने वाले श्रमिकों का नितान्त अधिकता। यही समस्या आंशिक रूप से देश की आर्थिक व्यवस्था में होने वाले रचनामूलक (Structural) कुप्रबन्ध का कारण है। अन्त में सन्तुलन के इस अभाव को केवल औद्योगिक शिक्षा व ट्रेनिंग की सुसंबद्ध योजनाओं के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। भारत के नवयुवकों में औद्योगिक-कौशल अवाप्त करने एवं अपने हाथों से काम करने की रुचि उत्पन्न करने की भी आवश्यकता है। यदि देश के परम हित के लिये बनाई गई रोज़गार की किसी भी नीति को अमल में लाना है तो इसके लिये शिक्षा की मौजूदा प्रणाली एवं साथ ही उदार कलाओं तथा व्यवसायों पर उसके द्वारा दिए जाने वाले बल में रूपभेद करना आवश्यक है। भारत में औद्योगिक-शिक्षा-परिषद् (Council for Technical Education) ऊँची औद्योगिक शिक्षा के लिए सुविधायें देने के बारे में प्रयत्न कर रही है, ताकि क्लर्की की नौकरियों की ओर बढ़ने वाले वेग को अधिक उपजाऊ क्षेत्रों की ओर मोड़ा जा सके। भारत सरकार की कारीगरों को प्रशिक्षण देने की योजनाएँ भी इस तरह के मतलब के लिये तैयार की गई हैं।

अन्त में हम उस पुरानी अर्धबेकारी की ओर आते हैं जो कि देहाती क्षेत्रों में किसानों, कृषि-मज़दूरों व देहाती कारीगरों में फैली हुई है। इस प्रकार की बेकारी को दूर करने का केवल एक ही उपाय है, वह यह कि वहाँ सिंचाई का विस्तार किया जाय और अधिक प्रभाव-शाली कृषि-प्रणाली को चालू किया जाय।

बार बार यह सवाल पूछा जाता है कि क्या पूँजीवादी समाज में रोज़गार का ऊँचा और स्थिर स्तर कायम करना किसी प्रकार संभव है? वास्तव में समाजवादी एवं पूँजीवादी—दोनों तरह की अर्थ-व्यवस्थाओं में, रोज़गार के स्तर पर आजकल प्रभावोत्पादक मांग का ही शासन है। इसलिये सरकार यदि इस स्थिति में है कि वह कुल इन्वेस्टमेंट तथा व्यय के एक बड़े भाग पर नियन्त्रण रख सकती है अथवा पर्याप्त मात्रा में उस पर प्रभाव डाल सकती है और उन्हें

आवश्यक सन्तुलन के केन्द्र-बिन्दु पर कायम कर सकती है तो वह निश्चित ही रोज़गार का ऊँचा तथा स्थिर स्तर कायम करने की स्थिति में आ जायेगी। वास्तव में यह वही चीज़ है जिसे कि योजना आयोग पूरा करना चाहता है। प्रभावशील योजना तैयार करने के लिए उसने, "राज्य द्वारा नियन्त्रित तथा संचालित एवं आंशिक रूप से राज्य की कार्यवाही से और आंशिक रूप से वैयक्तिक उपक्रमणों व प्रयत्नों से तैयार की गई" अर्थ-व्यवस्था को ज़रूरी बताया है।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि उचित संतुलन वाली अर्थ-व्यवस्था में कृषि तथा अन्य मुख्य उद्योगों में संलग्न व्यक्तियों के अनुपात में अनुचित वृद्धि नहीं होनी चाहिए। जैसे ही आर्थिक प्रगति का स्तर ऊंचा होता जायेगा वैसे ही द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के उत्पादन में लगे हुए श्रमिकों में भी अभिवृद्धि होती जायेगी। १९४८ में किये गये आकलन के अनुसार उस समय भारत में करीब ६८ प्रतिशत मज़दूर मुख्य व्यवसायों में, १४ प्रतिशत द्वितीय श्रेणी के व्यवसायों में तथा १८ प्रतिशत तृतीय श्रेणी के व्यवसायों में काम करते थे। अमेरिका के साथ मुकाबला करने पर मालूम होता है कि वहां ४५ प्रतिशत जनसंख्या तीसरी श्रेणी के व्यवसायों में संलग्न है। केवल पूरी तरह से विकसित अर्थ-व्यवस्था में ही रोज़गार का ऊंचा स्तर संभव हो सकता है, इसलिए द्वितीय तथा तृतीय श्रेणियों के व्यवसायों में काम दिलाने के कार्य को उत्तेजना देने की आवश्यकता है, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

रोज़गारी के सुअवसरों को बढ़ाने और व्यवसायिक समायोजन की कठिनाईयों को कम करने के लिए प्रभावोत्पादक मशीनरी के महत्व पर बल देने की विशेष आवश्यकता नहीं। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय-रोज़गार-सेवा (National Employment Service) को उन्नत करना नितान्त आवश्यक है। भारत में राष्ट्रीय-रोज़गार -सेवा की स्थापना युद्ध के बाद छटनी के दबाव के कारण १९४५ में हुई। यद्यपि यह अभी अपने शैशव-काल में ही है फिर भी इसने काफ़ी

सेवा की है और अपने सीमित साधनों के बावजूद भी यह जनशक्ति के उचित उपयोग में सहायता दे रही है।

अधिक रोज़गार के लिए बनाई गई योजनाओं का अधिक उत्पादन की योजनाओं के साथ एकीकरण करना निहायत ज़रूरी है। खासकर जनशक्ति के क्षेत्र में औद्योगिक तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा उद्योग की आवश्यकताओं के मध्य समानता का होना आवश्यक है, ताकि लोग उन व्यापारों और व्यवसायों में रोज़गार प्राप्त कर सकें जिनमें कि उन्हें प्रशिक्षित किया गया है।

रोज़गार के स्तर को ऊपर उठाना एक अत्यन्त कठिन काम है। अतः वैयक्तिक उपकरणों के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक विकास के क्षेत्र में वे सरकार के प्रयत्नों में सहायता करें और उन्हें आगे बढ़ावें ताकि इस उद्देश्य को प्रजातान्त्रिक ढंग से पूरा किया जा सके।

(डा० नवगोपालदास, पी० एच० डी०, आई० सी० एस०)

साम्यवाद—आधार और भविष्य

दल बन्दियाँ, पार्टीबाजी और "वादों" के इस युग में किसी भी स्वतन्त्र विचारक के लिये यह बताना अत्यधिक कठिन है कि वह किस दल या 'वाद' का समर्थक है। इसका कारण है सत्य का अभाव ! किसी भी 'वाद' या दल के बारे में स्पष्ट और सत्य चित्री-करण नहीं किया जाता और फल यह होता है कि या तो जनता केवल भेड़-चाल के समान अंधाधुंध किसी 'वाद' या दल के पीछे भागने लगती है या वह एक निष्पक्ष तथा मूक दर्शक के समान खड़ी खड़ी दलों और वादों की पैंतरेबाजियाँ देखती रहती हैं। परिणाम चाहे दोनों में से कोई भी हो, पर यह स्वीकार करने में आपत्ति न होनी चाहिये कि दोनों में से एक भी परिणाम अच्छा नहीं। आवश्यक यह कि कोई भी पग उठाने से पहले जनता भली प्रकार सोच ले, समझ ले और फिर अनुगामिनी बने।

एक 'वाद' के रूप में 'साम्यवाद' भी पिछली दो-तीन दशाब्दियों से इसी प्रकार का एक सिरदर्द उपस्थित किये हुए हैं। भारत ही नहीं, समस्त संसार की जनता की अवस्था सांप और छछुंदर जैसी है, जिसे न निगलते बनता है, न उगलते। एक ओर साम्यवाद की आकर्षक अर्थव्यवस्था जहाँ जनता को अपनी ओर खींचती है, वहां इसका राजनैतिक और सामाजिक ढांचा मन में एक कटुता सी, कड़वाहट सी, उत्पन्न कर देता है और वे साम्यवाद से मुक्ति पाने में ही अपना कल्याण समझते हैं। रूस, चीन तथा अन्य देशों के साम्यवादी ढाँचे ने साम्यवाद के मूल-आधार को जहां एक ओर धक्का पहुंचाया है वहां सार्वजनिक क्षेत्र में साम्यवाद के इस "क्रिया-त्मक रूप" के प्रति घृणा ही उत्पन्न हो पाई है किन्तु इसके विपरीत

भी हमें देखना यह है कि अपने मूल में साम्यवाद क्या है, इसका आधार क्या है और हमारे देश तथा अन्य देशों में इसका भविष्य क्या है ? परन्तु यह सब भी एक निष्पक्ष तथा निरपेक्ष भाव से।

अतीत तथा आधार-शिला

इतिहास के आंचल में बिखरे हुए अतीत के पृष्ठ तथा योरोप की भूमि में सोई हुई भूत की आह, हमारा ध्यान उस समय की ओर खींचती है जब योरोप में सामन्तशाही (Feudal System) का दबदबा और जोर शोर था। इन सामन्तों (Lords और Knights) के क्रूर तथा अमानवीय व्यवहारों की गाथा स्वयं ही जन-साधारण की कसक तथा व्यथा सुना रही है। बेचारे किसान जोतते स्वयं और उन्हें इतना भी न मिलता कि पेट भर पाते। उत्पादन के परिश्रम का अधिकांश भाग तो ये सामन्त करों के रूप में छीन लेते और वे तथा उनके अन्य साथी उन वस्तुओं के लिये तरसते रह जाते।

परिवर्तन का चक्र चला अवश्य, किन्तु सामन्तशाही के बाद जो व्यवस्था सन्मुख आई वह अर्द्ध पूंजीपति व्यवस्था (Semi-Capitalistic System) कही जा सकती हैं इस प्रकार पूंजीवाद जिसका भवन ही शोषण तथा अत्याचार की आधार शिलाओं पर खड़ा है अपने प्रारम्भिक-पुरातन रूप में अस्तित्व में आया। इतना परिवर्तन अवश्य हुआ कि जहां इससे पहले सीधा तथा प्रत्यक्ष शोषण था। वहां अब अप्रत्यक्ष शोषण होने लगा।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को खुल—खेलने की पूरी छूट "मशीन युग" के आगमन ने दी। मिलों और फैक्ट्रियों के निर्माण से बेकारी का प्रसार, काम के लम्बे और व्यस्त घंटे, कम वेतन तथा सामाजिक-विषमता की उत्पत्ति हुई और इस प्रकार दमन और शोषण का ऐसा चक्र चला—ऐसा भयानक चक्र चला कि समस्त विचारक तथा विद्वान एक बारगी ही सिहर उठे और इस प्रकार "राजकीय अर्थ शास्त्र" (Political Economy) और उसके सिद्धान्तों का जन्म हुआ।

श्रमिक वर्ग के शोषण और उनकी दासतापूर्ण अवस्था ने विचारकों को एक ऐसी अर्थ व्यवस्था को ढ़ूंढने के लिये विवश किया जिसमें पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में स्थित शोषण तथा अत्याचार न हों, धन, सम्पत्ति तथा आय का अन्याय पूर्ण विभाजन न हो और न ही आर्थिक तथा सामाजिक असमानतायें हों।

मार्क्स तथा ऐंगिल्स

इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य मार्क्स तथा ऐंगिल्स दो जर्मन विचारकों ने किया। सबसे पहले मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पूंजी" (Capital) में साम्यवाद के सिद्धान्तों को सामने रखा। "साम्यवादी-व्यवस्था" का उन्होंने "पूंजीवादी-व्यवस्था" के स्थान पर प्रतिपादन किया। मार्क्स तथा ऐंगिल्स दोनों ने मिलकर "साम्यवादी-घोषणापत्र" (Communist Manifesto) तैयार किया और विस्तृत रूप से उसमें साम्यवाद के सिद्धान्तों और रूपरेखाओं का प्रतिपादन किया। इन दो पुस्तकों ने सारे पूंजीवादी समाज को थर्रा दिया। संसार ने एक नई व्यवस्था और पुरानी समस्याओं के नये हल देखे और इस नये वाद को उस समय का नया धर्म स्वीकार किया, जिसके फलस्वरूप इंग्लैंड आदि औद्योगिक-पूंजीपति देशों में श्रम संगठनों (Trade Unions) का जन्म हुआ। यही वास्तविक रूप में साम्यवाद की ओर पहला कदम था।

रूप रेखा

साम्यवादी व्यवस्था का जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पूंजीवाद को स्थानान्तरित करने के लिए ही जन्म हुआ था। यदि यहां पर पूंजीवाद की परिभाषा दे दी जाय, तो अनुपयुक्त न होगा। प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ श्री तथा श्रीमती सिडनी वैब के शब्दों में पूंजीवादी व्यवस्था या पूंजीवाद औद्योगिक तथा वैधानिक प्रगति का वह स्तर है जिसमें श्रमिक उत्पादन के अंगों के स्वामी न होकर कार्य करने के लिये पारिश्रमिक पाता है और उसका जीवन, कार्य तथा क्षमता राष्ट्र की आबादी के केवल एक बहुत छोटे से भाग पर आधारित रहती हैं— वह भाग जो कि वैधानिक स्वामित्व, कब्जे, तथा संगठन

के द्वारा भूमि श्रम तथा मशीन का स्वामित्व ग्रहण कर लेते हैं और इस प्रकार उसका उद्देश केवल स्वयं के लिए ही, इन उत्पादन के अंगों से, लाभ प्राप्त करना होता है। *

पूंजीवाद की इस परिभाषा को विपरीत हमें मिलती है साम्यवाद की परिभाषा। इन्गलैन्ड निवासी प्रसिद्ध भारतीय लेखक श्री रजनीपाम दत्त लिखते है :—

Communism "is to organise the new productive forces as social forces, as the common wealth of the entire existing society for the rapid and enormous raising of the materialist basisof society, the destruction of poverty, ignorance and disease and of class and national separations, the unlimited car-

---

* "By the term Capitalism or the Capitalist system, or... the Capitalist civilisation, we mean the particular stage in the development of industry and legal institutions in which the bulk of the workers find themselves divorced from the ownership of the instruments of production in such a way as to pass in to the position of wage-earners, whose subsistence, security, and personal freedom seem dependent on the will of a relatively small proportion of the nation; namely, those who own and; through their legal ownership, control and organisation of the land, machinery and the labour force of the community, and do so with the object of making for themselves individual and private gains."

Mr. and Mrs. Sidney Webb की पुस्तक "The Decay of Capitalist Civilisation." (पृष्ठ २) से उद्धृत

rying forward of science and culture, and the organisation of the world communist society in which all human beings will for the first time be able to reach full stature and play their part in the collective development of the future humanity." *

समस्त उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्तर पर एकत्रीकरण तथा इस प्रकार उत्पादित वस्तुओं का समान तथा उचित वितरण, समाज के भौतिक आधार को मजबूत करेगा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय, कैसी भी, असमानता दूर होगी।

श्री सी० पी० रामास्वामी ऐयर ने भी लिखा है :—

"......The communist theory is rigidly logican extension of the evolutionary doctrine and regards what we term as mind or spirit as a relatively late development in the evolution of matter."

आपके अनुसार साम्यवादी सिद्धान्त क्रमिक विकास के कारण तर्क सम्मत हैं और भौतिकता के क्रमिक विकास से वे आत्मा और मस्तिष्क के विकास को देर का बताते हैं।

इसी प्रकार साम्यवाद की इच्छा यही प्रतीत होती है कि वह आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक सभी प्रकार की असमानताओं को नष्ट करके एक ऐसे समान तथा वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य करे, और उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल ही मुआवजा प्राप्त हो। **

* "Fascism and Social Revolution" (INDIAN EDITION) (पृष्ठ xxvi) से उद्धृत।

** "साम्यवाद का नारा है: From each according to his ability and to each according to his needs."

वास्तव में देखा जाय तो साम्यवाद बुर्जुआओं (पूंजीपति) और प्रोलिटेरियेट (श्रमजीवी) के मध्य एक संघर्ष है। दूसरे शब्दों में हम इसे शोषक और शोषित के संघर्ष के मध्य एक रेखा कह सकते हैं। दो नये शब्द 'बुर्जुआ' और 'प्रोलिटेरियेट' हमारे सामने आये हैं। इनकी परिभाषा देना असंगत न होगा।

'बुर्जुआ' वर्तमान पूंजीपतियों की उस श्रेणी को कहते हैं जो उत्पादन के साधनों के स्वामी हैं और जो वेतन-भोगी (wage-earners) के स्वामी हैं।

'प्रोलिटेरियेट' समाज के उस वर्ग को कहते हैं जिनके पास स्वयं अपने उत्पादन के कोई साधन नहीं होते और इस कारण जीविका के लिए उन्हें अपने श्रम को बेचना पड़ता है।

बुर्जुआ इन्हीं लोगों द्वारा उत्पादित आय पर जीवित रहते हैं और स्वयं कुछ भी उत्पादन नहीं करते।

साम्यवाद का ध्येय "बुर्जुआ" तथा पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना है और वेतन भोगी "प्रोलिटेरियेट" का अधिनायकवाद (Dictatorship) स्थापित करना है।

"साम्यवाद" श्री हैने ने लिखा है, "एक ऐसी भाषा है जिसे प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है और जिसके आधार-भूत तत्व क्षुधा, ईर्ष्या तथा मृत्यु में छिपे हुए हैं।" *

एक वर्गहीन समाज की स्थापना साम्यवाद का एक मात्र उद्देश्य, प्रस्तुत रूपरेखा के आधार पर प्रतीत होता है।

---

* Communism "is a language which every people can understand ....its elements are hunger, envy and death."

—Heine

अर्थ तन्त्र

अभी तक साम्यवाद का कोई निश्चित अर्थ तन्त्र (Economic Structure) या आर्थिक अपरेखा (Economic Outline) प्रस्तुत नहीं की गई है। रूस तथा अन्य देशों में किये गये 'साम्यवाद' के प्रयोगों से जो अर्थ तन्त्र हमारे सन्मुख आया है, उसका हम निम्न भागों में अध्ययन कर सकते हैं:—

१—समस्त आर्थिक प्रक्रियाओं का केन्द्रीय करण (Centralization of all the economic activities)

२—सुनियोजित अर्थ व्यवस्था (Well and fully planned economic organisation.)

३—समस्त उत्पादन के साधनों का राजकीय स्वामित्व (State ownership of all the factors of production.)

४—उपभोग की सामग्री का उचित तथा समान वितरण (Just and equal distribution of consumer goods.)

५—मुद्रा की समाप्ति (Abolition of money Economy)

साम्यवादी अर्थ तन्त्र का यह अन्तिम भाग केवल सैद्धान्तिक रूप में ही सामने आया। किसी भी देश में अब तक ऐसा प्रयोग सफल नहीं हो सका है और न ही भविष्य में किसी ऐसे प्रयोग की सफलता की आशा ही अपेक्षित है, क्योंकि हमारा दैनिक जीवन, आदान-प्रदान तथा विनिमय सभी कुछ मुद्रा तथा धन पर इस प्रकार आधारित हो चुके हैं कि हमें इस मुद्रा-अर्थ-व्यवस्था (Money Economy) से छुटकारा पाने का कोई मार्ग ही नहीं सूझता। अब हम यहां संक्षेप में साम्यवादी अर्थ-तन्त्र के एक-एक भाग पर क्रमशः विचार करेंगे।

जैसा कि सोवियत रूस में किये गये साम्यवाद के परीक्षण से विज्ञ पाठकों को ज्ञात होगा, केन्द्र से ही समस्त आर्थिक प्रक्रिया संबन्धी आदेश जारी किये जाते हैं। सर्वोच्च आर्थिक समिति (Supreme Economic Council) अपनी शाखाओं और

उपशाखाओं द्वारा सोवियत योजना आयोग (Gosplan) की योजनाओं का प्रबन्ध तथा संचालन करती है। सर्वोच्च समिति की शाखाओं आदि के द्वारा सोवियत केन्द्रीय सरकार समस्त अर्थ व्यवस्था पर अपना आधिपत्य रखती है। कहना न होगा कि इस प्रकार साम्यवादियों की अभीप्सित श्रमिक-तानाशाही (Dictatorship of Proletariate) एक वास्तविकता बनकर कार्य कर रही है। इस केन्द्रीयकरण का लाभ, जैसा बताया जाता है, यह है कि सरकार एक सुनियोजित रूप में समस्त आर्थिक प्रक्रियाओं का प्रबन्ध कर सकती है और अपनी योजनाओं को पूर्ण और सन्तोषप्रद रूप से संपन्न कर सकती है। इसके विपरीत आलोचकों का कहना है कि इस प्रकार का केन्द्रीयकरण आर्थिक क्रियाओं की गति में शिथिलता तथा व्यवधान उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार की व्यवस्था की सफलता सुप्रबन्ध और सुकार्यपरता पर ही निर्भर है, लेकिन फिर भी आवश्यक तथा शीघ्र निर्णयों में विलम्ब होता ही है और जन-हित के कितने ही कार्य समय पर नहीं हो पाते।

जहाँ तक आयोजित अर्थ व्यवस्था का प्रश्न है, सभी एक मत से स्वीकार करते हैं कि आर्थिक प्रक्रियाओं के सुव्यवस्थित संचालन तथा राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये आयोजन (Planning) एक आवश्यक वस्तु है। रूस में ही नहीं, अमरीका, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, स्वीडन आदि देशों ने आंशिक या पूर्ण रूप से अपने अपने देशों की अर्थ को सुव्यवस्थित करने के लिए आयोजन का आश्रय लिया है और हमारे देश भारत में भी एक पंच-वर्षीय योजना लागू करने पर विचार किया जा रहा है।

तीसरे आर्थिक मुद्दे पर विचार करते हुए यह अनुभव किया गया है कि उत्पादन के साधनों का पूर्ण रूप से राजकीय स्वामित्व क्रियात्मक रूप से सम्भव नहीं। क्योंकि यदि राज्य ने भौतिक साधनों पर अधिकार कर भी लिया तब भी वह मानवान्तर्गत (inherited in man) साधनों पर अधिकार नहीं कर सकता उदाहरण के लिए श्रमिक की कार्य क्षमता (Efficiency of labour), तथा प्रबन्धक

के गुणों (Entrepreneural abilities) पर उसका वश नहीं। ये तो प्रकृति-प्रदत्त गुण हैं और राज्य या कोई भी व्यक्ति उनमें कोई बढ़ोतरी या कमी नहीं कर सकता और इस प्रकार राज्य सम्पूर्ण उत्पादन के साधनों का स्वामी नहीं हो सकता। हां, भौतिक तथा पदार्थ साधनों पर उसका अधिकार तथा स्वामित्व स्थापित हो सकता है किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं कि इन भौतिक साधनों की क्षमता राजकीय-प्रभुत्व से बढ़ जायगी। यह एक तथ्य है कि साधनों की क्षमता (Efficiency of factors of production) उनके प्रयोग के उचित अनुपात पर निर्भर है। विभिन्न साधनों के मिलाने का अनुपात जितना ही उचित और ठीक (Compr hensive) होगा, उतने ही अनुपात से उत्पादन बढ़ेगा। इस तथ्य के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि उत्पादन के साधनों का राजकीय-स्वामित्व उनके ठीक प्रयोग की गारन्टी नहीं देता और दोबारा फिर यही कहना पड़ता है कि प्रबन्धक (Entrepreneur) की योग्यता ही साधनों के उचित प्रयोग की गारन्टी दे सकती है। एक योग्य और बुद्धिमान प्रबन्धक अपनी बुद्धिमानी से कम खर्च और बाला नशीन वाली कहावत को चरितार्थ कर सकता है. अर्थात वह स्वयं के सुप्रबन्ध और योग्यता से साधनों के कम से कम प्रयोग से अधिक से अधिक उत्पादन करेगा, और जैसा कि सब जानते हैं राज्य प्रत्येक उद्योग तथा कार्य की देख भाल स्वयं नहीं कर सकता, इस कारण यह भी गारन्टी नहीं मिल सकती कि साधन ठीक ही तरीके से प्रयुक्त होंगे। इन्हीं सब कारणों से उत्पादन के साधनों का राजकीय स्वामित्व की धारणा (Conception) हास्यास्पद प्रतीत होती है और अनुभव होता है कि यह केवल सैद्धान्तिक रूप में ही प्रस्तुत की गई है और इसके किसी भी वास्तविक तथा क्रियात्मक प्रयोग (Application) पर ध्यान नहीं दिया गया।

उपयोग की सामग्री का उचित न्यायपूर्ण तथा समान वितरण एक ऐसी समस्या है जिसका हल वर्तमान राशनिंग प्रणाली है। किन्तु इस प्रकार के वितरण से मनुष्य-मनुष्य न रह कर केवल एक मशीन मात्र रह जाता है, जिसे नपा तुला कोयला और तेल ही मिलता है।

राशनिंग प्रणाली केवल विशेष संकट जनक अवस्थाओं (Emergency Periods), उदाहरणतः दुर्भिक्ष अकाल या युद्धकाल आदि में ही अधिक उपयुक्त है, किन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सामान्य अवस्था में इस प्रणाली का प्रचलन मानव के विकास-शारीरिक और बौद्धिक दोनों प्रकार के विकासमें बाधा डालता है और इस प्रकार उसकी कार्य क्षमता (Efficiency) तथा तत्परता कम हो जाती है। कारण कि एक मशीन तो बचे हुए तेल और कोयले से अपनी ताकत के अनुसार काम करती रहती है, किन्तु मानव एक मशीन मात्र बनकर काम नहीं कर सकता और इस प्रकार वह केवल अपना व्यक्तिगत ही नहीं, राष्ट्र का भी अकल्याण करता है। समान वितरण से अभिप्राय होना चाहिए कि प्रत्येक के पास इतना धन या दूसरे शब्दों में इतने साधन होने चाहियें कि वह अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ती कर सके।

मुद्रा की समाप्ति (Abolition of money) के बारे में ऊपर भी काफी कहा जा चुका है और कुछ अधिक कहना व्यर्थ सा ही होगा। हां, इतना अवश्य है कि वर्तमान युग में मुद्रा की समाप्ति एक भयङ्कर भूल होगी, जो कि शायद कोई भी न करना चाहे।

संघर्ष-मूलक तथा वर्ग भेद से युक्त समाज के स्थान पर एक वर्गहीन समाज की स्थापना ही साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था का एक मात्र उद्देश्य है। मालिकों और मजदूरों का भेद मिटाकर एक समान वर्ग की स्थापना ही—जो सारे राज्य में एक हो—साम्यवाद चाहता है, किन्तु अभी तक भी यह विभेद मिटाया नहीं जा सका है। शासक शासितों के रूप में वर्ग-भेद अब भी रूस में दिखाई देता है। स्वामी तथा आधीनस्थ का भेद अब भी वर्तमान है और यह मिट नहीं सका है। आदिम युग से अभी तक यह थोड़ा सा भेद तो मानव मिटा न पाया। फिर अर्थ-व्यवस्था तो सदैव ही संघर्ष तथा भेद-मूलक रही है।

सामाजिक दृष्टि से देखने पर साम्यवाद हमारे सामने एक ऐसा समाज प्रस्तुत करता है जो नैतिकता तथा चरित्र से बहुत दूर है। साम्यवाद न तो धर्म में विश्वास करता है और न संस्कृति में

और न ही चरित्र में और न नैतिकता में। इस प्रकार साम्यवाद द्वारा प्रस्तुत समाज का चित्र बहुत ही कुरुचि पूर्ण तथा भोंडा है। धर्म की बात तो एक ओर छोड़िये (क्योंकि अनादि काल से ही धर्म समस्त विभेदों तथा संघर्षों का कारण रहा है,) किन्तु चरित्रहीन तथा नैतिकता से हीन समाज कोई भी व्यक्ति पसन्द नहीं करेगा। हां, एक नैतिक समाज में धार्मिक स्वतन्त्रता अवश्य ग्राहय तथा माननीय है। Secural state, अर्थात असाम्प्रदायिक राज्य एक आदर्श माना जा सकता है, किन्तु एक चरित्र हीन, अनैतिक तथा संस्कृति शून्य समाज नहीं।

राजनैतिक दृष्टि से साम्यवाद एक सम्पूर्ण शक्तिशाली राज्य-तन्त्र (Totalitarian State) प्रस्तुत करता है जिसमें श्रमिकों के अधिनायकवाद (Dictatorship of Proletariate) का ही एक मात्र सारपूर्ण अस्तित्व है। किन्तु आज के जनवादी युग में तानाशाही का कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार जो निष्कर्ष हम निकाल सकते हैं वह यह है कि साम्यवाद केवल कुछ अंशों में ही स्वीकार्य हो सकता है। सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से साम्यवाद अग्राह्य है और जैसा कि ऊपर भी कहा गया है कि जहाँ साम्यवाद से एक ओर लगाव उत्पन्न होता है उसके अर्थ-तन्त्र के कुछ अंगों के कारण वहाँ उसके समाज तथा राज-तन्त्र को देखकर उससे घृणा ही उत्पन्न होती है। यह बात ध्यान रखने की आवश्यकता है कि समस्त समस्याओं का एक मात्र हल साम्यवाद ही नहीं है। अनेक विचारधाराओं के सामन्जस्य से ही एक ऐसा हल ढूंढा जा सकता है जो सम्पूर्ण दृष्टि से हमारी समस्याओं को हल कर दे। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, पीछे दिये गये वृत्तान्त के आधार पर, भारत की भूमि साम्यवाद के लिये अनुर्वरा ही सिद्ध होगी। क्योंकि भारत सदैव से ही धर्म के आधार को लेकर आगे बढ़ा है। हमारे इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी हैं। महात्मा गाँधी ने भी धर्म का आश्रय लेकर देश को एक नवीन ज्योति, नूतन साहस और नवल बल प्रदान किया और भारत में सदैव नैतिकता, चरित्र तथा सांस्कृतिक विकास पर विशेष बल दिया गया है।

ब्रिटिश साम्राज्य के दिनों में प्रचलित शासन प्रणाली ने धीरे धीरे लोगों में जनतांत्रिक (Democratic) भावनायें रोपनी प्रारम्भ करदी हैं। ऐसे समय तानाशाही का फल कदाचित एक जन-क्रांति ही हो जो जनतन्त्र की स्थापना का लक्ष्य लेकर चले। इसके साथ ही साथ आर्थिक असमानता को दूर करने के लिये उठाये जा रहे पग, जैसे ज़मींदारी उन्मूलन, जागीरदारी उन्मूलन, भूमि-सुधार कानून, शनैः शनैः उद्योगों का राष्ट्रीयकरण आदि इतने मज़बूत प्रतीत होते हैं कि यह आशा की जा सकती है कि पन्द्रह वर्ष बाद देश का नक्शा ही बदल जायेगा और ये विभेद और असमानतायें भारत भूमि से सदा के लिये निष्कासित होजायेंगी। किन्तु यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि साम्यवाद के आगमन से ही भारत तथा विश्व में फैली असमानतायें दूर हो जायेंगी और एक आदर्श राज्य (चरित्र तथा नैतिकता से हीन) स्थापित होजायगा। वैसे भविष्य के बारे में कोई नहीं जानता कि क्या होगा ? फिर भी विज्ञ पाठक इस निरपेक्ष चित्रण को पढ़कर स्वयं कह सकते हैं कि साम्यवाद हमारे लिये, हमारे देश के लिये और विश्व के लिये कहां तक उपयोगी है और कहाँ तक नहीं ?

(श्री कुमार नीरस)

भारतीय संस्कृति

जिसको देखो, वही आज भारतीय संस्कृति की दुहाई देकर अधिकार पूर्वक बात करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाता। सबसे मजेकी बात तो यह है कि भारतीय संस्कृति का नाम लेकर परस्पर विरुद्ध उपसंहार निकाले जाते हैं। यह प्रमाणित करने की चेष्टा की जाती है, मानो भारतीय संस्कृति की उत्पत्ति, धारा और विकास के नियम अन्य संस्कृतियों के विकास के नियमों से पृथक थे। इस सम्बन्ध में इतनी धांधली मची हुई है, और इस धांधली के साथ इतने बड़े-बड़े नाम संयुक्त हैं कि सहसा ऐसा मालूम होता है कि जो कुछ दावे किए जाते हैं, वे अकाट्य होंगे। इस लिए यह और भी आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति को विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए।

भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में जो सबसे गलत धारणा है, वह यह कि यह आर्यों की संस्कृति है। ऐतिहासिक कसौटी पर इस दावे को कसने पर कुछ और ही तथ्य ज्ञात होते हैं। जिस प्रकार हम भारतीय गण नस्ल की दृष्टि से विशुद्ध आर्य नहीं हैं, उसी प्रकार—और शायद उससे अधिक हद तक—भारतीय भारतीय संस्कृति आर्य-संस्कृति नहीं है। इस सम्बन्ध में विद्वानों में अच्छी गवेषणाएं हुई हैं और अब हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रागैतिहासिक सोपानों के सम्बन्ध में बहुत कुछ मालूम हो चुका है। पर दुःख है कि इस सम्बन्ध में जो गवेषणाएं हुई हैं और जो ज्ञान उपलब्ध हुआ है, उनका साधारण जनता से 'ब्लैकआउट' सा कर दिया गया है। इस सम्बन्ध में विद्वानों का एक षड्यन्त्र सा मालूम होता है। जो बातें इस प्रसंग में ज्ञात हो चुकी हैं, वे बहुत ही अद्भुत हैं, और जिन लोगों ने भारतीय संस्कृति की जड़ों का गहराई के साथ अध्ययन नहीं किया है, उनको शायद ये उपसंहार बहुत ही आश्चर्यजनक—यहां तक कि सनसनी उत्पन्न करने

वाले भी—ज्ञात हों !

यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि भारत में आर्यों के आगमन के पहले यहां कम से कम दो सभ्यताएं मौजूद थीं, जो आर्यों से किसी भी प्रकार निम्नकोटि की नहीं थी; बल्कि कई दृष्टियों से उससे उच्चकोटि की थीं। इन दो सभ्यताओं के नाम आस्ट्रिक और द्राविड़ हैं। आस्ट्रिक जाति ने कृषि-कार्य में बड़ी उन्नति की थी। वे व्रात्य या वद्धू अवस्था को पारकर बहुत पहले ही शालीन हो चुके थे। इस सम्बन्ध में शालीन शब्द द्रष्टव्य है। मनुष्य जाति में सर्वत्र शाला या स्थायी घर में निवास करने के साथ ही शालीनता या सभ्यता संयुक्त किया गया है। आस्ट्रिक गण कृषि के क्षेत्र में कई विषयों में युग-प्रवर्त्तक थे। प्रसिद्ध विद्वान डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में 'वे धान, पान, लौकी, बैंगन, नारियल आदि उत्पन्न करते थे। पहाड़ को काटकर ये धान के खेत तैयार करते थे; समतल भूमि में तो वे करते ही थे। पहले वे हल के लिए पैने लकड़ी के कुन्दों का व्यवहार करते थे। धनुष ही उनका प्रधान अस्त्र था। वे पेड़ के तने से बनी हुई डोंगियों का प्रयोग करते थे। कई तनों को एक साथ बांधकर उनसे एक तरह का डोंगा बनाते थे, जिसपर वे बड़ी-बड़ी नदियों—यहां तक कि सागरों—को पारकर जाते थे।'

ऐहिक बातों में ही नहीं, कई अन्य बातों में भी वे आजके हिन्दुओं के गुरु थे। उनका विश्वास था कि मनुष्य में एक या एक से अधिक आत्माएं होती हैं, जो मनुष्य की मृत्यु के बाद अन्य जीवों, पेड़ों, पहाड़ों में प्रवेश कर जाती थीं। डाक्टर सुनीतिकुमार ने बतलाया है कि बाद को चलकर यही धारणा हिन्दुओं में पुनर्जन्मवाद के रूप में उनके धर्म और दर्शन का सबसे प्रमुख अंग बन गई। कहना न होगा कि यह बात इस लिए और भी बड़ी हो जाती है कि भारत में आने वाले आर्यों में—यहां तक कि जब वे भारत में बहुत दिनों तक बस चुके थे, तब भी—जैसा कि ऋग्वेद से ज्ञात होता है, पुनर्जन्मवाद की धारणा की उत्पत्ति नहीं हुई थी। ऋग्वेद में जो भारतीय आर्यों का सबसे प्रमुख और प्राचीन साहित्य है, जन्मान्तरवाद का कोई पता नहीं चलता। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि जन्मान्तरवाद

ही भारतीय धार्मिक दर्शन और विचार धारा की सबसे बड़ी विशेषता है। यहूदी, ईसाई और मुसलमान पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। उनके यहां तो कयामत का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार कयामत के दिन सब आत्माएं उठेंगी। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि भारत के धार्मिक दर्शन की जो सबसे बड़ी विशेषता है, वह आर्यों से ली हुई नहीं है।

हिन्दुओं के धार्मिक जीवन का एक प्रधान अंग श्राद्ध भी है, जिसकी अन्तर्निहित विचारधारा यह है कि मृतकों को बीच बीच में रसद पहुंचाई जाए। यह धारणा भी आस्ट्रिकों में मौजूद थी, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता, कि केवल आस्ट्रिकों में ही यह विश्वास था। यह विश्वास तो कई प्राचीन जातियों में पाया जाता है, और यदि यह कहा जाय कि यह विश्वास करीब-करीब सार्वदेशिक था, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। प्राचीन मिस्र-निवासियों में इस विचार का सबसे चित्रमय प्रदर्शन मिलता है। वहां मृतकों को गाड़ते समय उनके साथ दैनिक आवश्यकता की सब वस्तुओं के साथ साथ खाने पीने के द्रव्य भी गाड़ दिए जाते थे। ऊँचे घरानों के लोगों के साथ तो गुलाम तथा बीवियां भी गाड़ दी जाती थीं। अस्तु।

आस्ट्रिक जाति के लोग शायद सारे भारत में फैले हुए थे। सम्भव है, ईरान तक फैले हों। ऐसा अनुमान किया गया है कि भारतीय सभ्यता का सबसे बड़ा प्रतीक 'गंगा' आस्ट्रिक भाषा का शब्द है। स्मरण रहे कि ऋग्वेद में 'गंगा' का उल्लेख शायद कुल मिलाकर छै बार किया गया है, जब कि पंजाब की दूसरी नदियों के नामों का बार बार उल्लेख हुआ है।

शायद आस्ट्रिकों के साथ नेग्रिटों का भी मिश्रण हुआ था। कुछ आस्ट्रिक शाखायें आर्यों के आगमन काल तक अच्छी तरह सभ्य नहीं हो पाई थीं। ये ही असभ्य आस्ट्रिक संस्कृत-साहित्य में निषाद, भिल्ल, कोल्ल आदि नामों से उल्लिखित हैं। अनुसन्धान से पता लगा है कि आधुनिक कोल-जाति की विभिन्न शाखाएं—जैसे सन्थाल, मुण्डा, हो, भूमिज, शबर-गदब, कुरकु, भील आदि—प्राचीन आस्ट्रिक जाति की

ही मनाते हैं। जो आस्ट्रिक सभ्य थे और इस कारण जो आर्य-साम्राज्य के दायरे में आ गए, वे तो हिन्दु-समाज में बिल्कुल खपा लिए गए। कैसे खपा लिए गये, यह एक बहुत ही गूढ़ प्रश्न है; पर यहां केवल इतना इंगित कर दिया जाय कि आर्यों की समाज-रचना में उन्हें निकृष्टतम स्थान दिया गया। आर्य गण भी उनके पहले के तथा बाद के विजेताओं की तरह थे, और उन्होंने विजितों के प्रति वही बरताव किया जो विजेता विजित के साथ करते आए हैं। आर्यों की विजय का अर्थ निकृष्ट सभ्यता पर उत्कृष्ट सभ्यता की विजय नहीं थी; वरन वह श्रेष्ठतर संगठन तथा सैनिक शक्ति के कारण ही हुई। रामायण, महाभारत आदि में वानरों, राक्षसों आदि की नगरियों का वर्णन आता है, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि आर्येतर जातियों के सुन्दर से सुन्दर नगर बने हुए थे, और अन्य दृष्टियों से भी वे कुछ बुरे नहीं थे। लंका की राजधानी अयोध्या की राजधानी से किसी प्रकार निकृष्ट नहीं थी। राम ने रावण पर जो विजय पाई, वह श्रेष्ठतर सैनिक शक्ति के ही कारण हुई। अवश्य इसके साथ रामायणकार ने यह दिखलाया है कि अधर्म पर धर्म की विजय हुई। आर्यों की यह विजय अन्य विजेताओं की तरह ही एक विजय थी। हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य में आर्य विजयों को अधर्म पर धर्म की विजय दिखलाया गया है; पर यह केवल आरोप मात्र है।

अब इस दिशा में हुई गवेषणा के बाद यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दुओं के धार्मिक अनुष्ठानों में जो नैवेद्य आदि में पान, हल्दी, सिन्दूर, केला, सुपारी, धान आदि का प्रयोग होता है, यह आस्ट्रिक प्रभाव का ही फल है।

द्राविड़ों के सम्बन्ध में यह ज्ञात होता है कि वे तथा उनकी नस्ल वाले एशियाई कोचक, इराक, ईरान तक फैले हुए थे। ये लोग आस्ट्रिकों से अधिक सुसंगठित थे, और उनकी सभ्यता में नगर की प्रधानता थी। बहुत से विद्वानों का अनुमान है कि मोहेंजोदाड़ो और हड़प्पा की सभ्यता आदिम द्राविड़ों की ही सभ्यता थी। अभी इन सभ्यताओं के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हुई है, पर जितना

भी मालूम हो सका है, उससे इतना तो पता लग ही जाता है कि इन दोनों स्थानों की सभ्यता वैदिक आर्यों की सभ्यता से किसी भी क्षेत्र में निकृष्ट नहीं थी। नगर-निवासी होने के साथ-ही-साथ ये खेतीसे परिचित थे, और ऐसा अनुमान किया गया है कि यही लोग बाहर से जौ और गेहूँ ले आए। द्राविड़ और आस्ट्रिक जातियों के लोग पड़ोसी के रूप में रहते थे। छोटा नागपुर में इसका एक उदाहरण अब भी मिलता है। वहां द्राविड़-जाति के ओरांव और आस्ट्रिक-जाति मुण्डा अब भी एक साथ पाए जाते हैं। तामिलनाड में द्राविड़-जाति की सभ्यता बहुत दिनों तक विशुद्ध रूप में मौजूद रही। उत्तरी भारत में तो आर्य, द्राविड़ तथा आस्ट्रिक जातियों की सभ्यताएं बहुत जल्दी एकरूप हो गईं, और जिसे हम भारतीय सभ्यता या संस्कृति कहते हैं, वह इन तीन जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण से ही बनी है।

यह एक बहुत ही मार्के की बात है कि शिव और उमा, विष्णु और श्री आदि हिन्दुओं के मुख्य देवता द्राविड़ लोगों से ही लिए गए हैं। अवश्य Syncretism या आदान-प्रदान की प्रक्रिया के अनुसार कोई भी देवता कहीं से विशुद्ध रूप में नहीं आया। एक देवता में आकर कई देवता शामिल हो गए और इस प्रकार हिन्दुओं के देवता बने। स्मरण रहे कि वैदिक आर्य हिन्दुओं के वर्तमान देवताओं से सम्पूर्ण रूप से अपरिचित थे। वैदिक आर्य इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य, पर्जन्य, मरुत, ऊषा, वात आदि के पूजक थे। यद्यपि वैदिक आर्य बहुदेववादि थे, फिर भी उनके देवताओं की संख्या बहुत थी। यहाँ पर मै इस प्रश्न पर जाना नहीं चाहता कि ये वैदिक देवता कैसे थे और इनकी कैसे उत्पत्ति हुई, यद्यपि यह एक बहुत ही दिलचस्प विषय है। हमारे इस लेख के उद्देश्य के लिए इतना ही जानना यथेष्ट है कि हिन्दू अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को कितनी भी आर्य समझें; पर कम-से-कम देवी देवताओं के क्षेत्र में वे वैदिक आर्यों के उत्तराधिकारी नहीं हैं।

हम पहलेही इंगितकर चुके हैं कि वैदिक धर्ममें पुनर्जन्मवादका कोई पता नहीं है। फिर भी वैदिक आर्य [illegible]

जीवन में विश्वास करते थे, उसका कुछ स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। वे यह तो विश्वास करते थे कि मृत्यु माने बिलकुल इति नहीं है, जैसाकि एक मन्त्र से (ऋक्, १०, १६, १-६) ज्ञात होता है, कई तरह के विचार एक साथ चलते थे, कोई सुनिश्चित विचार नहीं थे। जातवेद यानी अग्नि से यह कहा गया है कि वह मृतक को पितरों के पास भेज दे। फिर कहा गया है कि सूर्य उसकी आंख पावे, मरुत उसकी आत्मा को ग्रहण करे और जैसी उसकी अर्हता है, उसके अनुसार वह स्वर्ग या नरक को जावे। यदि उसके भाग्य में है, तो वह जल में जावे, वह जाकर अपने प्रत्यंगों के साथ पौधों में घर करे। पहले यह बता दिया जाय कि यह मन्त्र अपेक्षाकृत बाद के समय का मालूम होता है, फिर भी इसमें कहीं पुनर्जन्म का कहीं पता नहीं है। विन्टरनिटज् के अनुसार ऋग्वेद में कोई बारा मन्त्र ऐसे हैं, जिन्हें दार्शनिक कहा जा सकता है। इन मन्त्रों में बाद के भारतीय दर्शन के कुछ विचार बीज रूप में मिल सकते हैं। पर पुनर्जन्मवाद का—जो बाद के भारतीय दर्शन, इस कारण हिन्दू-सभ्यता और संस्कृति का मूलगत विशिष्ट विचार है—इनमें भी कहीं पता नहीं है।

बाद के भारतीय दर्शन मुक्ति की कामना से भरे पड़े हैं। पर वैदिक साहित्य में इस प्रकार के विचार का कहीं पता नहीं लगता। इसका कारण यह था कि वैदिक आर्य अपने इहलोक से सन्तुष्ट थे, इसी से वे परलोक और मोक्ष के पीछे भागते नहीं फिरते थे। जैसा कि मैं ने अपनी पुस्तक 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' में लिखा है—"वेदों का युग एक तरह से आत्म-तृप्ति का युग था। बात यह है कि अभी तक आर्यों को बराबर नई नई जमीनें मिलती जा रही थीं, वृद्धिशील साम्राज्य के कारण आपसी वर्ग-संघर्ष बहुत कुछ छिपा हुआ था। इस लिए उस युग में लोगों को मुक्ति या निर्वाण की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती थी। इन्द्र, वरुण, अर्यमा, भग, यम आदि जो थोड़े से देवता थे, वे कोई बाहरी व्यक्ति नहीं थे। वे आर्यों के ही पूर्व पुरुष तथा उन्हीं के वीर थे। आदिम वैदिक धर्म में आत्म-विलोप का कोई स्थान नहीं था। वह कुछ तो पितृपूजा और कुछ प्राकृतिक शक्तियों के विषय में अत्यन्त अल्पज्ञान या अज्ञान होने के

कारण तिलस्म में विश्वास का युग था। वैदिक धर्म के प्रथम युग में धर्म बिल्कुल सरल था। देवताओं को जो सोम पान कराया जाता था, या उनकी जो प्रार्थना की जाती थी, वह भी प्रथम युग में कट्टर अनुष्ठान के रूप में नहीं था; बल्कि जैसे हम वृद्ध अपाहिज पिता को खाना पहुंचाते हैं, वह कमोबेश उसी रूप में था। सर जेम्स फ्रेजर ने धर्म की यह जो व्याख्या की है कि 'धर्म से मैं मनुष्य के द्वारा ऐसी श्रेष्ठ शक्तियों की तुष्टि तथा आनुकूलता प्राप्त करना समझता हूं, जिनके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि वे मनुष्य जीवन तथा प्रकृति की गति को नियमित और परिचालित करती हैं', यह कहां तक आदिम वैदिक धर्म पर लागू होती है, इसमें सन्देह है; क्योंकि वरुण, इन्द्र, यम, अर्यमा और भग निस्सन्देह श्रेष्ठ शक्तियां समझी जाती थीं। किन्तु उनकी यह श्रेष्ठता अभी तक उसी प्रकार की थी, जैसी पुत्र के सामने पिता या माता की होती था उससे अधिक, इसका निर्णय करने में हम असमर्थ हैं।"

मैं यहां इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता कि वैदिक देवता प्रकृति की बड़ी शक्तियों के कल्पनात्मक मूर्त मानव-रूप थे, जैसा कि श्री जयचन्द्र विद्यालंकार तथा अन्य अनेक अध्यात्मवादी इतिहासकार मानते हैं या वे आदिम वीरों तथा पूर्व-पुरुषों के सूक्ष्मीकृत रूप-मात्र थे, जैसा कि मैं समझता हूं। यहां इस विषय पर आलोचना की आवश्यकता नहीं कि इनमें से कौनसा मत सत्य के अधिक निकट है। पर इतना तो बिल्कुल निश्चित है कि वैदिक देवताओं से जो प्रार्थनाएं की जाती थीं, उनमें ऐहिक कामना ही दृष्टिगोचर होती है। बाद के स्तोत्रों की तरह उनमें मुक्ति की कोई प्रार्थना नहीं है। किस प्रकार देवताओं से मांगा जाता था, ऋग्वेद के एक मन्त्र (७ १३५) में देखिए—"इन्द्र और अग्नि हमें अपनी दया से सुख अर्पण करें। इसी प्रकार से इन्द्र और वरुण भी करें, जिनके लिए यह यज्ञ किया जा रहा है। इन्द्र और सोम हमें सुख, कल्याण, आशीर्वाद प्रदान करें। इन्द्र और पुषाण शत्रु से प्राप्त धन की प्राप्ति कराके हमें सुख दें। भग हमें सुख दें। धाता हमें सुख दें। पर्वत हमें सुख दे

इत्यादि।" इसी मन्त्र में अग्नि, मित्र, वरुण, आश्विनों तथा मरुतों से भी सुख ही मांगा जाता है। वीर की गरिमा का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि अपहृत गायों की बगल में वह बहुत सुन्दर मालूम होता है। ऋग्वेद (९, १६, ६) के इस मन्त्र को देखिए, जिसमें सोम की प्रशंसा की गई है—"सोम अपनी पूर्ण गरिमा में ऐसे मालूम होते हैं, जैसे कोई वीर युद्ध के बाद अपहृत गायों को लिए हुए मालूम होता है।" इन्द्र को उलाहना देते हुए कहा जा रहा है (ऋग्वेद ८, १४, १+२)—"हे इन्द्र यदि मैं तेरी तरह सब भली चीजों का प्रभु होता, तो मेरे भक्त को पशु-यूथों की कमी न होती। तब तो मैं उसे बहुत चीजें देता और उस ज्ञानी गायक पर आशीर्वाद की वर्षा करता। हाँ, यदि मैं तुम्हारी तरह शक्ति का आधार तथा पशुओं का स्वामी होता।" इसी प्रकार एक दूसरे मन्त्र में (ऋक् ८, १९, २५+२६) अग्नि तथा मित्र को कहा गया है कि यदि उनके भक्त ग़रीबी, अवहेलना के शिकार हों तथा हानि उठावें, तो यह बड़े आश्चर्य की बात है। बाद की प्रार्थनाओं तथा भजनों में जैसे इस प्रकार की बातें कही गई हैं कि भव-बन्धन को काट दो, जन्म-मरण के वृत से मुक्ति दिलाओ आदि का वैदिक प्रार्थनाओं में कहीं पता नहीं है। एक उदाहरण और देता हूं। एक मन्त्र (ऋक् ५, ८५) में यह कहा गया है कि यदि हमने ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कुछ किया है, जो हमसे प्रेम करता है, या भाई, मित्र अथवा साथी को हानि पहुँचाई है, या पड़ोसी या अतिथि को कष्ट दिया है, तो हे वरुण, हमको इस दोष से मुक्त कर दो। यदि हमने जूए में धोखा दिया है, जान बूझकर या अनजान में इस प्रकार की कोई गलती की है, तो हमारे इन कुकृत्यों को बेड़ियों की तरह खोल दो और हमें अपना प्रिय बना लो।

इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरणों से ऋग्वेद भरा पड़ा है। इस अर्थ में बहुत गम्भीरता के साथ यह कहा जा सकता है कि बाद की हिन्दू सभ्यता या संस्कृति से यह वैदिक सभ्यता बिल्कुल भिन्न है, और भिन्न इस कारण से है कि इन दोनों के विश्व को देखने के ढंग

बिल्कुल अलग हैं। केवल पूजित देवताओं की विभिन्नता के कारण ही नहीं, जो अवश्य एक बहुत बड़ा कारण है; बल्कि मौलिक रूप से विचार धारागत पार्थक्य के कारण यह कहा जा सकता है कि भले ही बाद का हिन्दू-धर्म या संस्कृति अपने पूर्वजों में वैदिक धर्म को गिना सके; पर उन दोनों में मौलिक करीब-करीब प्राणि-जातियों का अन्तर है। इस क्षेत्र में यह दावा नहीं किया जा सकता, जैसा कि प्राणि-जातियोंके सम्बन्धमें दावा कियाजा सकता है, किजो चीजबादको आई, वह पहले के मुकाबले में विकसित है; बल्कि इससे विपरीत ऐसासमझने का कारण है कि बादको चलकर जोकुछ भी हुआ, अवश्य वह सामाजिक-आर्थिक कारणोंसे हुआ, और वह वैदिक धर्म की विकृति और पतन था।

बाद की भारतीय संस्कृति और कुछ भी हो, आर्य-संस्कृति नहीं है—अवश्य स्वाभाविक रूप से उसमें आर्यों का दान काफी है। आर्य-गण विजितों पर यों तो सब कुछ लादना चाहते होंगे; पर जिस चीज़ को वे सफलता-पूर्वक लाद सके, वह थी उनकी भाषा। फिर भी विशेषज्ञों के विशेषण से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत की आर्य-भाषाओं में—यहां तक कि बाद के युग की संस्कृत तथा प्राकृत में भी—द्राविड़ तथा आग्नेयक प्रभाव दृष्टिगोचर है। सुप्रसिद्ध भाषातत्वज्ञ श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का कथन है कि 'बंगला तथा अन्य आर्य-भाषाओं में ऐसी बहुत-सी रीतियां हैं, जो वैदिक या अन्य आर्य-भाषाओं में नहीं मिलतीं; पर द्राविड़ और आग्नेयक भाषा में ये रीतियां मौजूद हैं। आर्यों के इसी भाषागत प्रभाव के कारण ही हमारे पूर्वजों को तथा हमें बहुत भ्रम रहा है कि हमारी संस्कृति वैदिक आर्य कानून तक में अलग-अलग जातियों के लिए अलग-अलग सज़ा का विधान इसी देश के धर्म में था। यदि ब्राह्मण शूद्र के साथ बलात्कार करे, तो उसे कुछ नहीं के बराबर दण्ड देने का विधान था; जबकि शूद्र ब्राह्मणी के साथ ऐसा करे, तो, उसके लिए प्राणदंड की व्यवस्था थी। यह थी हमारी आदर्श सभ्यता और संस्कृति!

अन्त में मैं यही कहूंगा कि भारतीय संस्कृति के बड़प्पन का ढोंग छोड़कर हम अपनी आंखें, और जो बातें हमारे यहां अच्छा है, उनको रखते हुए बाकी बातों को त्याग दें। (श्री मन्मथनाथ गुप्त)